भगवद्भक्तोंद्वारा की गयी प्रार्थना

मन्त्रद्रष्टा ऋषिकी प्रार्थना

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् सन्दधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद् वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

'हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! मेरी वाणी मनमें स्थित हो जाय और मन वाणीमें स्थित हो जाय अर्थात् मेरे मन-वाणी दोनों एक हो जायँ। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप मेरे लिये प्रकट हो जाइये। हे मन और वाणी! तुम दोनों मेरे लिये वेदविषयक ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाले बनो। मेरा गुरुमुखसे सुना हुआ और अनुभवमें आया हुआ ज्ञान मेरा त्याग न करे—मैं उसे कभी न भूलूँ। मेरी इच्छा है कि अपने अध्ययनद्वारा मैं दिन और रात एक कर दूँ। अर्थात् रात-दिन निरन्तर ब्रह्म-विद्याका पठन और चिन्तन ही करता रहूँ। मैं वाणीसे श्रेष्ठ शब्दोंका उच्चारण करूँगा, सर्वथा सत्य बोलूँगा। वे परब्रह्म परमात्मा मेरी रक्षा करें। वे मुझे ब्रह्मविद्या सिखानेवाले आचार्यकी रक्षा करें। वे मेरी रक्षा करें और मेरे आचार्यकी रक्षा करें, आचार्यकी रक्षा करें। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों तापोंकी शान्ति हो।'

ध्रुवकी प्रार्थना

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥

'हे अनन्त परमात्मन्! मुझे आप उन विशुद्ध-हृदय महात्मा भक्तोंका संग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है; उनके संगमें मैं आपके गुणों तथा लीलाओंकी कथा-सुधाका पान करके उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही विविध भाँतिके दुःखोंसे पूर्ण भयंकर संसार-सागरके उस पार पहुँच जाऊँगा।' (**श्रीमद्भा० ४।९।११**)

परमात्मप्रभुसे प्रार्थना

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानां
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम्॥
वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥

'हे जगत्के कारण सत्स्वरूप परमात्मा! आपको नमस्कार है। हे सर्वलोकोंके आश्रय चित्स्वरूप! आपको नमस्कार है। हे मुक्ति प्रदान करनेवाले अद्वैततत्त्व! आपको नमस्कार है। शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म! आपको नमस्कार है। आप ही एक शरणमें जानेयोग्य अर्थात् आश्रय-स्थान हैं, आप ही एक पूजा करनेयोग्य हैं। आप ही एक जगत्के पालक और अपने प्रकाशसे प्रकाशित हैं। आप ही एक जगत्के कर्ता, पालक और संहारक हैं। आप ही एक निश्चल और निर्विकल्प हैं। आप भयोंको भय देनेवाले हैं, भयंकरोंमें भयकर हैं, प्राणियोंकी गति हैं और पावनोंको पावन करनेवाले हैं। अत्यन्त उच्च पदोंके आप ही नियन्त्रण करनेवाले हैं, आप परसे पर हैं, रक्षण करनेवालोंका भी रक्षण करनेवाले हैं। हम आपका स्मरण करते हैं, हम आपको भजते हैं। हम आपको जगत्के साक्षिरूपमें नमस्कार करते हैं। आप ही एकमात्र सत्यस्वरूप हैं, निधान हैं, अवलम्बनरहित हैं, इसलिये संसारसागरके नौकारूप आप ईश्वरकी हम शरण लेते हैं। (**तन्त्रोक्तस्तवपंचक**)

प्रह्लादकी प्रार्थना

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥

'वर देनेवालोंमें शिरोमणि मेरे स्वामी! यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना ही चाहते हैं तो मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें कभी, किसी भी कामनाका—चाहका बीज ही अङ्कुरित न हो।' (श्रीमद्भा० ७।१०।७)

महर्षि आपस्तम्बकी प्रार्थना

को नु मे स्यादुपायो हि येनाहं दुःखितात्मनाम्।
अन्तः प्रविश्य भूतानां भवेयं सर्वदुःखभुक्॥
यन्ममास्ति शुभं किञ्चित्तद्दीनानुपगच्छतु।
यत् कृतं दुष्कृतं तैश्च तदशेषमुपैतु माम्॥
नरकं यदि पश्यामि वत्स्यामि स्वर्ग एव वा॥
यन्मया सुकृतं किञ्चिन्मनोवाक्कायकर्मभिः।
कृतं तेनापि दुःखार्तास्सर्वे यान्तु शुभां गतिम्॥

'मेरे लिये वह कौन-सा उपाय है, जिससे मैं दुःखित चित्तवाले सम्पूर्ण जीवोंके भीतर प्रवेश करके अकेला ही सबके दुःखोंको भोगता रहूँ। मेरे पास जो कुछ भी पुण्य है, वह सभी दीन-दुःखियोंके पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ पाप किया हो, वह सब मेरे पास आ जाय। भले ही मैं नरकको देखूँ या स्वर्गमें निवास करूँ, किंतु मेरेद्वारा मन, वाणी, शरीर और क्रियासे जो कुछ पुण्यकर्म बना हो, उससे सभी दुःखार्त प्राणी शुभगतिको प्राप्त हों।' (स्कन्दपुराण, रेवाखण्ड)

रन्तिदेवकी प्रार्थना

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

'मैं भगवान्‌से आठों सिद्धियोंसे युक्त परमगति और अपुनर्भव—मोक्ष नहीं चाहता। मैं केवल यही चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर उन सबके सारे दुःख मैं ही भोगूँ, जिससे (फिर) किसी भी प्राणीको दुःख न हो—सभी दुःखसे सदाके लिये छूट जायँ।' (श्रीमद्भा० ९।२१।१२)

वृत्रासुरकी प्रार्थना

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

'हे हरे! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि अनन्यभावसे आपके चरणकमलोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा करनेका अवसर मुझे अगले जन्ममें भी प्राप्त हो। हे प्राणनाथ! मेरा मन आपके मंगलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और शरीर आपकी ही सेवामें संलग्न रहे। हे सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर न स्वर्ग चाहता हूँ, न ब्रह्माका पद, न सम्पूर्ण भूमण्डलका साम्राज्य, न रसातलका एकछत्र राज्य और न योगकी सिद्धियाँ ही—यहाँतक कि मैं अपुनर्भव—मोक्ष भी नहीं चाहता। जैसे पक्षियोंके बिना पाँख उगे बच्चे अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ—गौका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये व्याकुल रहती है, वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है। (श्रीमद्भा० ६।११।२४—२६)

भीष्मकी प्रार्थना

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥

'जिनका दिव्य देह त्रिभुवनसुन्दर एवं श्याम तमालके

समान श्यामवर्ण है, जिसपर सूर्यकी रश्मियोंके समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और कमल-सदृश श्रीमुखपर घुँघराली अलकावली लटकती रहती है; उन अर्जुनके सखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट रति—प्रीति हो।' (श्रीमद्भा० १।९।३३)

कुन्तीकी प्रार्थना

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥
नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः॥

'जगद्गुरो श्रीकृष्ण! हमलोगोंके जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन होनेपर फिर पुनर्जन्मका चक्र मिट जाता है। ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका मद बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिंचन हैं। आप अकिंचनोंके (जिनके पास कुछ भी अपना नहीं है, उन निर्धनोंके) परम धन हैं। आप मायाके प्रपंचसे सर्वथा निवृत्त हैं, नित्य आत्माराम और परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्यमोक्षके अधिपति हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ।' (श्रीमद्भा० १।८।२५—२७)

बिल्वमंगलकी प्रार्थना

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे॥

हे देव! हे दयित! हे त्रिभुवनके अद्वितीय बन्धु! हे कृष्ण! हे लीलामय! हे करुणाके एकमात्र सिन्धु! हे नाथ! हे प्रियतम! हे नयनाभिराम! हाय, हाय, मैं तुम्हारे चिन्मय स्वरूपको कब देख पाऊँगा?

श्रीशंकराचार्यकी प्रार्थना

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥
दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे॥
सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥
उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्॥
दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द।
भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु॥

'हे भगवान् विष्णु! मेरा अविनय दूर कीजिये, मेरे मनका दमन कीजिये और विषयोंकी मृगतृष्णाको शान्त कर दीजिये। जगत्‌में प्राणिमात्रके प्रति दयाभावनाका विस्तार कीजिये और इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। मैं भगवान् श्रीपतिके उन चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ; जिनका मकरन्द गंगा और सौरभ सच्चिदानन्द है तथा जो संसार (जन्म-मरण)-के भयका तथा खेदका छेदन करनेवाले हैं। हे नाथ! (वस्तुतः मुझमें और आपमें) भेद नहीं है, तथापि मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं; क्योंकि तरंग ही समुद्रकी होती है, समुद्र तरंगका कहीं नहीं होता। हे गोवर्द्धनगिरिको उठानेवाले! हे इन्द्रके अनुज (वामन)! हे दानवकुलके शत्रु! हे सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रवाले! आपके सदृश प्रभुके दर्शन हो जानेपर क्या भव (जन्म-मरण)-का लोप नहीं हो जाता? हे परमेश्वर! मत्स्यादि अवतारोंमें अवतरित होकर वसुधाकी सर्वदा रक्षा करनेवाले आपके द्वारा संसारके तापोंसे भयभीत क्या मैं रक्षाके योग्य नहीं हूँ? हे गुणोंके मन्दिर दामोदर! हे सुन्दर मुखारविन्दवाले गोविन्द! संसार-सागरका मन्थन करनेके लिये मन्दर (पर्वत)! मेरे महान्

भयको आप मिटाइये। हे करुणामय नारायण! मैं सब प्रकारसे आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करूँ। यह छः पदोंके रूपमें की गयी प्रार्थनारूप भ्रमरी सदा मेरे मुखकमलमें निवास करे।'

श्रीयामुनाचार्यकी प्रार्थना

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥
निमज्जतोऽनन्तभवार्णवान्त-
श्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानी-
मनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥

'मैं न धर्मनिष्ठ हूँ न आत्मज्ञानी हूँ और न आपके चरणारविन्दोंका भक्त ही हूँ। मैं तो अकिंचन हूँ, अनन्यगति हूँ और शरणागतरक्षक आपके चरणकमलोंकी शरण आया हूँ। संसारमें ऐसा कोई निन्दित कर्म नहीं है, जिसको हजारों बार मैंने न किया हो। ऐसा मैं अब फलभोगके समयपर विवश (अन्य-साधनहीन) होकर, हे मुकुन्द! आपके आगे बारम्बार रोता—क्रन्दन करता हूँ। अनन्त महासागरके भीतर डूबते हुए मुझको आज अति विलम्बसे आप तटरूप होकर मिले हैं और हे भगवन्! आपको भी आज यह दयाका अनुपम पात्र मिला है।' (श्रीआलवन्दारस्तोत्र)

श्रीनिम्बार्काचार्यकी प्रार्थना

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

'जो उन्हीं श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वामांगमें प्रसन्नतापूर्वक विराजमान हो रही हैं, जिनका रूप-शील-सौभाग्य अपने प्रियतमके सर्वथा अनुरूप है, सहस्रों सखियाँ सदा जिनकी सेवाके लिये उद्यत रहती हैं, उन सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको देनेवाली देवी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका हम सदा स्मरण करें।'

श्रीचैतन्यदेवकी प्रार्थना

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥
नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्‌गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥

'हे जगदीश! मुझे धन, जन, कामिनी, कविता—कुछ भी नहीं चाहिये (मुक्ति भी नहीं चाहिये)—बस, जन्म-जन्ममें मेरी आप ईश्वरमें अहैतुकी भक्ति हो। हे गोविन्द! वह दिन कब होगा, जब आपका नाम लेनेपर मेरी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होगी, मेरी वाणी प्रेमावेगसे गद्‌गद हो जायगी और मेरा शरीर पुलकित हो जायगा।' (शिक्षाष्टक)

श्रीसूरदासजीकी प्रार्थना

तुम तजि और कौन पै जाऊँ।
काके द्वार जाइ सिर नाऊँ, पर हथ कहाँ बिकाऊँ॥
ऐसो को दाता है समरथ, जाके दिये अघाऊँ।
अंतकाल तुमरो सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं पाऊँ॥
रंक अयाची कियो सुदामा, दियो अभय पद ठाऊँ।
कामधेनु चिंतामनि दीनो, कलप-बृच्छ तर छाऊँ॥
भवसमुद्र अति देखि भयानक, मनमें अधिक डराऊँ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनो पन, सूरदास बलि जाऊँ॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी प्रार्थना

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥
मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

भक्त और भगवान्

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—दुर्वासाजी! मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे।

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥

ब्रह्मन्! अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ। इसलिये अपने साधुस्वभाव भक्तोंको छोड़कर मैं न तो अपने-आपको चाहता हूँ और न अपनी अर्धांगिनी विनाशरहित लक्ष्मीको।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक—सबको छोड़कर केवल मेरी शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका संकल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ।

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥

जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरे साथ अपने हृदयको प्रेम-बन्धनसे बाँध रखनेवाले समदर्शी साधु भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं।

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम्॥

मेरे अनन्यप्रेमी भक्त सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण—कृतकृत्य मानते हैं। मेरी सेवाके फलस्वरूप जब उन्हें सालोक्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तब वे उन्हें भी स्वीकार करना नहीं चाहते, फिर समयके फेरसे नष्ट हो जानेवाली वस्तुओंकी तो बात ही क्या है।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

दुर्वासाजी! मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय स्वयं मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्यारे उद्धव! मेरा भक्त कृपाकी मूर्ति होता है। वह किसी भी प्राणीसे वैरभाव नहीं रखता और घोर-से-घोर दुःख भी प्रसन्नतापूर्वक सहता है। उसके जीवनका सार है सत्य, और उसके मनमें किसी प्रकारकी पापवासना कभी नहीं आती। वह समदर्शी और सबका भला करनेवाला होता है।

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥

उसकी बुद्धि कामनाओंसे कलुषित नहीं होती। वह संयमी, मधुरस्वभाव और पवित्र होता है। संग्रह-परिग्रहसे सर्वथा दूर रहता है। किसी भी वस्तुके लिये वह कोई चेष्टा नहीं करता। परिमित भोजन करता है और शान्त रहता है। उसकी बुद्धि स्थिर होती है। उसे केवल मेरा ही भरोसा होता है और वह आत्मतत्त्वके चिन्तनमें सदा संलग्न रहता है।

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥

वह प्रमादरहित, गम्भीरस्वभाव और धैर्यवान् होता है। भूख-प्यास, शोक-मोह और जन्म-मृत्यु—ये छहों उसके वशमें रहते हैं। वह स्वयं तो कभी किसीसे किसी प्रकारका सम्मान नहीं चाहता, परंतु दूसरोंका सम्मान करता रहता है। मेरे सम्बन्धकी बातें दूसरोंको समझानेमें बड़ा निपुण होता है और सभीके साथ मित्रताका व्यवहार करता है। उसके हृदयमें करुणा भरी होती है। मेरे तत्त्वका उसे यथार्थ ज्ञान होता है।

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

जिसने अपनेको मुझे सौंप दिया है, वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्माका पद चाहता है और न देवराज इन्द्रका, उसके मनमें न तो सार्वभौम सम्राट् बननेकी इच्छा होती है और न वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ रसातलका ही स्वामी होना चाहता है। वह योगकी बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्षतककी अभिलाषा नहीं करता।

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

उद्धव! मुझे तुम्हारे-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर, सगे भाई बलरामजी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

जिसे किसीकी अपेक्षा नहीं, जो जगत्के चिन्तनसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तनमें तल्लीन रहता है और राग-द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है, उस महात्माके पीछे-पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूलि उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

जिसकी वाणी प्रेमसे गद्गद हो रही है, चित्त पिघलकर एक ओर बहता रहता है, एक क्षणके लिये भी रोनेका ताँता नहीं टूटता, परंतु जो कभी-कभी खिलखिलाकर हँसने भी लगता है, कहीं लाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है, तो कहीं नाचने लगता है, भैया उद्धव! मेरा वह भक्त न केवल अपनेको बल्कि सारे संसारको पवित्र कर देता है।

श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम॥

जो मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहता हो, वह मेरी अमृतमयी कथामें श्रद्धा रखे, निरन्तर मेरे गुण-लीला और नामोंका संकीर्तन करे, मेरी पूजामें अत्यन्त निष्ठा रखे और स्तोत्रोंके द्वारा मेरी स्तुति करे।

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥

मेरी सेवा-पूजामें प्रेम रखे और सामने साष्टांग लोटकर प्रणाम करे, मेरे भक्तोंकी पूजा मेरी पूजासे बढ़कर करे और समस्त प्राणियोंमें मुझे ही देखे।

कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन्।
मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः॥

उद्धवजी! मेरे भक्तको चाहिये कि अपने सारे कर्म मेरे लिये ही करे और धीरे-धीरे उनको करते समय मेरे स्मरणका अभ्यास बढ़ाये। कुछ ही दिनोंमें उसके मन और चित्त मुझमें समर्पित हो जायँगे। उसके मन और आत्मा मेरे ही धर्मोंमें रम जायँगे।

देशान् पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान्।
देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च॥

मेरे भक्त साधुजन जिन पवित्र स्थानोंमें निवास करते हों, उन्हींमें रहे और देवता, असुर अथवा मनुष्योंमें जो मेरे अनन्य भक्त हों, उनके आचरणोंका अनुसरण करे।

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥

मेरी प्राप्ति के जितने साधन हैं, उनमें मैं तो सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें मन, वाणी और शरीरकी समस्त वृत्तियोंसे मेरी ही भावना की जाय। [**श्रीमद्भागवत**]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभक्तमाल

श्रीनाभादासजीकृत भक्तमालका मंगलाचरण

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इन के पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥ १ ॥
मंगल आदि बिचारि रहि बस्तु न और अनूप।
हरिजन को जस गावते हरिजन मंगलरूप॥ २ ॥
संतन निरनै कियो मथि श्रुति पुरान इतिहास।
भजिबे को दोई सुघर कै हरि कै हरिदास॥ ३ ॥
(श्रीगुरु) अग्रदेव आग्या दई भक्तन को जस गाउ।
भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ॥ ४ ॥

भगवान्‌के भक्त, भगवान्‌की भक्ति, भगवान् और भगवत्तत्त्वका बोध करानेवाले गुरुदेव—ये अलग-अलग चार नाम और चार वपु हैं, पर वास्तवमें इनका वपु (स्वरूप—तत्त्व) एक ही है। इनके श्रीचरणोंकी वन्दना करनेसे समस्त विघ्नोंका पूर्णरूपसे नाश हो जाता है॥ १ ॥ ग्रन्थके आरम्भमें मंगलाचरणके सम्बन्धमें विचार करनेपर यही समझमें आता है कि भक्त-चरित्रोंके समान दूसरी और कोई वस्तु सुन्दर नहीं है, जिससे मंगलाचरण किया जाय। भगवद्भक्तोंका चरित्रगान करनेमें भगवद्भक्त ही मंगलरूप हैं॥ २ ॥ वेद, पुराण, इतिहास आदि सभी शास्त्रोंने तथा सभी साधु-सन्तोंने यही निर्णय किया है कि भजन, आराधनाके लिये भगवान् या भगवान्‌के भक्त—दो ही सबसे सुन्दर हैं॥ ३ ॥ स्वामी श्रीअग्रदेवजी (श्रीअग्रदासजी)-ने मुझ नारायणदास (नाभादास)-को आज्ञा दी कि भक्तोंका यशोगान करो; क्योंकि संसार-सागरसे पार होनेका इससे सरल दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ ४ ॥

श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीकाका मंगलाचरण

महाप्रभु कृष्णचैतन्य मनहरनजू के चरण कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइये।
ताही समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥
कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै जगै जग माहिं कहि वाणी विरमाइये।
जानों निजमति ऐ पै सुन्यौ भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियो ऐसेई कहाइये॥ १ ॥

श्रीप्रियादासजी भक्तमालकी भक्तिरसबोधिनी टीकाका मंगलाचरण एवं इस टीकाके लिखे जानेका हेतु बताते हुए कहते हैं कि एक बार मैं महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य एवं गुरुदेव श्रीमनोहरदासजीके श्रीचरणकमलका हृदयमें ध्यान और मुखसे नाम-संकीर्तन कर रहा था, उसी समय श्रीनाभाजीने मुझे आज्ञा दी, जिसे मैंने शिरोधार्य कर लिया। वह आज्ञा यह थी कि श्रीभक्तमालकी विस्तारपूर्वक टीका करके सुनाइये। टीका कवित्त छन्दोंमें कीजिये, जो कि अत्यन्त प्रिय लगे और सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध हो। इस प्रकार भक्तोंका चरित्र कहकर अपनी वाणीको विश्राम दीजिये अर्थात् भक्तोंका चरित्र कहनेमें वाणीको लगा दीजिये। ऐसा कहकर श्रीनाभाजीने वाणीको

विश्राम दिया, तब मैंने भावनामें ही निवेदन किया कि मैं तो अपनी बुद्धिको जानता हूँ कि वह टीका करनेमें सर्वथा असमर्थ है, परंतु मैंने श्रीमद्भागवतमें सुना है कि श्रीशुकदेवजी वृक्षोंमें प्रवेश करके स्वयं बोले थे, वैसे ही आप भी मेरी जड़मतिमें प्रवेश करके टीकाकी रचना करा लेंगे॥ १॥

भक्तिरसबोधिनी टीकाका नामस्वरूप-वर्णन

रची कविताई सुखदाई लागै निपट सुहाई औ सचाई पुनरुक्ति लै मिटाई है।
अक्षर मधुरताई अनुप्रास जमकाई अति छवि छाई मोद झरी सी लगाई है॥
काव्य की बड़ाई निज मुख न भलाई होति नाभाजू कहाई, याते प्रौढ़िकै सुनाई है।
हृदै सरसाई जो पै सुनिये सदाई, यह 'भक्तिरसबोधिनी' सुनाम टीका गाई है॥ २॥

इस कवित्तमें श्रीप्रियादासजी अपने काव्यकी विशेषताएँ एवं टीकाका नाम बताते हुए कहते हैं कि मैंने टीका-काव्यकी ऐसी रचना की है, जो पाठकों और श्रोताओंको सुख देनेवाली है और अत्यन्त सुहावनी लगती है। इसमें सचाई है अर्थात् सत्य-सत्य कहा गया है। पुनरुक्ति दोषको मिटा दिया गया है। अक्षरोंकी मधुरता, अनुप्रास और यमक आदि अलंकारोंसे अत्यन्त सुशोभित होकर इस टीका-काव्यने आनन्दकी झरी-सी लगा दी है। अपने काव्यकी अपने मुखसे प्रशंसा करना अच्छा नहीं होता, परंतु इसे तो श्रीनाभाजीने कहवाया है, इसीसे इसकी प्रशंसा नि:शंक होकर दृढ़तापूर्वक सुनायी है। यदि नीरस हृदयवाला व्यक्ति भी सदा इसका श्रवण करे तो उसके हृदयमें सरसता होगी और सरस हृदयवालेके लिये बारम्बार सुननेपर भी यह टीका उत्तरोत्तर सरस प्रतीत होगी। ऐसी यह 'भक्तिरसबोधिनी' सुन्दर नामवाली टीका गायी है, जो भक्तिके सभी रसोंका बोध करानेवाली है॥ २॥

श्रीभक्तिदेवीका शृंगार

श्रद्धाई फुलेल औ उबटनौ श्रवण कथा मैल अभिमान अंग अंगनि छुड़ाइये।
मनन सुनीर अन्हवाइ अंगुछाइ दया नवनि वसन पन सोधो लै लगाइये॥
आभरन नाम हरि साधु सेवा कर्णफूल मानसी सुनथ संग अंजन बनाइये।
भक्ति महारानीकौ सिंगार चारु बीरी चाह रहै जो निहारि लहै लाल प्यारी गाइये॥ ३॥

शृंगारित रूप विशेष आकर्षक होता है, अत: इष्टदेवको प्रसन्न करनेके लिये टीकाकारने इस कवित्तमें श्रीभक्तिदेवीके शृंगारका वर्णन एक रूपकके द्वारा किया है। भक्तिदेवीके श्रीविग्रहकी निर्मलताके लिये श्रद्धारूपी फुलेलसे शुष्कता दूरकर कथाश्रवणरूपी उबटन लगाइये और अहंकाररूपी मैलको प्रत्येक अंगसे छुड़ाइये। फिर मननके सुन्दर जलसे स्नान कराकर दयाके अँगोछेसे पोंछिये। उसके बाद नम्रताके वस्त्र पहनाकर भक्तिमें प्रतिज्ञारूपी सुगन्धित द्रव्य लगाइये। फिर नाम-संकीर्तनरूप अनेक आभूषण, हरि और साधुसेवाके कर्णफूल तथा मानसी सेवाकी सुन्दर नथ पहनाइये। फिर सत्संगरूपी अंजन लगाइये। जो भक्तिमहारानीका इस प्रकार शृंगार करके फिर उन्हें अभिलाषारूपी बीड़ा (पान) अर्पण करके उनके सुन्दर स्वरूपका दर्शन करता रहे, वह श्रीप्रिया-प्रियतमको प्राप्त करता है। ऐसा सन्तों एवं शास्त्रोंने गाया है॥ ३॥

भक्तिरसबोधिनी टीकाकी महिमा

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, औ शृंगारु चारु, पाँचों रस सार विस्तार नीके गाये हैं।
टीका को चमत्कार जानौगे विचारि मन, इनके स्वरूप मैं अनूप लै दिखाये हैं॥
जिनके न अश्रुपात पुलकित गात कभू, तिनहूँ को भाव सिंधु बोरि सो छकाये हैं।
जौलौं रहैं दूर रहैं विमुखता पूर हियो, होय चूर चूर नेकु श्रवण लगाये हैं॥ ४॥

इस कवित्तमें टीकाकार टीकाकी विशेषता बताते हुए कहते हैं कि इस भक्तिरसबोधिनी-टीकामें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और श्रृंगार—भक्तिके इन पाँचों रसोंका तत्त्व विस्तारसे अच्छी प्रकार वर्णन किया गया है। इनके सुन्दर स्वरूपोंको जैसा मैंने भलीभाँति उत्तम रीतिसे वर्णन करके दिखाया है, इस चमत्कारको पाठक एवं श्रोता अपने मनमें अच्छी तरहसे विचार करनेपर ही जानेंगे। श्रवण, कीर्तन आदि करके प्रेमवश जिनके नेत्रोंमें कभी भी आनन्दके आँसू नहीं आते हैं और शरीरमें रोमांच नहीं होता है, ऐसे नीरस, कठोर हृदयवाले लोगोंको भी भक्तिके भावरूपी समुद्रमें डुबाकर तृप्त कर दिया गया है। जबतक वे इससे दूर हैं, तभीतक भक्तिसे पूर्ण विमुख हैं, किंतु यदि कान लगाकर इसका थोड़ा भी श्रवण करेंगे तो उनका हृदय चूर-चूर होकर रससे परिपूर्ण हो जायगा॥ ४॥

भक्तमालकी महिमा

पंच रस सोई पंच रंग फूल थाके नीके, पीके पहिराइवे को रचिकै बनाई है।
वैजयन्ती दाम भाववती अलि 'नाभा', नाम लाई अभिराम श्याम मति ललचाई है॥
धारी उर प्यारी, किहूँ करत न न्यारी, अहो! देखौ गति न्यारी ढरियापनको आई है।
भक्ति छबिभार, ताते, नमितश्रृंगार होत, होत वश लखै जोई याते जानि पाई है॥ ५॥

प्रस्तुत कवित्तमें श्रीभक्तमालको पंचरंगी वैजयन्ती माला बताकर उसकी महिमा, सुन्दरता और भगवत्प्रियताका वर्णन किया गया है। पूर्व कवित्तमें कहे गये पाँच रस ही मानो फूलोंके सुन्दर गुच्छे हैं, भाववती नाभा नामकी सखीने अपने प्रियतमको पहनानेके लिये इसे अच्छी तरहसे बनाया है। यह वैजयन्ती माला इतनी सुन्दर है कि लोकाभिराम श्यामसुन्दर श्रीरामकी बुद्धि भी इसे देखकर ललचा गयी। उन्होंने इस प्यारी वनमालाको अपने वक्ष:स्थलपर धारण किया, उन्हें यह इतनी प्रिय लगी कि इसे वे कभी भी अपने कण्ठसे अलग नहीं करते हैं। इस मालाकी विचित्र गति तो देखिये कि भगवान्ने इसे कण्ठमें धारण किया और यह लटककर श्रीचरणोंमें आ लगी है। इस मालामें भक्तिकी सुन्दरताका भार है, इसीसे झुकी है। पंचरंगी भक्तमाल पहने हुए श्यामसुन्दरका जो दर्शन करता है, वह उनके वशमें होकर उन्हें वशमें कर लेता है। यह रहस्यकी बात भक्तमालके द्वारा जानी गयी है॥ ५॥

संतसंगके प्रभावका वर्णन

भक्ति तरु पौधा ताहि विघ्न डर छेरीहू कौ, वारिदै बिचारि वारि सींच्यो सत्संग सों।
लाग्योई बढ़न, गोंदा चहुँदिशि कढ़न सो चढ़न अकाश, यश फैल्यो बहुरंग सों॥
संत उर आल बाल शोभित विशाल छाया, जिये जीव जाल, ताप गये यों प्रसंग सों।
देखौ बढ़वारि जाहि अजाहू की शंका हुती, ताहि पेड़ बाँधे झूमें हाथी जीते जंग सों॥ ६॥

भक्तिका वृक्ष जब साधकके हृदयमें छोटे-से पौधेके रूपमें होता है, तब उसे हानिका भय मायारूपी बकरीसे भी होता है, अत: पौधेकी रक्षाके लिये उसके चारों ओर विचाररूपी घेरा (थाला) लगाकर सत्संगरूपी जलसे सींचा जाता है, तब उसमें चारों ओरसे शाखा-प्रशाखाएँ निकलने लगती हैं और वह आकाशकी ओर चढ़ने-बढ़ने लगता है। सरल साधुहृदयरूप थालेमें सुशोभित इस विशाल भक्ति-वृक्षकी छाया अर्थात् सत्संग पाकर त्रिविध तापोंसे तपे जीवसमूह सन्तापरहित होकर परमानन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सार-सम्भार करनेपर इस भक्तिका विचित्ररूपसे बढ़ना तो देखो कि जिसको पहले कभी छोटी-सी बकरीका भी डर था, उसीमें आज महासंग्रामविजयी काम, क्रोध आदि बड़े-बड़े हाथी बँधे हुए झूम रहे हैं, परंतु उस वृक्षको किसी भी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकते हैं॥ ६॥

भक्तमाल-स्वरूपवर्णन

जाको जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो, कियो यों कवित्त पट मिहिं मध्य लाल है।
गुण पै अपार साधु कहैं आंक चारिही में, अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है॥
सुनि संत सभा झूमि रही, अलि श्रेणी मानो, घूमि रही, कहैं यह कहा धौं रसाल है।
सुने हे अगर अब जाने मैं अगर सही, चोवा भये नाभा, सो सुगंध भक्तमाल है॥ ७॥

जिस भक्तका जैसा सुन्दरस्वरूप है, उसको श्रीनाभाजीने अति उत्तम प्रकारसे अपने काव्यमें स्पष्ट कर दिया है। कविता ऐसी की है कि जैसे महीन वस्त्रके अन्दर रखे हुए माणिक्य रत्नकी चमक बाहर प्रकाश करे, उसी प्रकार कविताकी शब्दावलीसे भक्तस्वरूप प्रकट होता है। साधु-भक्तोंके गुण और उनकी महिमा अपार है, किंतु नाभाजीने सन्तगुरुकृपासे थोड़े ही अक्षरोंमें भक्तोंके गुणोंका ऐसी विचित्रताके साथ वर्णन किया है कि उसके अनेक अर्थ होते हैं और गुणोंका अपार विस्तार हो जाता है। यही सच्चे टकसाली कविकी विशेषता है। सन्तोंकी सभा इसे सुनकर भक्तमाल काव्यका रसास्वादनकर आनन्दविभोर होकर झूम रही है, मानो सन्तरूपी भ्रमरसमूह चरित्ररूपी सुगन्धित पुष्पोंपर मँडरा रहा है। आश्चर्यचकित होकर वे कहते हैं कि यह कैसी विचित्र रसमयी कविता है! मैंने अगर अर्थात् स्वामी श्रीअग्रदेवजीका नाम तो सुना था, परंतु अब मैंने जाना और अनुभव किया कि अगर (श्रीअग्रदेवजी) वस्तुतः अगर (सुगन्धित वृक्ष ही) हैं, जिनसे नाभाजी-जैसा इत्र उत्पन्न हुआ है और जिसकी दिव्य सुगन्ध यह भक्तमाल है॥ ७॥

भक्तमाल-माहात्म्यवर्णन

बड़े भक्तिमान, निशिदिन गुणगान करैं हरैं जगपाप, जाप हियो परिपूर है।
जानि सुख मानि हरिसंत सनमान सचे बचेऊ जगतरीति, प्रीति जानी मूर है॥
तऊ दुराराध्य, कोऊ कैसे कै अराधिसकै, समझो न जात, मन कंप भयो चूर है।
शोभित तिलक भाल माल उर राजै, ऐ पै बिना भक्तमाल भक्तिरूप अति दूर है॥ ८॥

कोई बड़े साधक कैसे ही अच्छे भक्तिमान् हों, रात-दिन भगवान्‌के गुणोंका गान करते हों, संसारके पापोंको हरते हों, जप-ध्यान आदिसे उनका हृदय परिपूर्ण हो, श्रीहरि और सन्तोंके स्वरूपको जानकर सचाईसे उनकी सेवा और उनका आदर भी करते हों तथा उसमें सुख भी मानते हों—जगत्‌के मायिक प्रपंचोंसे बचे भी हों और प्रेमको ही मूलतत्त्व मानते हों—इतनेपर भी भक्तिकी आराधना कठिन है, उसकी आराधना कोई कैसे कर सकता है? विशुद्ध भक्तिका स्वरूप समझमें नहीं आता है, मन कम्पित होकर शिथिल हो जाता है। चाहे मस्तकपर सुन्दर तिलक और गलेमें कण्ठी माला सुशोभित हो, परंतु बिना भक्तमाल-पठन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन किये भक्तिका स्वरूप बहुत दूर है, उसका जानना असम्भव है॥ ८॥

भक्तमालके मंगलाचरणकी भक्तिरसबोधिनी टीका

हरि गुरु दासनि सों साँचो सोई भक्त सही गही एक टेक फेरि उर ते न टरी है।
भक्ति रस रूप कौ स्वरूप यहै छबिसार चारु हरिनाम लेत अँसुवन झरी है॥
वही भगवन्त सन्त प्रीति को विचार करै, धरै दूरि ईशता हू पांडुन सो करी है।
गुरु गुरुताई की सचाई लै दिखाई जहाँ गाई श्री पैहारी जू की रीति रंगभरी है॥ ९॥

भगवान्, गुरुदेव और भक्तोंके प्रति जो सच्चा निष्कपट व्यवहार करता है और भक्तिकी किसी एक प्रतिज्ञाको हृदयमें धारणकर फिर उससे कभी चलायमान नहीं होता है, वही सच्चा भक्त है। रसरूपा भक्तिका सुन्दर स्वरूप यही है कि भगवान्‌के सुन्दर नामोंको लेते ही आँखोंसे प्रेमके आँसुओंकी झरी लग जाय।

ईश्वरताको दूर रखकर जो भक्तोंकी प्रीतिको सदा ध्यानमें रखे, वही भगवान् है, जैसा कि श्रीकृष्णने राजसूययज्ञमें पाण्डवोंके साथ किया है। गुरुदेवकी गुरुताकी सच्चाई भक्तमालमें वहाँ दिखायी गयी है, जहाँ पयोहारी श्रीकृष्णदासजीकी आनन्दमयी अनोखी रीति गायी गयी है॥ ९॥

भक्तमालकी रचनाके लिये श्रीनाभाजीको आज्ञा प्राप्त होना

मानसी स्वरूप में लगे हैं अग्रदास जू वै करत बयार नाभा मधुर सँभार सों।
चढ़्यो हो जहाज पै जु शिष्य एक आपदा में कर्‍यौ ध्यान खिच्यो मन छूट्यो रूप सार सों॥
कहत समर्थ गयो बोहित बहुत दूरि आवो छबि पूरि फिर ढरो ताहि ढार सों।
लोचन उघारि कैं निहारि कह्यौ बोल्यौ कौन! वही जौन पाल्यो सीथ दै दै सुकुवार सों॥ १०॥

एक बारकी बात है, स्वामी श्रीअग्रदेवजी महाराज



मानसी सेवामें संलग्न थे और श्रीनाभाजी अतिकोमल एवं मधुर संरक्षणके साथ धीरे-धीरे प्रेमसे पंखा कर रहे थे। उसी समय श्रीअग्रदासजीका एक शिष्य जहाजपर चढ़ा हुआ समुद्रकी यात्रा कर रहा था। उसका जहाज संकट (भँवर)-में फँस गया। चालक निरुपाय हो गये, तब उस शिष्यने श्रीअग्रदासजीका स्मरण किया। उससे श्रीअग्रदासजीका ध्यान अतिसुन्दरस्वरूप भगवान् श्रीसीतारामजीकी सेवासे हट गया। गुरुदेवकी मानसी सेवामें विघ्न समझकर श्रीनाभाजीने पंखेकी वायुसे जहाजको संकटसे पार कर दिया और श्रीगुरुदेवसे नम्र निवेदन किया कि प्रभो! जहाज तो बहुत दूर निकल गया, अब आप उसी शोभापूर्ण भगवान्‌की सेवामें लग जाइये। यह सुनकर श्रीअग्रदेवजीने आँखें खोलीं और नाभाजीकी ओर देखकर कहा कि अभी कौन बोला? श्रीनाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—जिसे आपने बचपनसे सीथ-प्रसाद देकर पाला है, आपके उसी दासने प्रार्थना की है॥ १०॥

अचरज दयो नयो यहाँ लौं प्रवेश भयो, मन सुख छयो, जान्यो सन्तन प्रभाव को।
आज्ञा तब दई, 'यह भई तोपै साधु कृपा उनही को रूप गुन कहो हिये भाव को'॥
बोल्यो कर जोरि, 'याको पावत न ओर छोर, गाऊँ रामकृष्ण नहीं पाऊँ भक्ति दाव को।
कहि समुझाइ, 'वोई हृदय आइ कहैं सब, जिनलै दिखाय दई सागर में नाव को'॥ ११॥

(श्रीनाभाजीका उपर्युक्त कथन सुनकर श्रीअग्र-देवजीको) महान् तथा नवीन आश्चर्य हुआ। मनमें विचारने लगे कि इसका यहाँ मेरी मानसी-सेवातक प्रवेश कैसे हो गया और यहींसे जहाजकी रक्षा कैसे की? विचार करते ही उनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे जान गये कि यह सब सन्तोंकी सेवा तथा उनके सीथ-प्रसाद-ग्रहणका ही प्रभाव है, जिससे ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है। तब श्रीअग्रदेवजीने आज्ञा दी कि 'तुम्हारे ऊपर यह साधुओंकी कृपा हुई है। अब तुम उन्हीं साधु-सन्तोंके गुण, स्वरूप और हृदयके भावोंका वर्णन करो।' इस आज्ञाको सुनकर श्रीनाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं श्रीराम-कृष्णके चरित्रोंको तो कुछ गा भी सकता हूँ, परंतु सन्तोंके चरित्रोंका ओर-छोर नहीं पा सकता हूँ; क्योंकि उनके रहस्य अतिगम्भीर हैं, मैं भक्तोंकी भक्तिके रहस्यको नहीं पा सकता।' तब श्रीअग्रदेवजीने समझाकर कहा—'जिन्होंने तुम्हें मेरी मानसी सेवा और सागरमें नाव दिखा दी, वे ही भक्त भगवान् तुम्हारे हृदयमें आकर सब रहस्योंको कहेंगे और अपना स्वरूप दिखायेंगे'॥ ११॥

श्रीनाभाजीका चरित्र-वर्णन

हनूमान वंश ही में जनम प्रशंस जाको भयो दृगहीन सो नवीन बात धारिये।
उमरि वरष पाँच मानि कै अकाल आँच माता वन छोड़ि गयी विपति विचारिये॥
कील्ह और अगर ताहि डगर दरश दियो लियो यों अनाथ जानि पूछी सो उचारिये।
बड़े सिद्ध जल लै कमण्डलु सों सींचे नैन चैन भयो खुले चख जोरी को निहारिये॥ १२॥


श्रीनाभाजीका जन्म प्रशंसनीय हनुमान-वंशमें हुआ था। आश्चर्यजनक एक नयी बात यह जानिये कि ये जन्मसे ही नेत्रहीन थे। जब इनकी आयु पाँच वर्षकी हुई, उसी समय अकालके दुःखसे दुःखित माता इन्हें वनमें छोड़ गयी। माता और पुत्र दोनोंके लिये यह कितनी बड़ी विपत्ति थी। इसे आपलोग सोचिये। दैवयोगसे श्रीकील्हदेवजी और श्रीअग्रदेवजी—दोनों महापुरुष उसी मार्गसे दर्शन देते हुए निकले। बालक नाभाजीको अनाथ जानकर जो कुछ दोनोंने पूछा, उसका उन्होंने उत्तर दिया। वे बड़े भारी सिद्ध सन्त थे। उन्होंने अपने कमण्डलुसे जल लेकर नाभाजीके नेत्रोंपर छिड़क दिया। सन्तोंकी कृपासे नाभाजीके नेत्र खुल गये और सामने दोनों सन्तोंको उपस्थित देखकर इन्हें परम आनन्द हुआ॥ १२॥

पांय परि आंसू आये कृपा करि संग लाये कील्ह आज्ञा पाइ मन्त्र अगर सुनायो है।
गलते प्रगट साधु सेवा सो विराजमान जानि अनुमानि ताही टहल लगायो है॥
चरण प्रछाल सन्त, सीथ सों अनन्त प्रीति जानी रस रीति ताते हृदै रंग छायो है।
भई बढ़वारि ताकौ पावै कौन पारावार जैसो भक्तिरूप सो अनूप गिरा गायो है॥ १३॥

दोनों सिद्ध महापुरुषोंके दर्शनकर नाभाजी उनके चरणोंमें पड़ गये। उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये। दोनों सन्त कृपा करके बालक नाभाजीको अपने साथ लाये। श्रीकील्हदेवजीकी आज्ञा पाकर श्रीअग्रदेवजीने इन्हें राममन्त्रका उपदेश दिया और 'नारायणदास' यह नाम रखा। गलता आश्रम (जयपुर)-में साधुसेवा प्रकट प्रसिद्ध थी। वहाँ सर्वदा सन्त-समूह विराजमान रहता था। श्रीअग्रदेवजीने सन्तसेवाके महत्त्वको जानकर और सन्तसेवासे ही यह समर्थ होकर जीवोंका कल्याण करनेवाला बनेगा—यह अनुमानकर नाभाजीको सन्तोंकी सेवामें लगा दिया। सन्तोंके चरणोदक तथा उनके सीथ-प्रसादका सेवन करनेसे श्रीनाभाजीका सन्तोंमें अपार प्रेम हो गया। इन्होंने भक्तिरसकी रीतियाँ जान लीं। इससे इनके हृदयमें अद्भुत प्रेमानन्द छा गया। हृदयमें भक्त-भगवान्के प्रेमकी ऐसी अभिवृद्धि हुई कि जिसका ओर-छोर भला कौन पा सकता है! इस प्रकार जैसे श्रीनाभाजी मूर्तिमान् भक्तिके स्वरूप हुए, वैसे ही सुन्दर वाणीसे इन्होंने भक्तमालमें भक्तोंके चरित्रोंको गाया है॥ १३॥

श्रीलालाचार्यजी

(कोउ) मालाधारी मृतक बह्यो सरिता में आयो।
दाह कृत्य ज्यों बंधु न्योति सब कुटुँब बुलायो॥
नाम सकोचहिं बिप्र तबहिं हरिपुर जन आए।
जेंवत देखे सबनि जात काहू नहिं पाए॥
लालाचारज लच्छधा प्रचुर भई महिमा जगति।
(श्री) आचारज जामात की कथा सुनत हरि होइ रति॥ ३३॥

श्रीरामानुजाचार्यजीके दामाद श्रीलालाचार्यजीकी कथा सुनते ही भगवान्‌में विशेष प्रीति होती है। एक बार कोई तुलसीकण्ठी धारण किये हुए मृत शरीर नदीमें बहता हुआ आया। श्रीलालाचार्यजीने उसे निकालकर उसका अपने भाईके समान दाह-संस्कार किया। तेरहवें दिन भोजनके लिये ब्राह्मणोंको तथा कुटुम्बियोंको निमन्त्रण देकर बुलवाया। अज्ञात शवका भण्डारा जानकर ब्राह्मणलोग नाक-भौंह सिकोड़ने लगे और भोजन करने कोई नहीं आया। तब वैकुण्ठधामसे भगवान्‌के पार्षद आये, जिन्हें भोजन करते हुए तो सभी लोगोंने देखा, परंतु जाते समय वे आकाशमार्गसे चले गये। किसीको मिले नहीं, उन्हें कोई न देख पाया। इस चमत्कारसे लालाचार्यजीकी महिमा संसारमें लाखों गुनी बढ़ गयी॥ ३३॥

सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराजका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

परम वैष्णव सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराज आचार्य रामानुजजीके जामाता थे। वैष्णव-वेशके प्रति उनकी अनन्य निष्ठा थी। वे वैष्णव-वेशधारी प्रत्येक सन्तको अपना भाई मानते थे और उसका उसी प्रकार आदर-सत्कार करते थे। श्रीलालाचार्यजी महाराजके इस दिव्य भावको उनकी सहधर्मिणी तो जानती थी, परंतु साधारण लोग भला इसे क्या समझें!

एक दिन श्रीलालाचार्यजी महाराजकी पत्नी जल भरनेके लिये नदीतटपर गयी हुई थीं, उनके साथ उनकी कुछ सहेलियाँ भी थीं, जो श्रीलालाचार्यजीकी वैष्णवनिष्ठाके कारण उनका मजाक उड़ाया करती थीं। जिस समय वे लोग जल भर रही थीं, उसी समय किसी वैष्णव सन्तका शव बहता हुआ उधर आया, उसके शरीरपर वैष्णव चिह्न अंकित थे और वह कण्ठी-माला धारण किये हुए था। सहेलियोंने व्यंग्य करते हुए श्रीलालाचार्यजी महाराजकी पत्नीसे कहा—'इन्हें देखकर ठीकसे पहचान लो, तुम्हारे जेठ हैं या देवर!' यह कहकर खिलखिलाती हुई चल दीं। पत्नीने घर आकर श्रीलालाचार्यजीसे यह बात बतायी, सुनकर श्रीलालाचार्यजी करुण-क्रन्दन करने लगे। अन्तमें यह सोचकर अपने मनको शान्त किया कि मेरे ये भाई भगवद्भक्त थे—वैष्णव सन्त थे, अतः इन्हें भगवद्धामकी प्राप्ति हुई है। तत्पश्चात् उनका शव प्राप्तकर अन्तिम क्रिया करनेके उद्देश्यसे वे नदीके किनारे आये और विधि-विधानपूर्वक उनकी क्रिया की।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आचारज को जामात बात ताकी सुनौ नीके पायो उपदेश सन्त बन्धु कर मानिये।
कीजै कोटि गुनी प्रीति ऐपै न बनति रीति तातें इति करौ याते घटती न आनिये॥
मालाधारी साधु तन सरिता में बह्यो आयो ल्यायो घर फेरिकै विमान शव जानिये।
गावत बजावत लै नीर तीर दाह कियो हियो दुख पायो सुख पायो समाधानिये॥ ११०॥

त्रयोदशाहके दिन श्रीलालाचार्यजीने उन वैष्णव सन्तके निमित्त ब्राह्मण-भोजनका आयोजन किया और उसके हेतु स्थानीय ब्राह्मणोंको आमन्त्रण दिया, परंतु कोई भी ब्राह्मण उनके यहाँ भोजन करने नहीं आया। उन ब्राह्मणोंने आपसमें तय किया कि यह लालाचार्य पता नहीं किस जातिका शव उठा लाया और उसके त्रयोदशाहमें हम लोगोंको खिलाकर भ्रष्ट करना चाहता है, अत: इसके यहाँ किसी भी ब्राह्मणको नहीं जाना चाहिये तथा जो ब्राह्मण परिचयके आयें, उन्हें भी सब बातें बताकर रोक देना चाहिये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी इस घटनाका इन शब्दोंमें वर्णन करते हैं—

किये सो महोच्छौ ज्ञाति विप्रनको न्योतो दियो लियो आये नाहिं कियो शंका दुखदाइये।
भये इक ठौरे माया कीने सब बोरे कछु कहैं बात औरे मरी देह बही आइये॥
याते नहीं खात वाकी जानत न जाति पाँति बड़ौ उतपात घर ल्याइ जाइ दाहिये।
मग अवलोकि उत पर्‍यो सुनि शोक हिये जिये आइ पूछैं गुरु कैसे कै निबाहिये॥ १११॥

ब्राह्मणोंकी इस दुरभिसन्धिका ज्ञान जब लालाचार्यजीको हुआ, तो वे बहुत ही दु:खी और चिन्तित हुए। उन्होंने ये सब बातें आचार्यश्री रामानुजजीसे निवेदन कीं। आचार्यश्रीने कहा कि तुम्हें इस विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वे ब्राह्मण अज्ञानी हैं और उन्हें वैष्णव-प्रसादके माहात्म्यका ज्ञान ही नहीं है। यह कहकर उन्होंने दिव्य वैष्णव पार्षदोंका आवाहन किया, वैष्णव-प्रसादकी महिमा जाननेवाले वे दिव्य पार्षद ब्राह्मण-वेशमें उपस्थित होकर श्रीलालाचार्यजीके घरकी ओर उन्मुख हुए। उन्हें देखकर वहाँके स्थानीय ब्राह्मणोंने उन्हें रोकना चाहा, परंतु उनके दिव्य तेजसे अभिभूत होकर खड़े-के-खड़े रह गये और आपसमें विचार किया कि अभी जब ये लोग भोजन करके बाहर आयेंगे तो हम लोग इनकी हँसी उड़ायेंगे कि कहो, किसके श्राद्धके ब्राह्मण-भोजनमें आप गये थे? क्या उसके कुल-गोत्रका भी आप सबको ज्ञान है?

श्रीप्रियादासजी महाराज इस प्रसंगका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

चले श्रीआचारज पै बारिज बदन देखि करि साष्टांग बात कहि सो जनाइयै।
जाओ निहशङ्क वे प्रसाद को न जानै रङ्क जानैं जे प्रभाव आवैं वेगि सुखदाइयै॥
देखे नभ भूमि द्वार ऐहैं निरधार जन वैकुण्ठ निवासी पांति ढिग ह्वै कै आइयै।
इन्हैं अब जान देवौ जनि कछु कहो अहो गहो करौ हाँसी जब घर जाय खाइयै॥ ११२॥

इधर ब्राह्मण लोग ऐसा सोच रहे थे, उधर ब्राह्मण वेशधारी दिव्य पार्षदोंने श्रीलालाचार्यजीके आँगनमें जाकर वैष्णव-प्रसाद पाया और पुन: आकाशमार्गसे वैकुण्ठधामके लिये प्रस्थान कर गये। ब्राह्मणोंने उन्हें जब आकाशमार्गसे जाते देखा तो उनकी आँखें खुल गयीं। उन्हें अपनी भूलका बहुत पछतावा हुआ। वे लोग आकर श्रीलालाचार्यजी महाराजके चरणोंमें गिर पड़े और क्षमा माँगते हुए रोने लगे। सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराज तो परम वैष्णव थे, उन्हें उन लोगोंपर किंचित् रोष था ही नहीं। वे बोले—आप सब ब्राह्मण हैं, इस प्रकार कहकर मुझे लज्जित न करें। आप सबकी कृपासे मुझे आज दिव्य वैष्णव पार्षदोंके दर्शन हुए, अत: मैं तो स्वयं आपका कृतज्ञ हूँ।

ब्राह्मणोंको अब श्रीलालाचार्यजीके साधुत्व और सिद्धत्वमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं रह गया। उन सबने श्रीलालाचार्यजीके यहाँ जाकर भगवत्प्रसादके रूपमें पृथ्वीपर गिरे हुए अन्नकणोंको बीन-बीनकर खाया और आनन्दमग्न हो गये। उन सबने आचार्यश्रीका शिष्यत्व ग्रहण किया और वैष्णव दीक्षा प्राप्त की।

श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीलालाचार्यजीकी इस वैष्णवनिष्ठाका निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आये देखि पारषद गयो गिरि भूमि सद हद करी कृपा यह जानि निज जन को।
पायो लै प्रसाद स्वाद कहि अहलाद भयो नयो लयो मोद जान्यो सांचो सन्त पन को॥
विदा ह्वै पधारे नभ मग में सिधारे विप्र देखत विचारे द्वार व्यथा भई मन को।
गयो अभिमान आनि मन्दिर मगन भये नये दृग लाज बीनि-बीनि लेत कन को॥ ११३॥
पाँइ लपटाइ अंग धूरि में लुटाय कहैं करो मनभायो और दीन बहु भाख्यो है।
कही भक्तराज तुम कृपा मैं समाज पायो गायौ जो पुराणन में रूप नैन चाख्यो है॥
छाड़ो उपहास अब करो निजदास हमैं पूजै हिये आस मन अति अभिलाख्यो है।
किये परशंस मानो हंस ये परम कोऊ ऐसे जस लाख भांति घर घर राख्यो है॥ ११४॥

श्रीपादपद्मजी

गुरू गमन (कियो) परदेस सिष्य सुरधुनी दृढ़ाई।
एक मंजन एक पान हृदय बंदना कराई॥
गुरु गंगा में प्रबिसि सिष्य को बेगि बुलायो।
बिष्नुपदी भय जानि कमलपत्रन पर धायो॥
पाद पद्म ता दिन प्रगट, सब प्रसन्न मन परम रुचि।
श्रीमारग उपदेस कृत श्रवन सुनौ आख्यान सुचि॥ ३४॥

श्रीसम्प्रदायके अनुयायी गुरुदेवके उपदेश करनेसे गंगाजीमें उत्पन्न निष्ठाका पवित्र इतिहास सुनिये। गुरुदेव अपनी अनुपस्थितिमें अपने समान गंगाजीको माननेका उपदेश देकर चले गये। ये गुरुवत् गंगाजीकी उपासना करने लगे। अन्य कोई शिष्य श्रद्धापूर्वक स्नान करते थे, कोई गंगाजलपान करते थे, परंतु पादपद्मजी हृदयसे ही गंगाजीकी वन्दना-पूजा करते थे। कभी भी गंगाजीमें स्नान, आचमन नहीं करते थे। इनके हृदयके भावको न जानकर दूसरे लोग आलोचना करते थे। बादमें गुरुदेव लौटकर आये और इनकी निष्ठाका परिचय प्रकट करनेके लिये एक दिन स्नानार्थ गंगाजीमें घुसे और पादपद्मजीको वहीं शीघ्र वस्त्र लेकर आनेको कहा। गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन और गंगामें चरणस्पर्श इन दोनों अपराधोंसे ये भयभीत हुए। भाव जानकर गंगाजीने तटसे लेकर गुरुजीके समीपतक कमलपत्र प्रकट कर दिये। उन्हींपर पैर रखते हुए ये गुरुदेवके समीप दौड़कर गये। पादपद्मजीका जो प्रभाव गुप्त था, वह उस दिन प्रकट हो गया, इस दिव्य चमत्कारको देखकर सभीके मनमें गंगाजी और पादपद्मजीमें अपार श्रद्धा हो गयी। उसी दिनसे उनका पादपद्माचार्य यह नाम पड़ गया॥ ३४॥

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने निम्न दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

देवधुनी तीर सो कुटीर बहु साधु रहैं रहै गुरुभक्त एक न्यारो नहिं ह्वै सकै।
चले प्रभु गांव जिनि तजो बलि जांव करौ कही दाससेवा गंगा में ही कैसे छ्वै सकै॥
क्रिया सब कूप करै 'बिष्णुपदी' ध्यान धरै रोष भरै सन्त श्रेणी भाव नहीं भ्वै सकै।
आये ईश जानि दुख मानि सो बखान कियो आनि मन जानि बात अंग कैसे ध्वै सकै॥ ११५॥
चले लैके न्हान संग गंग में प्रवेश कियो रंगभरि बोले सो अँगोछा वेगि ल्याइये।
करत विचार शोच सागर न वारापार गंगा जू प्रगट कह्यो कंजन पै आइये॥
चलेई अधर पग धरैं सो मधुर जाइ प्रभु हाथ दियो लियो तीर भीर छाइये।
निकसत धाय चाय पग लपटाय गये बड़ौ परताप यह निशिदिन गाइये॥ ११६॥

श्रीरामानुजसिद्धान्तके मतावलम्बी अन्य आचार्यगण

देवाचारज दुतिय महामहिमा हरियानँद।
तस्य राघवानंद भए भक्तन को मानद॥
पृथ्वी पत्रावलँब करी कासी अस्थाई।
चारि बरन आश्रम सबहीको भक्ति दृढ़ाई॥
तिन के रामानँद प्रगट बिश्वमँगल जिन्ह बपु धर्‍यो।
(श्री) रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्‍यो॥ ३५॥

श्रीदेवाचार्यजीद्वारा श्रीरामानुजाचार्यकी पद्धति अर्थात् विशिष्टाद्वैतसम्मत श्रीसम्प्रदायका प्रताप संसारी जीवोंको भक्तिरूप जीवन देनेके लिये अमृतके समान कल्याणकारी होकर पृथ्वीपर फैला। देवगुरु बृहस्पतिके समान महामहिमावाले दूसरे आचार्य श्रीहर्यानन्दजी हुए। उनके शिष्य श्रीराघवानन्दजी हुए, जो भक्तोंको आदर देनेवाले थे, जिन्होंने भारतभूमिको अपने विजयपत्रके आश्रित कर लिया था। ये काशीमें स्थायीरूपसे निवास करते थे। इन्होंने चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके लोगोंमें भगवान्‌की भक्तिको सुदृढ़रूपसे स्थापित किया। उनके शिष्यरूपमें भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी प्रकट हुए, जिन्होंने संसारका कल्याण करनेके लिये ही शरीर धारण किया था॥ ३५॥

श्रीसम्प्रदायके इन सन्तोंका पावन चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीदेवाचार्यजी

श्रीदेवाचार्यजी महाराज भगवत्प्राप्त परम वैष्णव सिद्ध सन्त थे। श्रीमद्भागवतग्रन्थपर आपकी अगाध श्रद्धा थी। आपके कथावाचनके समय जड़-चेतन सभी मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। वैष्णव धर्मका प्रचार करना आपका जीवन-लक्ष्य था और इसकी सम्पूर्तिके लिये आप सदैव विचरण किया करते थे।

श्रीहर्यानन्दजी

परम वैष्णव सन्त श्रीहर्यानन्दजी महाराज श्रीश्रियानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आप सदा भगवान् श्रीहरिकी भक्तिमें लवलीन रहा करते थे, इसलिये आपके गुरुदेवने आपका 'हर्यानन्द'—यह नाम रख दिया था।

एक बार आप महाप्रभु भगवान् जगन्नाथजीका दर्शन करने भगवद्धाम श्रीजगन्नाथपुरीकी यात्रापर जा रहे थे, आपके साथ और भी बहुतसे वैष्णव भक्त थे। उस समय जगन्नाथपुरीमें भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्राका महोत्सव चल रहा था। भगवान्‌को रथपर बैठाकर गुण्डिचा मन्दिर ले जाया जा रहा था। भगवान् जगन्नाथमहाप्रभुका विशाल गगनचुम्बी रथ भक्तोंद्वारा खींचा जा रहा था। अचानक रथ चलते-चलते रुक गया। लोगोंने बहुत प्रयास किया, परंतु रथ टस-से-मस न हुआ। तभी श्रीहर्यानन्दजी भीड़से निकलकर आगे आये और सबको सुनाकर कहा कि आपलोग रथको छोड़कर दूर हट जायँ, यह रथ स्वयं चलेगा।

श्रीहर्यानन्दजी महाराजकी बात सुनकर उपस्थित जनसमुदाय रथ छोड़कर अलग हट गया। आश्चर्य! रथ अपने-आप चलने लगा और सौ कदमतक अपने-आप चलता रहा। उपस्थित जनसमुदायमें महाप्रभु जगन्नाथस्वामीके साथ-साथ श्रीहर्यानन्दजी महाराजकी भी जय-जयकार होने लगी।

श्रीराघवानन्दजी

श्रीसम्प्रदायमें श्रीराघवानन्दजी महाराजको गुरुदेव वसिष्ठका अवतार माना जाता है। आप श्रीहर्यानन्दजी महाराजके कृपापात्र थे। वेद-शास्त्र-पुराणादिके प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी आप अत्यन्त अमानी थे, किसी प्रकारका अहंकार आपको छू नहीं गया था। आपने चारों

वर्णोंके लोगोंको भक्तिका उपदेश दिया। आप एक सिद्ध सन्त थे, परंतु आपकी सिद्धियाँ चमत्कार-प्रदर्शनके लिये नहीं, अपितु लोगोंको भगवद्भक्तिकी ओर प्रवृत्त करनेके लिये थीं। आपने बहुत समयतक काशीमें निवास किया। आपको श्रीरामानन्दाचार्यजीका गुरु होनेका गौरव प्राप्त है।

श्रीरामानन्दाचार्यजी

श्रीरामानन्दजी श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य हैं। कबीर, सेन, धन्ना, रैदास आदि इनके शिष्य थे। इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण आगे छप्पय ३६ पृ० १६८ पर दिया गया है।

श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी और उनके द्वादश प्रधान शिष्य

अनँतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानँद रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि॥
औरौ सिष्य प्रसिष्य एक ते एक उजागर।
बिस्वमँगल आधार सर्वानँद दसधा आगर॥
बहुत काल बपु धारि कै प्रनत जनन कौं पार दियो।
(श्री) रामानँद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥ ३६ ॥

जिस प्रकार श्रीरघुनाथजीने वानरोंकी सेनाको पार करनेके लिये समुद्रपर पुल बनवाया था, उसी प्रकार श्रीरामानन्दाचार्यजीने संसारी जीवोंको भवसागरसे पार करनेके लिये अपनी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परासे सेतु-निर्माण कराया। श्रीअनन्तानन्दजी, श्रीकबीरदासजी, श्रीसुखानन्दजी, श्रीसुरसुरानन्दजी, श्रीपद्मावतीजी, श्रीनर-हरियानन्दजी, श्रीपीपाजी, श्रीभावानन्दजी, श्रीरैदासजी, श्रीधन्नाजी, श्रीसेनजी और श्रीसुरसुरानन्दजीकी पत्नी—ये श्रीरामानन्दचार्यजीके सर्वप्रधान द्वादश शिष्य थे। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से शिष्य-प्रशिष्य एक-से-एक प्रसिद्ध एवं प्रतापी हुए। ये संसारका कल्याण करनेवाले, भक्तोंके आधार और प्रेमाभक्तिके खजाने थे। श्रीरामानन्दाचार्यजीने बहुत कालतक शरीरको धारणकर शरणागत जीवोंको संसार-सागरसे पार किया॥ ३६॥

श्रीरामानन्दजी एवं उनके द्वादश प्रधान शिष्योंके चरित इस प्रकार हैं—

श्रीरामानन्दाचार्यजी

श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य श्रीरामानन्दजी एक उच्चकोटिके आध्यात्मिक महापुरुष थे। इनका जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मणकुलमें माघकृष्ण सप्तमी, भृगुवार, संवत् १३२४ को प्रयागमें त्रिवेणीतटपर हुआ था। इनके पिताका नाम पुण्यसदन और माताका नाम श्रीमती सुशीला था।

आठवें वर्ष इनका उपनयन-संस्कार किया गया। उपनीत ब्रह्मचारी जब पलाशदण्ड धारणकर काशी विद्याध्ययन करने चला, तब आचार्य एवं सम्बन्धियोंके आग्रह करनेपर भी नहीं लौटा। विवश हो माता-पिता भी साथ हो लिये और बालक अपनी माताके साथ अपने मामा ओंकारेश्वरके यहाँ काशीमें ठहरकर विद्याध्ययन करता रहा। बारह वर्षकी अवस्थातक बालक ब्रह्मचारीने समस्त शास्त्रोंका अध्ययन पूर्ण कर लिया।

विवाहकी चर्चा चली। बालकने इनकार कर दिया। इसके पश्चात् स्वामी राघवानन्दजीसे दीक्षा लेकर पंचगंगा घाटपर जाकर एक घाटवालेकी झोंपड़ीमें ठहरकर तप करना आरम्भ कर दिया। लोगोंने ऊँचे स्थानपर एक कुटी बनाकर तपस्वी बालकसे उसमें रहनेकी विनय की। उनकी विनय सुनकर वे उस कुटियामें आ गये और उसीमें ज्ञानार्जन और तपस्या करते रहे। उनके अलौकिक प्रभावके कारण उनकी बड़ी ख्याति हुई। बड़े-बड़े साधु और विद्वान् आपके दर्शनार्थ आश्रममें आने लगे।

स्वामीजीने देश और धर्मका महान् कल्याण किया।

उनका दिव्य तेज राजनीतिक क्षेत्रमें उसी प्रकार चमकता था, जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्रमें। उस महाभयंकर कालमें आर्य-जाति और आर्य-धर्मके त्राणके साथ ही विश्वकल्याण एवं भगवद्धर्मके अभ्युत्थानके लिये जैसे शक्तिशाली और प्रभावशाली आचार्यकी आवश्यकता थी, स्वामी रामानन्दजी वैसे ही जगद्गुरु थे।

कहते हैं कि इनके सम्प्रदायकी प्रवर्तिका जगज्जननी श्रीसीताजी हैं। उन्होंने पहले हनुमान्जीको उपदेश दिया था और फिर उनसे संसारमें इस रहस्यका प्रकाश हुआ। इस कारण इस सम्प्रदायका नाम 'श्रीसम्प्रदाय' है और इसके मुख्य मन्त्रको रामतारक कहते हैं।

अपने परमधाम-गमनके पूर्व श्रीस्वामीजीने अपनी शिष्यमण्डलीको सम्बोधित करके कहा कि 'सब शास्त्रोंका सार भगवत्स्मरण है, जो सच्चे सन्तोंका जीवनाधार है। कल श्रीरामनवमी है। मैं अयोध्याजी जाऊँगा। परंतु मैं अकेला जाऊँगा। सब लोग यहीं रहकर उत्सव मनायें। कदाचित् मैं लौट न सकूँ, आपलोग मेरी त्रुटियों एवं अविनय आदिको क्षमा कीजियेगा। यह सुनकर सबके नेत्र सजल हो गये। दूसरे दिन स्वामीजी संवत् १५१५ में अपनी कुटीमें अन्तर्धान हो गये।

यहाँ संक्षेपमें इनकी शिष्यपरम्पराका वर्णन प्रस्तुत है—

श्रीरामानन्दजीके द्वादश शिष्य बहुत प्रसिद्ध हैं। इन द्वादश भक्तोंमेंसे श्रीअनन्तानन्दजीका वर्णन छप्पय ३७ पृ० १७० पर, श्रीकबीरदासजीका छप्पय ६० पृ० २४२ पर, श्रीसुखानन्दजीका छप्पय ६४ पृ० २६१ पर, श्रीसुरसुरानन्दजीका छप्पय ६५ पृ० २६२ पर, श्रीनरहरियानन्दजीका छप्पय ६७ पृ० २६४ पर, श्रीपीपाजीका छप्पय ६१ पृ० २४७ पर, श्रीरैदासजीका छप्पय ५९ पृ० २३८ पर, श्रीधन्नाजीका छप्पय ६२ पृ० २५८ पर, श्रीसेनजीका छप्पय ६३ पृ० २५९ पर तथा श्रीसुरसुरीजीका छप्पय ६६ पृ० २६३ पर आया है।

अन्य शिष्योंका वर्णन आगे इस प्रकार किया गया है—

श्रीपद्मावतीजी

श्रीपद्मावतीजी साक्षात् भगवती लक्ष्मीजीकी अंशस्वरूपा ही थीं, पद्मसदृश कान्ति होनेके कारण उनके माता-पिताने उनका पद्मावती यह नाम रखा था। पद्मावतीजीका जन्म त्रिपुरा नामक नगरमें एक ब्राह्मणदम्पतीके घर हुआ था। आपके पिता पण्डित श्रीप्रभाकरजी महाराज भगवती लक्ष्मीके अनन्य आराधक थे। उनकी आराधनाके फलस्वरूप साक्षात् भगवती लक्ष्मीजी ही उनकी कन्याके रूपमें अवतरित हुई थीं। बालिका पद्मावती जब पाँच वर्षकी हुईं तो उन्होंने अपने पितासे काशी ले चलनेका आग्रह किया। उन्होंने यह भी बताया कि वे काशीमें श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजका दर्शन करना चाहती हैं। माता-पिता अपनी लाडली पुत्रीका आग्रह स्वीकारकर उसे लेकर काशीपुरी आये। पद्मावतीने श्रीस्वामीजीके दर्शनकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और आचार्यश्रीसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। पद्मावतीकी विनती मानकर आचार्यश्रीने उन्हें मन्त्र-दीक्षा दी और उपासना-रहस्यका बोध कराया। पद्मावतीके कहनेपर उनके माता-पिताने भी श्रीस्वामीजीसे दीक्षा ले ली। इस प्रकार पद्मावती अपने माता-पिताके साथ काशीमें ही रहकर भगवदाराधन करने लगीं।

श्रीभावानन्दजी

श्रीसम्प्रदायमें श्रीभावानन्दजी महाराजको जनकजीका अवतार माना जाता है। इनके गृहस्थाश्रमका नाम श्रीविट्ठलपन्त था। इनके पूर्वज मिथिलाके निवासी थे, परंतु इनके पितामह भगवान् पुण्डरीकनाथजीके बड़े भक्त थे, अतः वे पण्ढरपुरके पास ही आलन्दी नामक ग्राममें बस गये। वहीं श्रीविट्ठलपन्तजीका जन्म हुआ, जो बादमें स्वामी रामानन्दाचार्यजीसे दीक्षा लेकर भावानन्दके नामसे विख्यात हुए। आपका विवाह सिद्धोपन्त नामक एक कुलीन ब्राह्मणकी परम सुशीला कन्या रुक्मिणीसे हो गया। श्रीरुक्मिणीबाईजी परम पतिव्रता थीं, वे पतिके कार्यों, अतिथि-अभ्यागतोंके सत्कार और गृहस्थ-धर्मका सम्यक् रूपसे निर्वाह करती थीं।

एक दिन आपके यहाँ एक सन्त आये, सत्संगके दौरान उन्होंने बताया कि काशीमें श्रीरामानन्दाचार्य नामके एक परम भागवत वैष्णव सन्त हैं, मैं उन्हींके दर्शन करने जा रहा हूँ। यह सुनकर आप भी काशी जानेके लिये तैयार हो

गये। पत्नीको घर-गृहस्थी और अतिथि-सेवाका कार्य सौंपकर स्वयं उन सन्तके साथ काशीके लिये प्रस्थान कर गये। मार्गमें उन्हें अनुभूति हुई कि मेरे साथ चल रहे सन्त साक्षात् विश्वामित्रजी हैं और इनके साथ सुकुमार अवस्थाके श्याम-गौर दो किशोर श्रीराम-लक्ष्मण हैं। फिर क्या था! वहीं इनकी भावसमाधि लग गयी। समाधिसे जाग्रत् होनेपर उन्होंने देखा कि वहाँ न तो वे सन्त हैं और न ही दोनों किशोर। फिर तो वे प्रभु-दर्शनके लिये व्याकुल हो गये और 'हा राम'-'हा रघुनाथ' कहते हुए करुण क्रन्दन करने लगे। कहते हैं कि इनकी इस प्रकारकी दशा देखकर दो बालक इनके पास आये और इन्हें खानेके लिये भगवत्प्रसाद दिया और फिर इन्हें मार्ग दिखाते हुए काशीके पंचगंगाघाटपर पहुँचा दिया, जहाँ स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजीका आश्रम था। उन बालकोंके प्रति आपका श्रीराम-लक्ष्मणका भाव था, अतः उनके चले जानेपर पुनः आप विरह-व्याकुल हो गये। उसी समय श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके शंखकी दिव्य ध्वनि आपके कानोंमें पड़ी, जिसे श्रवणकर आपके अन्तःकरणमें ज्ञानका उदय हुआ और आपने स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरण ग्रहण की। स्वामीजीने आपको राम-मन्त्रकी दीक्षा देकर आपका नाम भावानन्द रख दिया।

गुरुकी आज्ञासे आपने पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। कालान्तरमें निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव और सोपानदेव नामक उनके तीन पुत्र हुए, जो आगे चलकर महान् सन्त हुए। एक कन्या हुई, जिसका नाम मुक्ताबाई हुआ, वह भी सिद्धयोगिनी थी।

श्रीअनन्तानन्दजी और उनकी शिष्यपरम्परा

जोगानंद गयेस करमचँद अल्ह पैहारी।
(सारी) रामदास श्रीरंग अवधि गुन महिमा भारी॥
तिन के नरहरि उदित मुदित मेहा मंगलतन।
रघुबर जदुबर गाइ बिमल कीरति संच्यो धन॥
हरिभक्ति सिंधु बेला रचे पानि पद्मजा सिर दए।
अनँतानँद पद परसि कै लोकपाल से ते भए॥ ३७॥

योगानन्दजी, गयेशजी, कर्मचन्दजी, अल्हजी, पयहारीजी, (सारी) रामदासजी और श्रीरंगजी उत्तम-गुणोंकी सीमा तथा महाप्रतापी हुए। श्रीरंगजीके शिष्यके रूपमें परमप्रसन्न श्रीनरहरिजीका उदय हुआ। ये सभी निरन्तर भक्तिकी वर्षा करनेवाले मेघके समान मंगलमय शरीर धारण करनेवाले हुए। श्रीअनन्तानन्दजी एवं उनके शिष्यगणोंने श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजीका निर्मल यशोगान करके पवित्र कीर्तिरूपी धनका संग्रह किया। श्रीअनन्तानन्दजी भगवद्भक्तिरूपी समुद्रकी मर्यादा थे। पद्मजा श्रीजानकीजीने आपके सिरपर अपना वरदहस्तकमल रखकर आशीर्वाद दिया। श्रीस्वामी अनन्तानन्दाचार्यजीके पूज्य श्रीचरण-कमलोंका स्पर्श करके उनके ये शिष्यगण लोकपालोंके समान भक्तजनोंका पालन करनेवाले हुए॥ ३७॥

यहाँ श्रीअनन्तानन्दजी तथा उनके शिष्योंका चरित संक्षेपमें दिया जा रहा है—

श्रीअनन्तानन्दजी

श्रीअनन्तानन्दजी महाराज स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। आपके गृहस्थाश्रमका नाम पं० छन्नूलाल था। आपका जन्म श्रीअयोध्याजीके समीप रामरेखा नदीके तटपर स्थित महेशपुर नामक ग्राममें हुआ था, आपके पिता पं० श्रीविश्वनाथमणित्रिपाठी सनाढ्य ब्राह्मण थे, भगवान् श्रीराम और अयोध्याधामके प्रति विशेष निष्ठा होनेके कारण ये 'अवधू पण्डित' के नामसे विख्यात थे।

अवधू पण्डित भगवती सरस्वतीके बड़े भक्त थे,

कहते हैं कि माता सरस्वतीजीके ही आशीर्वादसे कार्तिकपूर्णिमा, सं० १३६३ वि० को श्रीअनन्तानन्दजीका जन्म हुआ था। महापुरुषोंका जीवन बहुत ही विषम होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी ही भाँति आपकी भी माताका परमधामगमन आपके जन्मके ठीक बाद ही हो गया था। उसके कुछ समय बाद पिताकी भी छत्रच्छाया सिरसे उठ गयी। अब तो बालक छन्नू अनाथ ही हो गये, ऐसे समयमें अवधू पण्डितके यजमान ग्वालोंकी दृष्टि आपपर पड़ी। उन लोगोंने आपका लालन-पालन किया। थोड़ा बड़े होनेपर आप भी ग्वाल-बालोंके साथ वनमें गाय चराने लगे।

इधर भगवान्ने पं० श्रीश्यामकिशोर नामक एक भगवद्भक्त ब्राह्मणको ध्यानावस्थामें आज्ञा दी कि वह आपको अपने घर लाये और लालन-पालन करे। पं० श्रीश्यामकिशोरजीको भी कोई सन्तान नहीं थी, प्रभुकी आज्ञा मानकर उन्होंने आपका पुत्रवत् पालन-पोषण किया और विद्याध्ययनके लिये काशी ले आये और फिर यहीं बस गये। आप भगवती सरस्वतीके वरद पुत्र थे, थोड़े ही समयमें आप सर्वशास्त्रनिष्णात होकर काशीके प्रतिष्ठित विद्वान् हो गये।

एक बारकी बात है, महाशिवरात्रिको आप भगवान् विश्वनाथजीके मन्दिरमें जागरण कर रहे थे। उसी समय आपको स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी दिव्य शंख-ध्वनि सुनायी दी। उस शंख-ध्वनिसे आकृष्ट होकर आप पंचगंगाघाटस्थित स्वामी रामानन्दजीके आश्रममें आये और वहीं उसी समय उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया, फिर लौटकर घर नहीं गये। श्रीमदाचार्यचरणने आपको श्रीराममन्त्रकी दीक्षा देकर 'श्रीअनन्तानन्द' नाम रख दिया।

श्रीयोगानन्दजी

श्रीअनन्तानन्दजीके शिष्य परम वैष्णव सन्त और श्रीरामभक्त श्रीयोगानन्दजीके गृहस्थाश्रमका नाम श्रीयज्ञेशदत्त था। आपके पिता श्रीमणिशंकरजी परम यशस्वी वैदिक ब्राह्मण और भगवान् सूर्यके भक्त थे। भगवान् सूर्यदेवके वरदानसे गुजरात-प्रान्तके सिद्धपुरमें आपका जन्म वैशाख कृष्ण ७, सं० १४५७ वि० को हुआ। बालक यज्ञेश बचपनसे ही दीपककी लौको टकटकी लगाकर देखा करते थे, जो इनके आगे चलकर सिद्धयोगी बननेका संकेत था। नौ वर्षकी अवस्थामें बालक यज्ञेशका यज्ञोपवीत हुआ और वे पण्डित श्रीनाथजी महाराजकी पाठशालामें विद्याध्ययन करने लगे। बालक यज्ञेश विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे, उनकी अद्भुत प्रतिभाको देखकर श्रीनाथजीने उन्हें काशी जाकर विद्याध्ययन करनेका परामर्श दिया। बालक यज्ञेशने गुरूपदेशको स्वीकारकर काशीमें पं० श्रीनारायणभट्टजीकी पाठशालामें न्याय-वेदान्तका अध्ययन करना शुरू किया। थोड़े ही दिनोंमें आपकी गणना काशीके प्रतिष्ठित पण्डितोंमें होने लगी। इसके बाद आप योगका अभ्यास करने लगे। इस क्षेत्रमें भी आपको अद्भुत सफलता मिली और आप लम्बी अवधिकी समाधियाँ लगाने लगे।

काशीमें ही आपका विवाह एक सुशीला ब्राह्मण-कन्यासे हो गया, परंतु आपका गृहस्थ-जीवन अधिक समयतक न चल सका और अर्धांगिनीका परलोकगमन हो गया। इस घटनाने आपमें संसारके प्रति वैराग्यभावको जन्म दिया और आपने सब धन-सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान कर दी। अकिंचनरूपमें आप भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करने गये और वहीं आपको प्रेरणा हुई कि इसे विधिका विधान मानकर स्वीकार करो और स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरण ग्रहण करो। श्रीयोगेशजी मन्दिरसे सीधे श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरणमें आये और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। श्रीस्वामीजीने कृपापूर्वक आपको श्रीराम-मन्त्रका उपदेश दिया और यज्ञेशदत्तके स्थानपर आपका नाम 'योगानन्द' रख दिया। श्रीयोगानन्दजी महाराज कहा करते थे कि भक्तको पतिव्रता स्त्री और चातककी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति रखनी चाहिये।

श्रीगयेशजी

श्रीगयेशजी स्वामी रामानन्दाचार्यजीके द्वादश प्रधान

शिष्योंमें एक श्रीअनन्ताचार्यजी महाराजके शिष्य थे। भगवद्भक्तिके प्रचारार्थ आप भगवान्‌के नाम-गुणका कीर्तन करते हुए विचरण करते रहते थे। एक बारकी बात है, आप भ्रमण करते हुए एक गाँवके निकट पहुँचे और इमलीके एक सूखे वृक्षके नीचे स्वच्छ-समतल स्थानपर बैठ गये। वहीं भगवान्‌का ध्यान करते हुए आपको समाधि लग गयी। उस गाँवमें एक वैष्णवद्वेषी व्यक्ति निवास करता था। उसने जब आपको देखा तो आपका उपहास करने लगा। वह उधरसे जानेवाले लोगोंसे कहता—'भाइयो! देखो, ये एक सिद्ध महात्मा बैठे हैं; ये तबतक यहाँसे नहीं उठेंगे, जबतक यह सूखा पेड़ हरा नहीं हो जायगा।'

इस प्रकार वह वैष्णवद्वेषी व्यक्ति श्रीगयेशजीकी हँसी उड़ा रहा था, परंतु गयेशजीको क्या! वे तो निर्विकार भावसे अपने इष्टदेवके स्वरूपचिन्तनमें मग्न थे, उन्हें बाह्य जगत्‌का ज्ञान ही कहाँ था! परंतु सर्वज्ञ परमात्मासे अपने भक्तका अपमान न देखा गया, उन्होंने श्रीगयेशजीकी महिमाका ख्यापन करनेके लिये उस सूखे इमलीके वृक्षको हरा-भरा कर दिया। फिर क्या था? अभीतक जो जन-समुदाय उनकी हँसी उड़ानेके लिये एकत्र हुआ था, वही अब उनकी जय-जयकार करने लगा।

श्रीकर्मचन्दजी

श्रीकर्मचन्दजी अनन्तानन्दजीके शिष्य थे। आपके पिताका नाम धनचन्द था। राजस्थानमें देवासा नामका एक ग्राम है, वहाँके धनी श्रेष्ठियोंमें आपकी गणना थी। आपकी धर्मपत्नी परमभगवद्भक्ता, उदार-हृदया और सन्त-सेविका थीं; परंतु धनचन्द पत्नीके इतने धार्मिक होनेके बाद भी सन्तान-सुखसे वंचित ही थे, अतः वे धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, सन्त-सेवा और दान आदिको ढकोसला ही मानते थे। एक बार जब धनचन्दजीकी पत्नी गर्भवती थीं तो वे किसी नास्तिकके प्रभावमें आकर पत्नीसे कहने लगे कि यदि तुम्हारी संतान इस बार भी जीवित नहीं रही तो मैं तुम्हें ही मार डालूँगा, अन्यथा यह सन्त-सेवा करना छोड़ दो।

धनचन्दजीकी पत्नीको पतिके इस दुर्भावसे बहुत दुःख हुआ, परंतु उनकी सन्त-सेवामें निष्ठा और विश्वास दृढ़ ही रहा। इस अवधिमें वे भगवान्‌से बराबर प्रार्थना करती रहीं कि प्रभो! मेरे सुखके लिये नहीं, अपितु सन्त-महिमाकी प्रतिष्ठा संसारमें बनी रहे—इस हेतु मुझे एक भक्त पुत्र प्रदान कीजिये। भगवान्‌की लीला! और बार तो पुत्र जन्म लेकर कुछ दिन जीवित रहता था, इस बार तो उसकी छठी भी न हो सकी और वह चल बसा।

धनचन्दजीकी पत्नीको पुत्र-वियोगका दुःख तो कम, पर सन्त-महिमापर प्रश्न-चिह्न लगनेका बहुत दुःख था। धनचन्द तो आगबबूला ही हो गये और पत्नीका केश पकड़कर घरसे निकालने लगे। इतनेमें ही किसी व्यक्तिने आकर कहा कि गाँवमें स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके पट्टशिष्य श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी आये हैं; वे सिद्ध सन्त हैं, उनकी कृपासे यह बालक पुनः जीवित हो सकता है, अतः आप लोगोंको इस बालकको लेकर उनकी शरणमें चलना चाहिये। इतना सुनना था कि धनचन्दकी पत्नी तत्काल श्रीअनन्तानन्दजी महाराजके दर्शन करने चल दी, उसे अब भी सन्त-भगवन्तकी कृपापर पूर्ण विश्वास था। श्रीअनन्तानन्दजीके पास पहुँचकर उसने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सन्त-महिमाकी प्रत्यक्ष अनुभूति कराकर पतिको सद्‌बुद्धि प्रदान करनेका आग्रह किया।

श्रीअनन्तानन्दजी धनचन्दके घर आये और बालकके मुखमें चरणोदक डाला। सन्तकृपाका चमत्कार! निश्चेष्ट पड़े बालकके शरीरमें श्वास-प्रश्वासके स्पन्दन होने लगे! फिर क्या था, हर्षसे सन्त-भगवन्तका जयघोष होने लगा। धनचन्द तो इस सुखद आश्चर्यको देखकर किंकर्तव्यविमूढ़से रह गये, फिर पश्चात्तापके आँसुओंसे श्रीअनन्तानन्दजीके चरणोंका प्रक्षालन करने लगे। अनन्तानन्दजीने उन्हें उठाया और भगवद्भक्तिका उपदेश दिया। तत्पश्चात् उन्होंने बालकके गलेमें कण्ठी बाँधकर उसे भी श्रीरामनामका उपदेश दिया और उसका नाम रख दिया कर्मचन्द। बड़े होनेपर श्रीकर्मचन्दजीने अपना शेष जीवन भगवत्सेवा और भगवद्भक्तिके प्रचारमें बिताया।

श्रीसारीरामदासजी

श्रीसारीरामदासजी महाराज श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आप परम वैष्णव सन्त थे और भगवद्धर्मके प्रचारार्थ तथा भगवद् विमुखोंको भक्तिमार्गपर लानेके उद्देश्यसे निरन्तर विचरण करते रहते थे।

श्रीरंगजी

श्रीरंगजी श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी महाराजके प्रधान शिष्योंमें एक थे। गृहस्थाश्रमके समय आपका निवास द्यौसा नामक ग्राममें था, जो तत्कालीन जयपुर राज्यमें आता था। आप वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए थे। आपके यहाँ सेवाकार्य करनेके लिये एक नौकर रखा गया था, परंतु वह स्वभावसे बड़ा ही दुष्ट था। कालवश मृत्युको प्राप्तकर वह यमलोक गया। वहाँ उस पापीको यमराजने दूतकार्यमें नियुक्त किया और मृत प्राणियोंके प्राणोंको लानेका कार्य सौंपा। एक बार यमराजने उसे एक बनजारेके प्राणोंका हरण करके लानेको कहा, जो कि उसी द्यौसा ग्रामका रहनेवाला था, जहाँ वह मरनेसे पहले श्रीरंगजीके यहाँ नौकरी करता था। वहाँ आनेपर वह सबसे पहले श्रीरंगजीसे मिलने गया। वे उसे देखते ही चौंक पड़े और बोले—अरे! मैंने सुना कि तू मर गया है, फिर तू यहाँ कैसे आ गया? यमदूतने कहा—मालिक! आपने ठीक ही सुना था, मैं मर चुका हूँ और अब यमदूत बन गया हूँ। यहाँ मैं बनजारेको ले जाने आया हूँ। श्रीरंगजीने कहा—अभी तो वह पूर्ण स्वस्थ है और थोड़ी देर पहले ही मेरे यहाँसे कुछ माल लादकर ले गया है, उसे तुम कैसे ले जाओगे? उसने कहा—मैं उसके बैलकी सींगपर बैठ जाऊँगा, जिससे कालप्रेरित वह बैल सींग मारकर उसका पेट फाड़ देगा। श्रीरंगजीने पूछा—क्या तुमलोग सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करते हो? यमदूत बोला—नहीं, हमलोग केवल पापियोंके साथ ही ऐसा व्यवहार करते हैं, भगवान्‌के भक्तोंकी ओर तो हम देख भी नहीं सकते, अतः मैं आपको भी यह सलाह देने आया हूँ कि जीवनके शेष भागमें आप भगवद्भक्ति कर लें। मैंने आपका नमक खाया है, अतः आपको कष्टमें पड़ते नहीं देखना चाहता हूँ। आपको यदि मेरी बातोंपर विश्वास न हो तो आप मेरे साथ बनजारेके घर चलिये। मैं केवल आपको ही दिखायी दूँगा, दूसरा कोई मुझे नहीं देख सकेगा।

यह कहकर यमदूत बनजारेका प्राण-हरण करनेके उद्देश्यसे उसके घरकी ओर चल दिया। श्रीरंगजी भी उसके पीछे-पीछे चल दिये, वहाँ जाकर श्रीरंगजीने देखा कि बनजारा अपने बैलको खली-भूसा चला रहा है। बैल बार-बार सिर हिला रहा था, जिससे बनजारेको खली-भूसा चलानेमें असुविधा हो रही थी; अतः उसने एक हाथसे बैलको जोरसे हटाया। ठीक उसी समय यमदूत जाकर बैलकी सींगोंपर बैठ गया, फिर तो कालप्रेरित बैलने क्रोधमें भरकर सींगोंसे ऐसा प्रहार किया कि बनजारेका पेट फट गया, उसकी आँतें बाहर निकल आयीं और वह वहीं तुरंत मर गया।

श्रीरंगजीकी आँखोंके सामने घटी इस आश्चर्यमयी घटनाने उनकी आँखें खोल दीं, उन्होंने श्रीअनन्तानन्दजी महाराजके चरण पकड़े और उनके उपदेशानुसार भगवद्भक्ति करने लगे।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

द्यौसा एक गाँव तहाँ श्रीरंग सुनाम हुतो बनिक सरावगी की कथा लै बखानिये।
रहतो गुलाम गयो धर्मराज धाम उहां भयो बड़ो दूत कही सुनु अरे बानिये॥
आये बनिजारे लैन देख तू दिखावै चैन बैल शृङ्ग मध्य पैठि मारे पहिचानिये।
बिनु हरि भक्ति सब जगत की यही रीति भयो हरि भक्त श्रीअनन्त पद ध्यानिये॥ ११७॥

श्रीरंगजीके पुत्रको रातमें भूत दिखायी देता था उसके भयसे वह नित्य सूखता ही चला जाता था। श्रीरंगजीने बालकसे इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि रातमें भयंकर प्रेतके देखनेसे मैं दिन-रात चिन्तित रहता हूँ। तब श्रीरंगजी पुत्रके सोनेके स्थानपर स्वयं सोये। रात होते ही वह प्रेत आया। श्रीरंगजी क्रोध करके उसे मारनेके लिये दौड़े। प्रेतने दैन्यतापूर्वक कहा कि आप कृपा करके मुझे इस पापयोनिसे मुक्त करके सद्गति

प्रदान कीजिये। मैं जातिका सुनार हूँ, परायी स्त्रीसे पाप-सम्बन्धके कारण मैं प्रेत हो गया हूँ। अपने उद्धारका उपाय संसारमें खोजनेके बाद अब आपकी शरण ली है। प्रेतकी आर्तवाणी सुनकर श्रीरंगजीने उसे चरणामृत दिया और उसका अत्यन्त सुन्दर दिव्यरूप कर दिया। इस प्रकार श्रीरंगजीके भक्तिभावका गान किया गया है।

श्रीरंगजीकी महिमा-सम्बन्धी इस घटनाका भक्तमालके टीकाकारने इस प्रकार वर्णन किया है—

सुत को दिखाई देत भूत नित सूख्यो जात पूछें कही बात जाइ वाके ठौर सोयो है।
आयो निशि मारिबेको धायो यह रोष भर्‌यो देवोगति मोकों उन बोलिकै सुनायो है॥
जाति को सोनार परनारि लगि प्रेत भयों लयों तेरी शरण मैं ढूढ़ि जग पायो है।
दियो चरणामृत लै कियो दिव्यरूप वाको अति ही अनूप सुनो भक्तिभाव गायो है॥ ११८॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजी

जाके सिर कर धर्‌यो तासु कर तर नहिं अड्ड्यो।
आप्यो पद निर्बान सोक निर्भय करि अड्ड्यो॥
तेजपुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता।
सेवत चरन सरोज राय राना भुवि जेता॥
दाहिमा बंस दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियो।
निर्बेद अवधि कलि कृष्नदास अन परिहरि पय पान कियो॥ ३८॥

इस कराल कलिकालमें पयहारी श्रीकृष्णदासजी वैराग्यकी सीमा हुए। आपने अन्नको त्यागकर केवल दुग्धपान करके भजन किया। इसीलिये आप 'पयहारी' इस नामसे विशेष प्रसिद्ध हुए। आपने शिष्य बनाकर जिसे अपनाया, उससे याचना नहीं की, वरन् उसे भगवत्पद—मोक्षका अधिकारी बना दिया और सांसारिक शोक-मोहसे सदाके लिये छुड़ाकर अभय कर दिया। श्रीपयहारीजी भक्तिमय तेजके समूह थे और आपमें अपार भजनका बल था। बालब्रह्मचारी एवं योगी होनेके कारण आप ऊर्ध्वरेता हो गये थे। भारतवर्षके छोटे-बड़े जितने राजा-महाराजा थे, वे सभी आपके चरणोंकी सेवा करते थे। दधीचिवंशी ब्राह्मणोंके वंशमें उदय (उत्पन्न) होकर आपने भक्तिके प्रतापसे भक्तोंके हृदयकमलोंको सुख दिया॥ ३८॥

यहाँ पयहारी श्रीकृष्णदासजीका जीवन-चरित संक्षेपमें दिया जा रहा है—

जयपुरमें गलता नामक एक प्रसिद्ध स्थान है, जो गालवऋषिका आश्रम माना जाता है। वहाँ वैष्णव सन्तोंकी गद्दी है, जो 'गालता गादी' नामसे प्रसिद्ध है। एक समय वहाँ स्वामी श्रीकृष्णदासजी नामके प्रसिद्ध सन्त थे। इन्होंने आजीवन अन्नके स्थानपर दुग्धका ही आहार किया, जिसके कारण इनकी प्रसिद्धि पयहारी बाबाके नामसे रही।

श्रीपयहारीजी महाराज सिद्ध सन्त थे। एक बार आप विचरण करते हुए कुल्हूकी पहाड़ियोंकी ओर चले गये और वहाँ एक गुफामें बैठकर भगवद्भजन करने लगे। अब उस निर्जन पहाड़ी गुफामें दूध कहाँसे प्राप्त होता? परंतु प्रभु-प्रेरणासे पहाड़ियोंपर चरती हुई एक ग्वालेकी गाय झुंडसे निकलकर उस पहाड़ी गुफाके पास चली आयी और उसके स्तनोंसे पय:स्त्रवण होने लगा। पयहारी बाबाने इसे ईश्वरकृपा मानकर अपने कमण्डलुमें दूध एकत्र कर लिया और वस्त्रपूतकर पी गये। गाय फिरसे जाकर झुंडमें शामिल हो गयी। अब तो यह नित्यप्रतिका क्रम हो गया। एक दिन ग्वालेने गायको गुफाकी ओर जाते देख लिया तो वह उसके पीछे-पीछे वहाँतक चला गया। वहाँका अद्भुत दृश्य देखकर वह जड़वत् खड़ा रह

गया, फिर पयहारी बाबाको सिद्ध सन्त समझ उनके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला—बाबा! गोमाताकी कृपासे आज मुझे आपके दर्शन हो गये; आप मुझे कोई और सेवा बताइये। श्रीपयहारी बाबा उसकी साधुता और सेवाभावसे बहुत प्रसन्न हुए और बोले—तुम कोई वर माँग लो। ग्वाला बोला—प्रभो! आपकी कृपासे मुझे दूध-पूत सब प्राप्त है; मुझे अब किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं। हाँ, अगर आप कुछ देना ही चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि मेरे देशके राजाका राज्य फिरसे उन्हें मिल जाय। बाबा उसकी निःस्पृहता, स्वामिभक्ति और परोपकारिता देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले कि तुम अपने राजाको यहाँ बुला लाना। उन दिनों वहाँके राजा शत्रुओंद्वारा राज्य छीन लिये जाने और प्राण-संकटके कारण एक गुफामें छिपकर रह रहे थे। ग्वालेने वहाँ जाकर उनसे पयहारी बाबाके विषयमें बताया और उन्हें लिवा लाया। राजाने बाबाके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया और अपनी करुणकथा सुनायी। बाबाने राजाको **'विजयी भव'** का आशीर्वाद दिया और कहा कि इस पहाड़ीपर चढ़कर चारों ओर देखो, जहाँतक तुम्हारी दृष्टि जायगी, वहाँतकका राज्य तुम्हारा हो जायगा। राजाने बाबाकी आज्ञाका पालन किया और थोड़े ही दिनोंमें बिना किसी विशेष प्रयासके उनका खोया राज्य पुनः उन्हें प्राप्त हो गया। राज्य-प्राप्तिके बाद राजाने अपने सम्पूर्ण राज्यमें सन्त-सेवा और भगवद्भजनका आदेश लागू कर दिया। इस प्रकार श्रीपयहारी बाबाकी कृपासे कुल्हू राज्यके लोग भगवद्भक्त हो गये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने श्रीपयहारीजीके सम्बन्धमें कई रोचक घटनाओंका वर्णन इस प्रकार किया है—

जाके सिर कर धर्‌यो तातर न ओड्यो हाथ दीनो बड़ोबर राजा कुल्हू को जु साखिये।
परबत कन्दरामें दरशन दीयो आनि दियो भाव साधु हरि सेवा अभिलाखिये॥
गिरी जो जिलेबी थार मांझते उठाई बाल भयो हिये शाल बिन अरपित चाखिये।
लै करि खड़ग ताहि मारन उपाय कियो जियो सन्त ओट फिर मोल करि राखिये॥ ११९॥
नृप सुत भक्त बड़ो अब लौं विराजमान साधु सनमान में न दूसरो बखानिये।
संत बधू गर्भ देखि उभै पनवारे दिये कही अर्भ इष्ट मेरो ऐसी उर आनिये॥
कोऊ भेषधारी सो व्योपारी पग दासिनको कही कृपा करो कहा जानैं और प्रानिये।
ऐपै तजि देवो क्रिया देखि जग बुरो होत जोति बहु दई दाम राम मति सानिये॥ १२०॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजीने जिस किसीके सिरपर हाथ रखा, उसके हाथके नीचे अपना हाथ नहीं फैलाया, अपितु उसे बड़ा भारी-भक्तिका वरदान अवश्य दिया। कुल्हू देशका राजा इस बातका प्रमाण है। इसको आपने पर्वतकी कन्दरामें जाकर दर्शन दिया और आपकी कृपासे उसे राज्य भी प्राप्त हुआ। राजाको आपने ऐसा प्रेमभाव दिया कि उसे सन्त-भगवन्तकी सेवा करनेकी अभिलाषा बनी रहती थी। एक बार पुजारी मन्दिरमें भगवान्‌का भोग लगानेके लिये जलेबियोंके थाल ले जा रहे थे, उसमेंसे एक जलेबी गिर गयी। राजाका छोटा-सा बालक उसे उठाकर खा गया। यह देखकर राजाके मनमें बड़ा भारी दुःख हुआ कि बिना भोग लगे ही इसने खा लिया, तुरंत हाथमें तलवार लेकर उसे मार डालनेके लिये उठा, परंतु समीपमें उपस्थित सन्तोंने उसे बचा लिया और राजासे कहा कि अब तो यह बालक हमारा हो गया। यदि आपको लेना है तो मूल्य देकर आप इसे रख लीजिये॥ ११९॥

श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि कुल्हूके राजाका यह पुत्र मेरे इस टीकाके लिखनेके समयतक विराजमान है, वह बड़ा भारी भगवद्भक्त है, साधुओंकी सेवा तथा उनका सम्मान करनेमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। एक बार अपने भण्डारेकी पंक्तिमें एक सन्तकी पत्नीको गर्भवती देखकर राजपुत्रने दो पत्तलें दीं और कहा कि गर्भस्थ बालक भक्त है और वह मेरा इष्टदेव है, मैं ऐसा मनमें मानता हूँ। इसीलिये दूसरा पत्तल दे रहा हूँ। कोई वैष्णव वेषधारी

मनुष्य जूतियोंको बेचता और गाँठता था, उसे देखकर राजपुत्रको बड़ी दया आयी और उसने उससे कहा— भगवन्! आप दूसरे लोगोंको सन्त मानकर उनकी जूतियोंकी सेवा करते हैं, पर आपके इस गुप्त भावको तुच्छ प्राणी क्या जानें। इसलिये आप इस जूती-सेवा-कार्यको छोड़ दीजिये। इस वेषको धारणकर और इस कार्यको देखकर लोगोंके मनमें कुभाव होता है। ऐसा कहकर उसे वैष्णव-सेवा एवं स्वनिर्वाहके लिये बहुत-सी खेती करनेयोग्य भूमि और धन दिया, साथ ही उसे ज्ञान-प्रकाश भी दिया, उसकी बुद्धि राममें रम गयी॥ १२०॥

श्रीपयहारीजीके शिष्यगण

कील्ह अगर केवल्ल चरन ब्रत हठी नरायन।
सूरज पुरुषा पृथू तिपुर हरि भक्ति परायन॥
पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधारी।
देवा हेम कल्यान गंग गंगासम नारी॥
बिष्नुदास कन्हर रँगा चाँदन सबिरि गोबिंद पर।
पैहारी परसाद तें सिष्य सबै भए पार कर॥ ३९॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजीकी कृपासे उनके सभी शिष्य जीवोंको भवसागरसे पार करनेवाले हुए— श्रीकील्हदेवजी, स्वामी श्रीअग्रदेवजी, केवलदासजी, चरणदासजी, हठीनारायणजी, सूरजदासजी, पुरुषाजी (पुरुषोत्तमदास), पृथुदासजी, त्रिपुरदासजी—ये हरिभक्तिमें रत थे। पद्मनाथजी, गोपालदासजी, टेकरामजी, टीलाजी, गदाधारी (गदाधरदासजी), देवापण्डाजी, हेमदासजी, कल्याणदासजी, गंगाजीके समान गंगाबाई, विष्णुदासजी, कान्हरदासजी, रंगारामजी, चाँदनजी और सबीरीजी ये सभी भक्त गोविन्दपरायण थे॥ ३९॥

श्रीपयहारीजी महाराजके इन शिष्योंमेंसे कुछका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीकील्हदेवजी

परम भागवत सिद्ध सन्त श्रीकील्हदेवजी श्रीपयहारीजी महाराजके प्रधान शिष्य और भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारके अनन्य भक्त थे। आपका पावन चरित आगे छप्पय ४० पृ० १७८ पर दिया गया है।

श्रीअग्रदेवजी (श्रीअग्रदासजी)

श्रीअग्रदासजी श्रीरामोपासनामें शृंगाररसके आचार्य माने गये हैं। रसिक-महानुभावोंने आपको श्रीजानकीजीकी प्रिय सखी श्रीचन्द्रकलाजीका अवतार कहा है। इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण आगे छप्पय ४१ पृ० १८० पर दिया गया है।

श्रीचरणदासजी

श्रीचरणदासजी महाराज बड़े ही सन्तसेवी थे। बिना किसी भेद-भावके सन्तमात्रका धूप-दीप-नैवेद्यादिसे विधिवत् पूजन करते थे तथा सन्तोंकी सीथ-प्रसादी पाते थे। एक बार एक पंगु-सन्त आश्रममें आये। इनको पूजा करनेके लिये प्रस्तुत देखकर वे पंगु-सन्त बहुत संकुचित हुए और इन्हें निषेध किया, परंतु अपनी निष्ठाके पक्के श्रीचरणदासजीने अपने नित्यके नियमानुसार विधिपूर्वक उनका पादप्रक्षालनादि करके पूजन किया। सन्तके सद्भाव, भगवत्कृपा और श्रीचरणदासजीके स्पर्श करते ही उन पंगु-सन्तका पंगुपन दूर हो गया। फिर तो उन्होंने पैदल चलकर सभी तीर्थोंकी यात्रा की। सन्त-समाजमें इनका बड़ा सुयश था।

श्रीहठीनारायणदासजी

सन्त श्रीहठीनारायणदासजीका बचपनका नाम नारायण था, इन्होंने अपने गुरुदेव पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके दर्शनके लिये हठ किया था, इसीलिये इनकी निष्ठा देखकर श्रीगुरुदेवने इनका नाम हठीनारायणदास रख दिया। श्रीहठीनारायणदासजीका जन्म माघ मासकी

मौनी अमावस्याको सं० १६०४ वि० में ग्राम ईंगरी जिला इटावा (उ०प्र०)-में हुआ था। आपके पिताका नाम पं० श्रीजयनारायण चतुर्वेदी और माताका नाम गंगादेवी था। कहते हैं कि आपके माता-पिताको कोई संतान नहीं थी, तब उन्होंने बदरिकाश्रम जाकर कठोर तप किया, जिसके फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृपासे आपका जन्म हुआ।

श्रीसूरजदासजी

श्रीसूरजदासजी परम वैष्णव और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका बिना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे।

सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये कैसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भक्तिभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती।

समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने पूजा प्रारम्भ की, फिर सूर्यदेवका दर्शन करनेके लिये जैसे ही दृष्टि ऊपर गगनमण्डलकी ओर उठायी कि मेघाच्छन्न आकाश अनन्तप्रकाशराशिसे परिपूरित हो उठा, भगवान् भास्कर कुहरावरणका विदारण करते हुए प्रकट हो गये। अनन्य श्रद्धाभावसे सूरजदासजीने उस सूर्यमण्डलके मध्यमें अपने आराध्य श्रीसीतारामजीके दर्शन किये। सन्त-मण्डली भक्त और भगवान्की जय-जयकार करने लगी। भक्तका प्रेम और भगवान्की कृपा देख सबलोग धन्य हो गये।

श्रीटीलाजी

श्रीटीलाजी महाराजका जन्म ज्येष्ठ शुक्ल १०, सं० १५१५ वि० को राजस्थानके किशनगढ़ राज्यान्तर्गत सलेमाबादमें हुआ था। आपके पिता श्रीहरिरामजी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पण्डित और माता श्रीमती शीलादेवी साधु-सन्तसेवी सद्गृहिणी थीं। कहते हैं कि आपके माता-पिताको बहुत समयतक कोई संतान नहीं थी, बादमें आबूराजनिवासी एक सिद्ध सन्तके आशीर्वादसे आपका जन्म हुआ था। सन्तकृपा, तीर्थक्षेत्रका प्रभाव, पूर्वजन्मके संस्कारों और माता-पिताकी भगवद्भक्तिके सम्मिलित प्रभावसे बालक टीलाजीमें बचपनसे ही भक्तिके दिव्य संस्कार उत्पन्न हो गये थे, जो आयु और शास्त्रानुशीलनके साथ-साथ बढ़ते ही रहे। बचपनमें ही आप किसी ऊँचे टीलेपर चढ़कर बैठ जाते और किसी सिद्ध सन्तकी भाँति समाधिस्थ हो जाते, आपकी इस प्रवृत्तिको देखकर ही लोगोंने आपका टीलाजी नाम रख दिया।

एक बारकी बात है, आपके पिताजीने आपको बालक ध्रुवकी कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक टीलाने भी तपस्या करके भगवान्का दर्शन करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। बालक टीलाकी भक्ति और दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमति दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीध्रुवटीलापर तपस्या करनेका सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त हो गये।

श्रीपयहारीजी महाराजने उन्हें उपासनाका रहस्य

समझाया और वैष्णव-मन्त्रकी दीक्षा देकर उनका नाम श्रीसाकेतनिवासाचार्य रख दिया। श्रीसाकेतनिवासाचार्यजीने बहुत दिनोंतक गलतागादी (जयपुर)-में रहते हुए श्रीपयहारीजी महाराजकी सेवा की, फिर उनकी आज्ञा लेकर भारतके सम्पूर्ण तीर्थोंका परिभ्रमण एवं भगवद्भक्तिका प्रचार किया।

श्रीगंगादेवीजी

स्वामी रामानन्दजी महाराजने कलिमलग्रसित जीवोंके कल्याणके लिये जो सम्प्रदाय चलाया, उसमें दीक्षित होनेका सबको अधिकार था। उनके सम्प्रदायमें वर्ण-लिंगसम्बन्धी कोई भेद नहीं था। इस सम्प्रदायमें जहाँ चारों वर्णोंको दीक्षा प्राप्त हुई, वहीं पुरुषोंके साथ-साथ स्त्रियाँ भी दीक्षित हुईं। जैसे श्रीपद्मावतीजी श्रीरामानन्दाचार्यजीकी शिष्या थीं, उसी प्रकार श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजीकी शिष्या थीं गंगादेवी। श्रीगंगादेवी परम भगवद्भक्ता थीं, भगवत्प्रसाद और चरणामृतमें इनकी बड़ी निष्ठा थी।

श्रीरंगदासजी (श्रीरंगारामजी)

श्रीरंगदासजी महाराज श्रीपयहारीजीके प्रधान शिष्य थे। आपकी श्रीगुरुचरणकमलोंमें बड़ी ही निष्ठा थी। यहाँतक कि आप सिंहासनपर गुरुपादुका रखकर उसका ही पूजन करते थे। आप परम वैष्णव सन्त थे और अकिंचनवृत्तिसे रहते थे।

श्रीकील्हदेवजी

राम चरन चिंतवनि रहति निसि दिन लौ लागी।
सर्ब भूत सिर नमित सूर भजनानँद भागी॥
सांख्य जोग मत सुदृढ़ किए अनुभव हस्तामल।
ब्रह्मरंध्र करि गौन गए हरि तन करनी बल॥
सुमेरदेव सुत जग बिदित भू बिस्तार्‍यो बिमल जस।
गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं त्यों कील्ह करन नहिं काल बस॥ ४० ॥

जिस प्रकार गंगाजीके पुत्र श्रीभीष्म पितामहजीको मृत्युने नष्ट नहीं किया, उसी प्रकार स्वामी श्रीकील्हदेवजी भी साधारण जीवोंकी तरह मृत्युके वशमें नहीं हुए, बल्कि उन्होंने अपनी इच्छासे प्राणोंका त्याग किया। कारण कि आपकी चित्तवृत्ति दिन-रात श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका ध्यान करनेमें लगी रहती थी। आप मायाके षड्विकारोंपर विजय प्राप्त करनेवाले महान् शूरवीर थे। सदा भगवद्भजनके आनन्दमें मग्न रहते थे। सभी प्राणी आपको देखते ही नतमस्तक हो जाते थे और आप सभी प्राणियोंमें अपने इष्टदेवको देखकर उन्हें सिर झुकाते थे। सांख्यशास्त्र तथा योगका आपको सुदृढ़ ज्ञान था और योगकी क्रियाओंका आपको इतना सुन्दर अनुभव था कि जैसे हाथमें रखे आँवलेका होता है। ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे प्राणोंको निकालकर आपने शरीरका त्याग किया और अपने योगाभ्यासके बलसे भगवद्रूप पार्षदत्व प्राप्त किया। इस प्रकार श्रीसुमेरुदेवजीके सुपुत्र श्रीकील्हदेवजीने अपने पवित्र यशको पृथ्वीपर फैलाया, आप विश्वविख्यात सन्त हुए॥ ४० ॥

श्रीकील्हदेवजी महाराजका जीवन-चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीकील्हदेवजी महाराज श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। श्रीपयहारीजीके परमधामगमनके बाद गलतागादी (जयपुर)-के महन्त आप ही हुए। आप दिव्यदृष्टिसम्पन्न परम वैष्णव सिद्ध सन्त थे। कहते हैं कि भक्तमाल ग्रन्थके रचनाकार श्रीनाभादासजी महाराजके नेत्र क्या, नेत्रके चिह्न भी नहीं थे, श्रीकील्हदेवजीने अपने कमण्डलुके जलसे उनके नेत्र-स्थानको धुला, जिससे उनके बाह्य चक्षु प्रकट हो गये।

कहते हैं कि एक बार श्रीकील्हदेवजी मथुरापुरी

आये हुए थे और श्रीयमुनाजीमें स्नानकर एकान्तमें समाधिस्थ हो भगवद्ध्यान करने लगे। उसी समय बादशाहके दिल्लीसे मथुरा-आगमनकी सूचना मिली। सेना तुरंत व्यवस्थामें लग गयी, रास्ता साफ किया जाने लगा, सब लोग तो हट गये, परंतु ध्यानावस्थित होनेके कारण श्रीकील्हदेवजी महाराजको बाह्य जगत्‌की कुछ खबर ही नहीं थी; वे समाधिमें स्थिर होकर बैठे थे। किसी सिपाहीने जाकर बादशाहको बताया कि हुजूर! एक हिन्दू फकीर रास्तेमें बैठा है और हमारे शोर मचानेपर भी नहीं उठ रहा है। उसने फौरन हुक्म दिया कि उस काफिरके माथेमें लोहेकी कील ठोंक दो। हुक्म मिलते ही दुष्ट सिपाहियोंने लोहेकी एक कील लेकर कील्हजीके माथेमें ठोंकना शुरू किया। परंतु आश्चर्य! कील्हदेवजी तो वैसे ही शान्त, निर्विकार बने रहे, परंतु उनके माथेका स्पर्श करते ही वह लोहेकी कील गलकर पानी हो गयी! यह आश्चर्य देख सिपाही भागकर बादशाहके पास गये। बादशाहको भी यह विचित्र घटना सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उसे लगा कि मैंने बादशाहतके नशेमें चूर होकर किसी सिद्ध सन्तका अपमान कर दिया है और इसका दण्ड भी भोगना पड़ सकता है, अतः भागता हुआ जाकर श्रीकील्हदेवजी महाराजके चरणोंमें गिर पड़ा और बार-बार क्षमा माँगने लगा। थोड़ी देर बाद जब कील्हदेवजीकी समाधि टूटी और वे अन्तःजगत्‌से बाह्य जगत्‌में आये तो उन्हें इस घटनाका ज्ञान हुआ। श्रीकील्हदेवजी महाराज तो परम सन्त थे, उनके मनमें क्रोधके लिये कहीं स्थान ही नहीं था, उन्होंने बादशाहको तुरंत क्षमा कर दिया।

बादशाह यद्यपि श्रीकील्हदेवजी महाराजसे प्रभावित तो बहुत हुआ, परंतु मुसलमान मुल्ला-मौलवियोंके निरन्तर सम्पर्कमें रहनेसे उसने हिन्दुओंका धर्म परिवर्तनकर उन्हें मुसलमान बनानेका अभियान चला रखा था। अब हिन्दुओंने मिलकर श्रीकील्हजीकी शरण ली और धर्मरक्षा करनेकी प्रार्थना की। श्रीकील्हदेवजीने सबको आश्वासन दिया और स्वयं बादशाहके दरबारमें गये। बादशाहने श्रीकील्हदेवजीके चरणोंमें प्रणाम किया और आगेसे ऐसा न करनेकी शपथ ली।

श्रीकील्हदेवजी महाराज दिव्यदृष्टिसम्पन्न थे, जिस समय आपके पिता श्रीसुमेरुदेवजीका भगवद्धामगमन हुआ, उस समय आप श्रीमथुराजीमें विराजमान थे और आपके समीप ही राजा मानसिंह बैठे थे। आपने जब आकाशमार्गसे विमानस्थ पिताजीको भगवद्धाम जाते देखा तो उठकर प्रणाम किया और पिताने भी इन्हें आशीर्वाद दिया। इनके अतिरिक्त अन्य किसीको इनके पिता नहीं दिखायी दिये, इसीलिये राजा मानसिंहको बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रीकील्हजीसे पूछा कि प्रभो! आप क्यों उठे और हाथ जोड़कर किसे प्रणाम किया? श्रीकील्हजीने उन्हें पिताजीके परमधामगमनकी बात बतायी। मानसिंहको बहुत आश्चर्य हुआ; क्योंकि श्रीकील्हदेवजीके पिताजीका शरीर छूटा था गुजरातमें और श्रीकील्हदेवजी थे मथुरामें—ऐसेमें श्रीकील्हदेवजीको पिताका दर्शन कैसे हुआ, यह मानसिंहके लिये आश्चर्यकी बात थी। उन्होंने तुरंत ही अपने दूतोंको गुजरात भेजकर सत्यताकी जानकारी की। श्रीकील्हदेवजीकी बात अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई, इससे राजा मानसिंहको इनपर बहुत ही श्रद्धा हो गयी।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीसुमेर देव पिता सूबे गुजरात हुते भयो तनुपात सो विमान चढ़ि चले हैं।
बैठे मधुपुरी कील्ह मानसिंह राजा ढिंग देखे नभ जात उठि कही भले भले हैं॥
पूछे नृप बोले कांसों? कैसे कै प्रकासों, कहौ, कह्यौ हठ परे सुनि अचरज रले हैं।
मानुस पठाये सुधि ल्याए सांच आंच लागी कारी साष्टाङ्ग बात मानी भाग फले हैं॥ १२१॥

उनके संतत्वकी एक दूसरी घटना इस प्रकार है— एक बारकी बात है, आप अपने आराध्य प्रभु श्रीसीतारामजी महाराजकी सेवा कर रहे थे। आपने माला निकालनेके लिये पिटारीमें जैसे ही हाथ डाला, वैसे ही उसमें बैठे एक विषधर सर्पने आपके हाथमें काट लिया। करुणाविग्रह आपने उस अपकारी सर्पपर भी दया की और उसे भूखा

जानकर पुनः अपना हाथ पिटारीमें डाल दिया। इस प्रकार आपने तीन बार पिटारीमें हाथ डाला और सर्पने तीन बार काटा, चौथी बार वह स्वयं पिटारीसे बाहर चला गया। इस प्रकार आपने सर्पको भी अतिथि मानकर उसका सत्कार किया और उसकी क्षुधापूर्ति की। श्रीरामकृपासे उस विषधरके विषका आपपर कोई प्रभाव भी नहीं हुआ। सत्य है, जब भजनके प्रभावसे काल-व्यालका विष नहीं व्यापता तो लौकिक व्यालका विष क्या व्यापेगा!

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

ऐसे प्रभु लीन नहिं कालके अधीन बात सुनिये नवीन चाहैं रामसेवा कीजिये।
धरी ही पिटारी फूलमाला हाथ डार्‌यो तहाँ व्यालकर काट्यो कह्यो फेरि काटि लीजिये॥
ऐसे ही कटायो बार तीनि हुलसायो हियो कियो न प्रभाव नेकु सदा रस पीजिये।
करिकैं समाज साधु मध्य यौं विराज प्रान तजे दशैं द्वार योगी थके सुनि जीजिये॥ १२२॥

श्रीकील्हदेवजी महाराज सिद्ध सन्त थे, भविष्यकी बातें जान लेनेकी उनमें सामर्थ्य थी। जब उन्हें भगवद्धाम जाना हुआ तो पहलेसे ही सन्तोंके पास इस आशयका सन्देश भेज दिया और सन्तोंसे संकीर्तन करनेको कहा। संकीर्तन सुनते हुए ही आपने ब्रह्मरन्ध्रसे अपने प्राणोंका उत्क्रमण किया।

श्रीअग्रदासजी

सदाचार ज्यों संत प्रात जैसे करि आए।
सेवा सुमिरन सावधान (चरन) राघव चित लाए॥
प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर।
रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर॥
(श्री) कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत मन बच क्रम करि अटल दयो।
(श्री) अग्रदास हरि भजन बिन काल बृथा नहिं बित्तयो॥ ४१॥

श्रीस्वामी अग्रदासजीने भगवद्भजनके बिना क्षणमात्र भी समयको व्यर्थ नहीं बिताया। आपका वैष्णव सदाचार पूर्ववर्ती आचार्योंके समान ही था। आप सदा मानसी सेवा एवं प्रकट विग्रहसेवामें तथा भगवन्नामस्मरणमें सावधान रहते थे। सदा राघवेन्द्रसरकारके श्रीचरणोंमें मनको लगाये रहते थे। (सीताराम-विहार) प्रसिद्ध बागमें आपकी बड़ी प्रीति थी, उसे सींचने, बुहारने आदिकी सब सेवाएँ सदा अपने हाथसे ही करते थे। आपकी जिह्वासे परम पवित्र श्रीसीताराम नामकी ध्वनि इस प्रकार होती रहती थी, मानो मधुर गर्जनके साथ मन्द-मन्द वर्षा हो रही है। गुरुदेव पयहारी श्रीकृष्णदासजीने परमकृपा करके मन-वचन-कर्मसे सम्बन्धित अचल भक्तिका भाव आपको प्रदान किया था॥ ४१॥

श्रीनाभादासजीके गुरुमहाराज श्रीअग्रदासजीका चरित संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत है—

महात्मा श्रीअग्रदासजी श्रीकृष्णदास पयहारीजी महाराजके शिष्य थे, श्रीगुरुदेवके परमधामगमनके बाद अग्रदासजीने जयपुरके पास ही लगभग ३० मील दूर गोरयाँ स्टेशनके निकट रैवासा नामक स्थानपर गद्दी स्थापित की।

श्रीअग्रदासजीका प्रादुर्भाव फाल्गुन शु० २, सं० १५५३ वि० को राजस्थानके एक गाँवमें ब्राह्मणकुलमें हुआ था। इनमें भक्तिके संस्कार बचपनसे ही विद्यमान थे, अतः अत्यन्त अल्पवयमें ही आपने घर छोड़कर श्रीपयहारीजी महाराजकी शरण ग्रहण कर ली। श्रीपयहारीजीने इन्हें योग्य जानकर श्रीराम-मन्त्रकी दीक्षा दी और उपासना-रहस्य एवं शरणागति-माहात्म्यका उपदेश दिया।

भक्तमालके रचनाकार परमभागवत श्रीनाभादासजी

महाराज श्रीअग्रदासजीके कृपापात्र थे और श्रीकील्हदेवजी महाराजके प्रति आपका अग्रजका भाव था। भगवती जगज्जननी जनकलली जानकीजीकी प्रिय सखी चन्द्रकलाके आप अवतार माने जाते हैं, अग्रअलीके नामसे आपने मधुररसोपासना और मधुर भावकी भक्ति की। अपने रेवासा आश्रमके पास ही आपने श्रीरामबाग और श्रीसियमनरंजिनीवाटिकाका निर्माण किया। रेवासा गाँवके लोगोंको पीनेके लिये जलकी समस्या थी, आपने अपना चिमटा गाड़कर पृथ्वीसे जलस्रोत प्रकट कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने आपकी महिमा निम्न कवित्तमें प्रकट की है—

दरशन काज महाराज मानसिंह आयो छायो बाग मांझ बैठे द्वार द्वारपाल हैं।
झारि कै पतौवा गये बाहिर लै डारिबे को देखी भीर भार रहे बैठि ये रसाल हैं॥
आये देखि नाभाजू ने उठि साष्टांग करी ठाढ़े भरी जल आँखें चली अँसुवनि जाल हैं।
राजा मग चाहि हारि आनिकै निहारि नैन जानी आप जानी भये दासनि दयाल हैं॥ १२३॥

एक बारकी बात है—जयपुरके राजा मानसिंह स्वामी श्रीअग्रदेवजीके दर्शन करनेके लिये आये। उस समय स्वामीजी बागमें ही थे। बागके द्वारपर राजाके द्वारपाल बैठ गये। अन्य कुछ व्यक्तियोंके साथ राजा बागके भीतर गये। इसी बीच स्वामीजी बागके सूखे पत्तोंको झाड़कर बाहर फेंकने गये। राजाके साथ आयी हुई भीड़भाड़को देखकर स्वामीजी लौटकर नहीं आये। बाहर ही बैठ गये और माधुर्यरसरूप श्रीस्वामीजी मधुर ध्यान-रसमें लीन हो गये। स्वामीजीको आया देखकर श्रीनाभाजी स्वामीजीके निकट आये और उन्होंने उनके प्रेममग्न स्वरूपका दर्शन करके उनको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीनाभाजीकी आँखें तर हो आयीं और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। राजाने बागमें देरतक बाट देखी, फिर उससे न रहा गया, हारकर वह भी वहीं आ गया और उसने स्वामीजीके दर्शन करके यह जाना कि श्रीरामचन्द्रजीने ही दासोंपर दया की है, वे ही श्रीअग्रदेवजीके रूपमें सामने विराजमान हैं॥ १२३॥

श्रीशंकराचार्यजी

उतसृंखल अग्यान जिते अनईस्वरबादी।
बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी॥
बिमुखनि को दियो दंड ऐंचि सन्मारग आने।
सदाचार की सींव बिस्व कीरतिहि बखाने॥
ईस्वरांस अवतार महि मरजादा माँड़ी अघट।
कलिजुग धर्मपालक प्रगट आचारज संकर सुभट॥ ४२॥

अधर्मप्रधान कलियुगमें वैदिक धर्मके रक्षक श्रीशंकराचार्यजीका अवतार हुआ। आप विधर्मियोंको शास्त्रार्थमें परास्त करनेवाले वाक्-वीर थे। वैदिक मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले उद्दण्ड, ईश्वरको न माननेवाले बौद्ध, शास्त्रविरुद्ध तर्क करनेवाले जैनी और पाखण्डी आदि जो लोग भगवान्से विमुख थे, उन्हें आपने दण्ड दिया। भय दिखाकर शास्त्रार्थमें हराकर उन्हें बलात् खींचकर सनातन धर्मके मार्गपर ले आये। आप सदाचारकी सीमा अर्थात् बड़े सदाचारी थे। सारा संसार आपकी कीर्तिका वर्णन करता है। आप भगवान् शंकरके अंशावतार थे। पृथ्वीपर प्रकट होकर आपने वेदशास्त्रकी सम्पूर्ण मर्यादाओंका इस प्रकार समर्थन और स्थापन किया कि उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रही। वह अचल हो गयी॥ ४२॥

यहाँ श्रीशंकराचार्यजीका महिमामय चरित संक्षेपमें वर्णित है—

केरल प्रदेशके पूर्णा नदीके तटवर्ती कलान्दी नामक गाँवमें बड़े विद्वान् और धर्मनिष्ठ ब्राह्मण श्रीशिवगुरुकी धर्मपत्नी श्रीसुभद्रा माताके गर्भसे वैशाख शुक्ल पंचमीके दिन शंकरावतार भगवान् श्रीशंकराचार्यने जन्म ग्रहण किया था। मठोंकी परम्पराके अनुसार इनका जन्मसमय ईसासे ४०० वर्ष पूर्वका है।

दिव्य प्रतिभासम्पन्न आपने केवल सात वर्षकी अवस्थामें ही वेद, वेदान्त और वेदांगोंका पूर्ण अध्ययन कर लिया। आपकी असाधारण प्रतिभा देखकर गुरुजन आश्चर्यचकित रह गये।

गुरुकुलनिवासकालकी बात है, बालक शंकर भिक्षाटन करते हुए एक निर्धन ब्राह्मणीके घर गये। उस बेचारीके घर अन्नका एक दाना भी नहीं था। कहींसे उसे एक आँवलेका फल मिला था, उसीको उसने ब्रह्मचारी शंकरको दिया और घरमें कुछ न होनेके कारण अन्न देनेमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। उस ब्राह्मणीकी दशा देखकर बालक शंकरका मन करुणासे भर गया और इन्होंने 'कनकधारास्तोत्र' का प्रणयनकर उसीसे भगवती महालक्ष्मीकी स्तुति की। भगवती महालक्ष्मीने प्रसन्न होकर ब्राह्मणीके घरको सोनेके आँवलोंसे भर दिया।

विद्याध्ययन समाप्तकर शंकरने संन्यास लेना चाहा; परंतु जब उन्होंने मातासे आज्ञा माँगी, तब उन्होंने मना कर दिया। शंकर माताके बड़े भक्त थे, उन्हें कष्ट देकर संन्यास लेना नहीं चाहते थे। एक दिन माताके साथ वे नदीमें स्नान करने गये। उन्हें एक मगरने पकड़ लिया। इस प्रकार पुत्रको संकटमें देखकर माताके होश उड़ गये। वह बेचैन होकर हाहाकार मचाने लगी। शंकरने मातासे कहा—'मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा दे दो तो मगर मुझे छोड़ देगा।' माताने तुरंत आज्ञा दे दी और मगरने शंकरको छोड़ दिया। इस तरह माताकी आज्ञा प्राप्तकर वे आठ वर्षकी उम्रमें ही घरसे निकल पड़े। जाते समय माताकी इच्छाके अनुसार यह वचन देते गये कि 'तुम्हारी मृत्युके समय मैं घरपर उपस्थित रहूँगा।'

घरसे चलकर शंकर नर्मदा-तटपर आये और वहाँ स्वामी गोविन्द भगवत्पादसे दीक्षा ली। गुरुने इनका नाम भगवत्पूज्यपादाचार्य रखा। इन्होंने गुरूपदिष्ट मार्गसे साधना आरम्भ कर दी और अल्पकालमें ही बहुत बड़े योगसिद्ध महात्मा हो गये। इनकी सिद्धिसे प्रसन्न होकर गुरुने इन्हें काशी जाकर वेदान्तसूत्रका भाष्य लिखनेकी आज्ञा दी और तदनुसार ये काशी चले गये। काशीमें वासके समय आपको भगवान् विश्वनाथने चाण्डालरूपमें दर्शन दिये और अद्वैततत्त्वका बोध कराया तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखनेकी प्रेरणा की। उसके पूरा होनेपर श्रीव्यासजीने प्रकट होकर आपको दर्शन दिया और आपके वेदान्तभाष्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इसके बाद आपने काशी, कुरुक्षेत्र, बदरिकाश्रम आदिकी यात्रा की, विभिन्न मतवादियोंको परास्त किया और बहुत-से ग्रन्थ लिखे। प्रयाग आकर कुमारिलभट्टसे उनके अन्तिम समयमें भेंट की और उनकी सलाहसे माहिष्मतीमें मण्डनमिश्रके पास जाकर शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थमें मण्डनकी पत्नी भारती मध्यस्था थीं। शास्त्रार्थमें शंकराचार्यजीने मिश्रजीको हरा दिया, तब भारतीने कहा मुझ अर्धांगिनीको हराये बिना आप विजयी नहीं हो सकते। तब आपने भारतीसे शास्त्रार्थ किया। उसने रतिशास्त्र-सम्बन्धी प्रश्न किये, उनके उत्तरके लिये इन्होंने छः मासका समय माँगा और अपने शिष्योंसे कहा कि मैं मृत राजा अमरुकके शरीरमें प्रवेशकर श्रृंगार रसका अध्ययन करूँगा। तबतक मेरे भौतिक शरीरकी रक्षा करना। यदि वहाँसे वापस लौटनेमें मुझे विलम्ब हो जाय तो मेरे पास आकर मुझे मोहमुद्गरके श्लोक सुनाना। उस राजा अमरुकके मृत शरीरमें प्रवेशकर शंकराचार्यजीने रतिशास्त्रका अध्ययन

किया। तत्पश्चात् उनके शिष्योंने मोहमुद्गरके श्लोक उन्हें सुनाये और वे राजा अमरुकका शरीर छोड़कर पुनः अपने शरीरमें आ गये तथा भारतीके प्रश्नोंका उत्तर दे उसे निरुत्तर किया। अन्तमें मण्डनमिश्रने शंकराचार्यका शिष्यत्व ग्रहण किया और उनका नाम सुरेश्वराचार्य पड़ा। इससे आपकी ख्याति बहुत फैल गयी।

एक बारकी बात है शास्त्रार्थमें आपने सेवड़ों (प्रतिपक्षियों)-को परास्त किया, पराजित सेवड़ा लोग अपने राजाके पास पहुँचे। राजाने सेवड़ोंकी बात नहीं मानी, तब सेवड़ोंको यह भय सताने लगा कि कहीं हमारा राजा शंकराचार्यका शिष्य न बन जाय, अतः उन्होंने राजा तथा शंकराचार्यको मार डालनेका एक षड्यन्त्र रचा। सेवड़ोंका गुरु राजा एवं शंकराचार्यको लेकर एक ऊँची छतपर चढ़ गया और उसने तन्त्र बलसे ऐसी माया रची कि चारों ओर जल ही जल हो गया। धीर-धीरे जल बढ़ता हुआ छततक आ गया। सेवड़ोंके गुरुने मायाकी नाव भी बना दी और राजासे कहा कि इसपर चढ़ जाओ, नहीं तो जलमें डूब जाओगे। राजा जैसे ही नावपर चढ़ने लगे शंकराचार्यजीने उन्हें नावपर बैठनेसे मना कर दिया और पहले सेवड़ोंको चढ़ानेको कहा। सेवड़े जैसे ही नावपर चढ़े, मायाकी नाव और जल गायब हो गया और वे लोग छतसे नीचे गिर गये। उन सेवड़ोंके शरीर भग्न हो गये। राजा उनकी चाल और शंकराचार्यजीका प्रभाव समझ गये और उनके चरणोंपर गिर पड़े।

श्रीप्रियादासजी महाराज इन घटनाओंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बिमुख समूह लैके किये सनमुख स्याम अति अभिराम लीला जग बिसतारी है।
सेवरा प्रबल वास केबरा ज्यौं फैलि रहे, गहे नहीं जाहिं बादी सुचि बात धारी है॥
तजिकै शरीर काहू नृपमें प्रवेश कियो, दियौ करि ग्रन्थ मोह मुद्गर सुभारी है।
शिष्यनिसों कह्यौ कभूं देहमें आवेश जानो तब ही बखानो आप सुनि कीजै न्यारी है॥ १२४॥
जानिकै आवेश तन शिष्यने प्रवेश कियो रावलेमें देखि सो श्लोक लै उचार्‌यौ है।
सुनत ही तज्यौ तन निज तन आय लियौ कियो यों प्रनाम दास पन पूरो पार्‌यौ है॥
सेवरा हराये बादी आये नृप पास ऊँचे छातपर बैठि एक माया फन्द डार्‌यौ है।
जल चढ़ि आयो नाव भाव लै दिखायौ कहैं चढ़ौ नहीं बूड़ौ आप कौतुक सो धार्‌यौ है॥ १२५॥
आचारज कही यों चढ़ाओ इन सेवरानि राजाने चढ़ाये गिरे टूक उड़ि गये हैं।
तब तौ प्रसन्न नृप पाँव पर्‌यौ भाव भर्‌यौ कह्यौ जोई कर्‌यो धर्म भागवत लये हैं॥
भक्ति ही प्रचार पाछै मायावाद डारि दीनों कीनों प्रभु कह्यौ किते विमुख हू भये हैं।
ऐसे सो गँभीर सन्त धीर वह रीति जानें प्रीति ही में साने हरिरूप गुन नये हैं॥ १२६॥

तत्पश्चात् आचार्यने विभिन्न मठोंकी स्थापना की और उनके द्वारा औपनिषद सिद्धान्तकी शिक्षा-दीक्षा होने लगी। आपने भारतवर्षके चारों कोनोंपर चार मठोंकी स्थापना की और वहाँ अपने शिष्योंको नियुक्त किया। पूर्वमें श्रीजगन्नाथपुरी उड़ीसामें गोवर्धन मठ, दक्षिणमें शृंगेरी मठ, पश्चिममें द्वारकापुरीमें शारदामठ और उत्तरमें ज्योतिर्मठकी आपने स्थापना की। इन मठोंके मठाधीश आज भी श्रीमद् आद्य शंकराचार्यके नामपर शंकराचार्य कहे जाते हैं।

यद्यपि आपका लौकिक जीवनकाल अत्यन्त अल्प मात्र ३२ वर्ष ही रहा, परंतु इतने कम समयमें ही आपने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें प्रस्थानत्रय (ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता)-पर भाष्य ही आपके यशको अमर रखनेमें पर्याप्त है।

श्रीनामदेवजी

बालदसा बीठल्ल पानि जाके पय पीयौ।
मृतक गऊ जीवाय परचौ असुरन कौं दीयौ॥
सेज सलिल तें काढ़ि पहिल जैसी ही होती।
देवल उलट्यो देखि सकुचि रहे सबही सोती॥
पँडुरनाथ कृत अनुग ज्यों छानि स्वकर छइ घास की।
नाम देव प्रतिग्या निर्बही (ज्यों) त्रेता नरहरिदास की॥ ४३॥

जल-थल और अग्नि आदिमें सर्वत्र अपने इष्टका ही दर्शन करूँगा—यह प्रतिज्ञा श्रीनामदेवजीकी उसी प्रकार निभी, जैसे कि त्रेतायुगमें नरसिंहभगवान्‌के दास श्रीप्रह्लादजीकी निभी थी। बचपनमें ही उनके हाथसे विट्ठलनाथभगवान्‌ने दूध पिया। एक मरी हुई गायको आपने जीवित करके असुर-यवनोंको अपने भजनबलका परिचय दिया। फिर उस यवन राजाके द्वारा दी गयी शय्याको नदीके अथाह जलमें डाल दिया। उसके आग्रहपर उसी तरहकी अनेक शय्याएँ निकालकर दिखा दीं। पण्ढरपुरमें पण्ढरीनाथभगवान्‌के मन्दिरका द्वार उलटकर आपकी ओर हो गया, इस चमत्कारको देखकर मन्दिरके पुजारी सभी श्रोत्रिय ब्राह्मणलोग संकुचित और लज्जित हो गये। प्रेमके प्रभावसे पण्डरनाथभगवान् आपके पीछे-पीछे चलनेवाले सेवककी तरह कार्य करते थे। आगसे जल जानेपर अपने हाथोंसे भगवान्‌ने आपका छप्पर छाया॥ ४३॥

(क) नामदेवजीके जन्मकी दिव्य घटना

छीपा जातिके श्रीवामदेवजी भगवान् हरिदेवजीके बड़े भारी भक्त थे। उनकी एक लड़की (गौणाई) थोड़ी ही आयुमें विधवा हो गयी। जब वह बारह सालकी हो गयी, तब वामदेवजीने उससे कहा—तुम घरमें विराजमान श्रीठाकुरजीकी सेवा सावधान मनसे अच्छी प्रकार किया करो। इससे शीघ्र ही तेरे सब मनोरथ पूर्ण होंगे। इस प्रकार पिताजीकी आज्ञा पाकर वह भगवान्‌की सेवा करने लगी, उसपर भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और उसे प्रत्यक्ष अपना दर्शन दिया। भगवान्‌की सुन्दर छविका दर्शन करके वामदेवकी पुत्रीके मनमें एक भक्तपुत्र प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। भगवान्‌के आशीर्वादसे उसके गर्भ हो गया। उसके गर्भकी चर्चा स्थान-स्थानपर चलने लगी। चलते-चलते यह बात वामदेवजीके कानमें पड़ी। तब आपने लड़कीसे पूछा और उसका उत्तर सुनकर यह निश्चय किया कि भगवान्‌ने ही पुत्रीको अपनाया है। समय पूर्ण होनेपर बालकका जन्म हुआ और वामदेवजीने उसका नाम 'नामदेव' रखा। पुत्रजन्मके उत्सवमें ब्राह्मणों और निर्धनोंको जी-भरकर आपने अपनी सम्पत्ति लुटायी। बालक नामदेव दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। उसके ऊपर कुछ और ही अलौकिक रंग चढ़ने लगा। उसके अंग-अंगमें भगवद्भक्तिके भाव व्याप्त हो गये। अत्यन्त सुन्दर, सबको सुख देनेवाला उसका दिव्य स्वरूप प्रकट हुआ।

इस कथानकका श्रीप्रियादासजी निम्नरूपसे वर्णन करते हैं—

छीपा वामदेव हरिदेव जु को भक्त बड़ो ताकी एक बेटी पतिहीन भई जानिये।
द्वादश वरष मांझ भयो तब कही पिता सेवा सावधान मन नीके करि आनिये॥
तेरे जे मनोरथ हैं पूरन करन एई जो पै दत्तचित्त ह्वै कै मेरी बात मानिये।
करत टहल प्रभु बेगि ही प्रसन्न भये कीनी काम वासना सु पेखि उनमानिये॥ १२७॥

विधवा को गर्भ ताकी बात चली ठौर ठौर दुष्ट शिरमौरनि की भई मन भाइयै।
चलत चलत वामदेव जू के कान परी करि निराधार प्रभू आप अपनाइयै॥
भये जू प्रगट बाल नाम नामदेव धर्‌यौ कर्‌यौ मन भायो सब सम्पति लुटाइयै।
दिन दिन बढ़्यो कछू और रंग चढ़्यो भक्तिभाव अंग मढ़्यो कढ़्यो रूप सुखदाइयै॥ १२८॥

(ख) श्रीनामदेवजीके बचपनके भक्तिमय चरित

श्रीनामदेवजी बचपनमें खिलौनोंसे खेलते थे, आप खेलमें ही भगवान्‌की सेवा-पूजा करते थे, वे किसी काष्ठ या पाषाणकी मूर्ति बना लेते और फिर उसे बड़े प्रेमसे वस्त्र पहनाते, भोग लगाते, घण्टा बजाते तथा नेत्र बन्द करके मनमें अच्छी तरह भगवान्‌का ध्यान करते। वे जैसे-जैसे इन कार्योंको करते थे, वैसे-वैसे वे अत्यन्त सुख पाते थे। प्रेमवश उनके नेत्रोंमें जल भर जाता। नामदेवजी अपने नाना वामदेवजीसे बार-बार कहते कि भगवान्‌की सेवा मुझे दे दीजिये। सेवा मुझे बहुत प्यारी लगती है। इस प्रकार नामदेवजीने बार-बार कहा। कुछ समय बाद वामदेवजीने नामदेवसे कहा कि मैं एक गाँवको जाऊँगा और तीन दिनमें लौट आऊँगा, तबतक तुम भगवान्‌की सेवा करना और भगवान्‌को दूध पिलाना, स्वयं मत पी जाना। यदि अच्छी प्रकारसे तीन दिन सेवा करोगे तो तुम्हें ही सेवा सौंप दी जायगी।

श्रीनामदेवजीके हृदयमें सेवा प्राप्त करनेकी लालसा बढ़ी, वे नानाजीसे बार-बार पूछते कि अभी आप गये नहीं? एक दिन नानाजीके बाहर गाँव जानेका समय आ गया, वे चले गये। नामदेवजीने अच्छी तरह देखभालकर कड़ाहीमें दो सेर दूध डाला और मनमें निश्चय किया कि दूधको औटाकर अति उत्तम बनाऊँ, जिससे प्रसन्न होकर प्रभु पी लें। श्रीनामदेवजीके हृदयमें प्रेमकी बड़ी भारी उमंग थी, उन्हें चिन्ता भी थी कि सेवामें कोई त्रुटि न हो जाय।

बालक नामदेवजी दूध औटाकर उसे एक सुन्दर कटोरेमें भरकर भगवान्‌के समीप ले आये। दूधमें इलायची और मिश्री मिलायी। दूध पिलानेकी आशासे परदा कर दिया। कुछ देर प्रेमकी लम्बी श्वासें भरते रहे फिर परदा हटाकर देखा तो दूधभरा कटोरा ज्यों-का-त्यों रखा था। इससे इनके मनमें बड़ी निराशा हुई और भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे कि प्रभो! आप दूध पीकर तृप्त हो जायँ।

श्रीनामदेवजी भगवान्‌को दूध-भोग लगाते और यह देखते कि भगवान्‌ने दूध नहीं पिया है, इस प्रकार दो दिन बीत गये। स्वयं भी उन्होंने अन्न-जल आदि कुछ भी ग्रहण नहीं किया और इस बातको अपने मनमें ही छिपाकर रखा। माताजीको भी नहीं बताया और भूखे-प्यासे ही रातको सो गये, पर चिन्ताके कारण निद्रा नहीं आयी। तीसरे दिनका सबेरा हुआ, फिर उसी प्रकार सावधानीसे दूधको औटाया इलायची, मिश्री मिलायी और आज प्रभु अवश्य ही दूध पी लेंगे—इस भावसे मनको मजबूत करके भगवान्‌के सामने दूध रखा और कहा—प्रभो! (नानाजी दूध पिलानेको कह गये थे) आप दूधको पीजिये, तभी मैं प्रसन्न होऊँगा। इतनेपर भी जब भगवान्‌ने दूध नहीं पिया, तब श्रीनामदेवजी बोले—मैं बारम्बार आपसे दूधकी विनती करता हूँ, परंतु आप दूध नहीं पीते हैं। कल प्रातःकाल नानाजी आ जायँगे और वे हमपर रुष्ट होंगे, फिर कभी सेवा मुझे नहीं देंगे। इसलिये ऐसे जीनेसे तो मरना ही अच्छा है। ऐसा कहकर छुरी निकाली और भगवान्‌को दिखाकर अपना गला काटनेके लिये गलेपर छुरी चलाना ही चाहते थे कि भगवान्‌ने हाथ पकड़ लिया और कहा कि अरे! ऐसा मत करो, मैं अभी दूध पीता हूँ। यह कहकर भगवान् दूध पीने लगे। श्रीनामदेवजीने देखा कि ये तो सब दूध पी जायँगे, तब बोले कि थोड़ा-सा प्रसाद मेरे लिये भी रहने दीजियेगा; क्योंकि नानाजीके भोग लगानेपर मैं सदा दूध-प्रसाद पीता था।

चौथे दिन वामदेवजी गाँवसे लौटकर आये और नामदेवजीसे 'अच्छी प्रकार सेवा की या नहीं' यह पूछा तो इन्होंने अत्यन्त प्रेमरंगमें भरकर दुग्धपानलीलाका

सारा वर्णन किया। यह सुनकर वामदेवजीने कहा कि मेरे सामने फिर पिलाओ, तब हम जानें। तब श्रीनामदेवजीने उसी प्रकार दूध तैयार करके भगवान्‌के सामने रखा, पर भगवान्‌ने नहीं पिया, तब अड़ गये उसी प्रकार छुरी निकालकर गला काटनेको तैयार हो गये कि कल पीकर आज नानाजीके सामने मुझे झूठा बनाना चाहते हो। आपको दूध पीना ही पड़ेगा। बालकके प्रेमहठसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने वामदेवजीके देखते-देखते दूध पिया और प्रसाद नामदेवको पिलाया। वामदेवजीने सोचा कि मैंने जीवनभर सेवा की, पर दर्शन नहीं हुए। आज बालकके प्रभावसे दर्शन हुए। इस प्रसंगके द्वारा भगवान्‌ने यह दिखला दिया कि मैं भक्तके वशमें होकर उनके प्रेमके कारण अर्पित भोगको ग्रहण करता हूँ।

श्रीप्रियादासजीने नामदेवजीके इस प्रेमभावका वर्णन निम्न कवित्तोंमें किया है—

खेलत खिलौना प्रीति रीति सब सेवा ही की पट पहिरावैं पुनि भोगको लगावहीं।
घंटा लै बजावैं नीके ध्यान मन लावैं त्यों-त्यों अति सुख पावैं नैन नीर भरि आवहीं॥
बार-बार कहैं नामदेव वामदेव जू सों देवो मोहिं सेवा मांझ अति ही सुहावहीं।
जाऊँ एकगाँव फिरि आऊँ दिन तीन मध्य दूधको पिवावौ मत पीवो मोहि भावहीं॥ १२९॥
कौन वह बेर जेहिं बेर दिन फेर होय फेर फेर कहैं वह बेर नहीं आइये।
आई वह बेर लै कराहीं मांझ हेरि दूध डार्‍यो युग सेर मन नीके कै बनाइये॥
चोपनिके ढेर लागि निपट औसेर दृग आयो नीर घेरि जिनि गिरें घूंटि जाइये।
माता कहै टेरि करी बड़ी तैं अबेर अब करो मति झेरि अजू चित दै औटाइये॥ १३०॥
चल्यो प्रभु पास लै कटोरा छबिरास तामें दूध सो सुबास मध्य मिसरी मिलाइयै।
हिये में हुलास निज अज्ञताको त्रास ऐपै करैं जो पै दास मोहि महासुख दाइयै॥
देख्यो मृदुहांस कोटि चांदनी को भास कियो भावको प्रकास मति अति सरसाइयै।
प्याइबेकी आस करि ओट कछु भर्‍यो स्वास देखिकै निरास कह्यो पीवोजू अघाइयै॥ १३१॥
ऐसे दिन बीते दोय राखी हिये बात गोय रह्यो निशि सोय ऐपै नींद नहीं आवहीं।
भयो जू सबारो फिरि वैसे ही सुधार लियौ हियौ कियौ गाढ़ौ जाय धर्‍यो पियो भावहीं॥
बार बार पीवो कहूं अब तुम पीवो नाहिं आवैं भोर नाना गरे छूरी दै दिखावहीं।
गहि लीनो कर जिनि करें ऐसो पीवौं मैं तो पीवे कों लगेई नेकु राखो सदा पावहीं॥ १३२॥
आये वामदेव पाछै पूछैं नामदेव जू सों दूधको प्रसंग अति रंग भरि भाखियै।
मोसौं न पिछानि दिनदोय हानि भई तब मानि डर प्रान तज्यो चाहौं अभिलाषियै॥
पीयौ सुख दीयो जब नेकु राखि लीयो मैं तो जीयो सुनि बातें कही प्यायो कौन साखियै।
धर्‍यौ पै पीयैं अर्‍यौ प्यायौ सुख पायौ नाना यामें लै दिखायौ भक्तबस रस चाखियै॥ १३३॥

(ग) श्रीनामदेवजीकी भगवद्भक्ति और गोभक्ति

एक बार मुसलमानोंके राजा सिकन्दर लोदीने श्रीनामदेवजीको बुलवाकर कहा कि आप साहबसे मिले हैं, उनका दर्शन करते रहते हैं—ऐसा मैंने सुना है तो हमें भी साहबसे मिला दीजिये और कुछ विचित्र चमत्कार दिखलाइये। श्रीनामदेवजीने कहा कि यदि हममें कोई शक्ति या चमत्कार होता तो फिर खानेके लिये दिनभर धंधा ही क्यों करते? किसी प्रकार दिनभर धंधा (सिलाई-छपाई) करनेसे जो भी कुछ मिल जाता है, उसे सन्तोंके साथ बाँटकर खाता हूँ। उन्हीं संतोंकी सेवाके प्रतापसे लोग मुझे भक्त कहते हैं और दूर-दूरतक मेरा नाम फैल गया है, तभी आपने भी हमें यहाँ अपने दरबारमें बुलाया है। यह सुनकर बादशाहने कहा—आप

इस मरी हुई गायको जीवित कर दीजिये और अपने घरको जाइये, नहीं तो कारागारमें रहना पड़ेगा; क्योंकि तुम झूठे भगत बनकर लोगोंको ठगते हो। तब आपने सहज स्वभावसे एक प्रार्थनाका पद गाकर गायको जीवित कर दिया और प्रभुकृपाका अनुभव करके सुखी हुए। यह देखकर बादशाह अति प्रसन्न हुआ और श्रीनामदेवजीके चरणोंमें पड़ गया।

यह विचित्र चमत्कार देखकर बादशाहने श्रीनामदेवजीसे कहा कि आप कृपा करके कोई देश या गाँव ले लीजिये, जिससे मेरा भी कुछ नाम हो जाय। आपने उत्तर दिया कि हमें कुछ भी नहीं चाहिये। फिर बादशाहने एक मणिजटित शय्या आपको दी। श्रीनामदेवजी उसे अपने सिरपर रखकर चलने लगे। तब उसने कहा कि दस-बीस आदमी मैं आपके साथ भेजता हूँ, वे इस पलंगको ले जायँगे और आपके निवासस्थानतक पहुँचा देंगे। आपने बिलकुल मना कर दिया और कहा कि यह भगवान्‌के शयनका पलंग है, मैं उनका सेवक हूँ, अत: मुझे ही अपने सिरपर रखकर ले जाना चाहिये। फिर भी बादशाहने कुछ रक्षक भेजे। आगे आपने विचारा कि यह मूल्यवान् वस्तु है, इससे अनेक संकट आ सकते हैं। भजनमें बाधा हो सकती है। इस कारण मार्गमें श्रीयमुना नदीके अथाह जलमें उस पलंगको डाल दिया। राजाको इसकी सूचना मिली तो वह चौंककर आश्चर्यमें पड़ गया। सिपाहियोंसे कहा—उन्हें शीघ्र बुलाकर लाओ। श्रीनामदेवजी फिर आये और बोले कि अब क्यों बुलाया? तब बादशाहने कहा कि जो पलंग मैंने आपको दे दिया है, जरा उसे यहाँ लाकर कारीगरोंको दिखा दीजिये। उसी प्रकारका नया दूसरा बनवाना है। श्रीनामदेवजी बादशाहको लेकर नदीपर आये और जलमें प्रवेश करके अनेक पलंग वैसे और उससे भी मूल्यवान् निकाल-निकालकर डाल दिये और बादशाहसे बोले—आप अपना पलंग पहचान लो। यह देखकर उसकी सुधि-बुधि जाती रही।

इस वृत्तान्तका वर्णन प्रियादासजी इन कवित्तोंमें करते हैं—

नृप सो मलेच्छ बोलि कही मिले साहिब को दीजिये मिलाय करामात दिखराइयै।
होय करामात तो पै काहे को कसब करैं? भरैं दिन एपैं बांटि सन्तन सों खाइयै॥
ताहीके प्रताप आप इहां लौं बुलायो हमें दीजिये जिवाय गाय घर चलि जाइयै।
दईलै जिवाय गाय सहज सुभाय ही में अति सुख पाय पांय पर्‌यो मन भाइयै॥ १३४॥
लेवो देश गांव जाते मेरो कछु नांव होय चाहिये न कछु दई सेज मनि मई है।
धरि लई सीस देऊँ संग दस बीस नर नाहीं करि आये जल मांझ डारि दई है॥
भूप सुनि चौंकि पर्‌यौ ल्यावो फेरि आये कहौ कही नेकु आनिके दिखावो कीजै नई है।
जलतैं निकसि बहुभांति गहि डारी तट लीजिये पिछानि देखि सुधि बुधि गई है॥ १३५॥

(घ) नामदेवजीकी भक्तिका माहात्म्य

श्रीनामदेवजीकी करामात देखकर बादशाह भयवश उनके चरणोंमें आ गिरा और प्रार्थना करने लगा कि मुझे ईश्वरके दण्डसे बचा लीजिये। श्रीनामदेवजीने कहा—यदि क्षमा चाहते हो तो एक बात करो कि पुन: इस प्रकार कभी किसी साधुको दु:ख मत देना। इसे बादशाहने स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने कहा कि फिर अब कभी मुझे मत बुलाना। ऐसा कहकर श्रीनामदेवजी वहाँसे चल दिये। उनकी इच्छा हुई कि पहले पण्ढरीनाथजीके मन्दिरमें चलूँ। प्रभुके नामगुण-कीर्तनका नित्य-नेम पूरा कर लूँ। मन्दिरपर गये तो द्वारपर बहुत भीड़-भाड़ दिखायी पड़ी। (जूतोंकी चोरीकी शंकासे शायद मन एकाग्र न हो, इसलिये कपड़ेमें लपेटकर) जूतोंको कमरमें बाँध लिया। हाथोंसे भीड़को हटाकर भीतर गये। दर्शन करके पदगान आरम्भ करना ही चाहते थे कि किसीने जूतोंको देख लिया और रुष्ट होकर पाँच-सात चोटें लगायीं। फिर धक्का देकर मन्दिरसे बाहर निकाल दिया। परंतु श्रीनामदेवजीके मनमें पण्डोंके इस व्यवहारसे थोड़ा भी

क्रोध नहीं आया।

अब श्रीनामदेवजी मन्दिरके पिछवाड़े जाकर बैठ गये और भगवान्से कहने लगे कि प्रभो! आपने यह बहुत ही अच्छा किया जो मुझमें मार लगायी। मेरे अपराधका दण्ड तुरंत ही दे दिया। अब नित्य-नियमके अनुसार पद गाता हूँ, सुनो। यह कहकर नामदेवजी पद गाने लगे, जिसे सुनते ही भगवान्का हृदय करुणासे भर गया। भक्तको विरह-व्यथित एवं दीन देखकर प्रभु व्याकुल हो गये। सम्पूर्ण मन्दिरको घुमाकर श्रीनामदेवकी ओर द्वार कर दिया। यह देखकर जितने भी वेदपाठी पण्डा-पुजारी थे, सबके मुखकी कान्ति क्षीण हो गयी, सब फीके पड़ गये, जैसे पानी उतरनेसे मोती फीका हो जाता है। अब उनके हृदयमें श्रीनामदेवजीके प्रति बड़ी भारी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो गयी। सबोंने सुख देनेवाले श्रीनामदेवजीके सुख देनेवाले चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना की। उन्हें प्रसन्न देखकर सबको शान्ति प्राप्त हुई।

इस घटनाका वर्णन प्रियादासजी इस प्रकार करते हैं—

आनि पर्‌यो पांय प्रभु पास तें बचाय लीजै कीजै एक बात कभू साधु न दुखाइयै।
लई यही मानि फेरि कीजिये न सुधि मेरी लीजिये गुननि गाय मन्दिर लौं जाइयै॥
देखि द्वार भीर पग दासी कटि बांधी धर कर सों उछीर करि चाहैं पद गाइयै।
देखि लीनी वेई काहू दीनी पांच सात चोट कीनी धका धकी रिस मनमें न आइयै॥ १३६॥
बैठे पिछवारे जाइ कीनी जू उचित यह लीनी जो लगाइ चोट मेरे मन भाइयै।
कान दैकैं सुनो अब चाहत न और कछु ठौर मोकों यहीं नित नेम पद गाइयै॥
सुनत ही आनि करि करुना विकल भये फेर्‌यो द्वार इतै गहि मन्दिर फिराइयै।
जेतिक वे सोती मोती आब सी उतरि गई भई हिये प्रीति गहे पाँव सुखदाइयै॥ १३७॥

(ङ) सर्वत्र भगवद्दर्शन

एक बार अकस्मात् ही सायंकालमें श्रीनामदेवजीके घरमें आग लग गयी। पर आप तो जल, थल और अग्निमें सर्वत्र अपने प्यारे प्रभुको ही देखते थे। अतः अपने घरमें जो दूसरे सुन्दर पदार्थ घी, गुड़ आदि जलनेसे रह गये थे, उन्हें भी उठा-उठाकर जलती हुई आगमें डालते हुए प्रार्थना करने लगे—हे नाथ! इन सब वस्तुओंको भी स्वीकार कीजिये। भक्तकी ऐसी सुन्दर भावना देखकर भगवान्ने प्रकट होकर दर्शन दिया और हँसकर बोले कि अत्यन्त कोमल मुझ श्यामसुन्दरको तीक्ष्ण, असह्य अग्निकी ज्वालामें भी देखते हो। श्रीनामदेवजीने कहा—प्रभो! यह आपका भवन है, आपके अतिरिक्त दूसरा कौन यहाँ आ सकता है! यह सुनकर प्रसन्न होकर प्रभु अन्तर्धान हो गये अग्नि शीतल हो गयी।

इस घटनाके सम्बन्धमें श्रीप्रियादासजी निम्न कवित्तमें इस प्रकार कहते हैं—

औचक ही घर माँझ सांझ ही अगिनि लागी बड़ो अनुरागी रहि गई सोऊ डारियै।
कहैं अहो नाथ सब कीजिये जु अंगीकार हँसे सुकुमार हरि मोहीको निहारियै॥
तुम्हरो भवन और सकै कौन आइ इहाँ भये यों प्रसन्न छानि छाई आप सारियै।
पूछे आनि लोग कौन छाई हो छवाइ दीजै लीजै जोई भावै तनमन प्राण वारियै॥ १३८॥

(च) श्रीनामदेवजीद्वारा तुलसीदल और रामनामकी महिमाका प्राकट्य

पण्ढरपुरमें एक बहुत बड़ा धनी सेठ रहता था। उसके यहाँ तुलादानका उत्सव हुआ। उसने अपनेको सोनेसे तौलकर नगरके सभी लोगोंको सोना दिया। सेठने लोगोंसे पूछा कि कोई रह तो नहीं गया? तब लोगोंने कहा—श्रीनामदेवजी भगवान्के बड़े प्रेमी सन्त हैं, वे रह गये हैं। सेठने कहा—उन्हें बुलाकर लाओ। सेठके नौकर, मुनीम बुलाने गये। दान ब्राह्मणोंको दो, हमें कुछ भी नहीं चाहिये, यह कहकर बड़भागी श्रीनामदेवजीने पहली और फिर दूसरी बार लोगोंको वापस लौटा दिया, जानेसे मना कर दिया। पर तीसरी बार अति आग्रह

देखकर आप सेठके घरपर आये और सेठसे बोले—तुम बड़े भाग्यशाली हो। कहो—हमसे क्या कहते हो? सेठजीने कहा—आप मेरे द्वारा दिये गये कुछ धनको स्वीकार कीजिये, जिससे मेरा कल्याण हो। नामदेवजीने कहा—तुम्हारा कल्याण तो हो गया, अब मुझे कुछ देनेकी आपकी प्रबल इच्छा है तो दीजिये।

श्रीनामदेवजीका एकमात्र प्रिय सर्वस्व जो श्रीगोविन्दचरणप्रिय श्रीतुलसी हैं, ऐसे श्रीतुलसीके पत्तेमें आधा राम-नाम अर्थात् केवल 'रा' लिखकर उसे दिया और कहा कि इसके बराबर तौलकर दे दीजिये। सेठने अभिमानपूर्वक कहा—महाराज! क्यों हँसी करते हो, इतने थोड़ेसे सोनेसे क्या होगा? कृपा करके कुछ अधिक लीजिये। जिससे मुझ दाताकी हँसी न हो। नामदेवजीने कहा—इसके बराबर सोना तौलकर देखो तो सही, फिर देखो कि क्या विचित्र खेल होता है। यदि तुम इसके बराबर पूरा करके सोना दे दोगे तो मैं तुमपर प्रसन्न होऊँगा। यह सुनकर सेठजी एक तौलनेका काँटा ले आये और एक ओर तुलसीपत्र तथा दूसरी ओर सोना चढ़ाया। उस समय बड़ा विचित्र आश्चर्य हुआ, सोनेका ढेला तुलसीपत्रसे बराबर नहीं हुआ। सेठजी उदास हो गये, जिससे पाँच-सात मन तौला जा सके—ऐसा बड़ा तराजू मँगवाया। उसपर एक ओर तुलसीपत्र दूसरी ओर घरभरका सम्पूर्ण सोना-चाँदी आदि रखा। पूरा न पड़नेपर जाति-कुटुम्बवालोंके घरोंसे ला-लाकर बहुत-सा धन रखा, परंतु वह सब तुलसीपत्रके बराबर नहीं हुआ।

श्रीरामनामलिखित तुलसीपत्रके महत्त्वको देखकर घरके सभी स्त्री-पुरुषोंके समेत सेठजीको बड़ा शोक तथा दुःख हुआ। श्रीनामदेवजीने विचारा कि अभी इन्हें तुलसीपत्र एवं श्रीरामनामकी महिमाका पूरा अनुभव नहीं हुआ है, इसलिये वे बोले—आपलोगोंने जितने व्रत-दान और तीर्थस्नान आदि पुण्यकर्म किये हों, उनका संकल्प करके जल डाल दीजिये। सभी लोगोंने पुण्योंका स्मरण कर-करके संकल्प पढ़कर जल डाला, पर इस उपायके करनेसे भी काम न चला। जिधर तुलसीपत्र रखा था, वह पलड़ा अपने पैर भूमिमें गाड़ रहा था। यह देखकर सभी लोग लज्जित हो गये और प्रार्थना करने लगे कि इतना ही ले लीजिये। श्रीनामदेवजीने कहा—हम इस तुच्छ धनको लेकर क्या करें? हमारे पास तो रामनाम-धन है, यह धन उसकी बराबरी नहीं कर सकता है। इस धनसे कल्याण होना सम्भव नहीं है। नामकी और तुलसीकी महिमा देखकर आजसे इस धनको तुच्छ समझो और रामनामरूपी धनसे प्रेम करो, गलेमें तुलसी धारण करो, रामनाम जपो। यह कहकर श्रीनामदेवजीने सबके हृदयमें भक्तिका भाव भर दिया। सबकी बुद्धि प्रेमरसमें भीग गयी।

इस भक्तिभावका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

सुना और परचै जे आये न कवित्त मांझ बांझ भई माता क्यों न जौ न मति पागी है।
हुतो एक साह तुलादान को उछाह भयो दयो पुर सबै रह्यौ नामदेव रागी है॥
ल्यावो जु बुलाइ एक दोइ तौ फिराइ दिये तीसरे सों आये कहा कहो बड़भागी है।
कीजिये जु कछु अङ्गीकार मेरो भलो होय भयो भलो तेरो दीजै जो पै आस लागी है॥ १३९॥
जाके तुलसी है ऐसे तुलसी के पत्र मांझ लिख्यो आधो राम नाम यासों तोल दीजियै।
कहा परिहास करो ढरो ह्वै दयाल देखि होत कैसो ख्याल याकों पूरो करो रीझियै॥
ल्यायो एक कांटो लै चढ़ायो पात सोना संग भयो बड़ो रंग सम होत नाहिं छीजियै।
लई सो तराजू तासों तुलै मन पांच सात जाति पांतिहू को धन धर्‌यो पै न धीजियै॥ १४०॥
पर्‌यो शोच भारी दुःख पावैं नर-नारी नामदेवजू विचारी एक और काम कीजिये।
जिते व्रतदान औ स्नान किये तीरथमें करियै संकल्प यापै जल डारि दीजिये॥
करेऊ उपाइ पात पला भूमि गाड़े पांय रहे वे खिसाय कह्यौ इतनोई लीजिये।
लैकै कहा करैं सरवरहू न करै भक्तिभावसों लैं भरै हिये मति अति भीजिये॥ १४१॥

(छ) श्रीनामदेवजीकी एकादशी-व्रतके प्रति निष्ठा

एक बार भगवान्‌के मनमें यह उमंग उठी कि श्रीनामदेवजीकी एकादशीव्रत-निष्ठाका परिचय लिया जाय। यह विचारकर उन्होंने एक अत्यन्त दुर्बल ब्राह्मणका रूप धारण किया। एकादशीव्रतके दिन श्रीनामदेवजीके पास पहुँचकर बड़ी दीनता करके अन्न माँगने लगे कि मैं बहुत भूखा हूँ, कई दिनसे भोजन प्राप्त नहीं हुआ है, कुछ अन्न दो। श्रीनामदेवजीने कहा—आज तो एकादशी है, (दूध-फलाहारादि कर लीजिये) अन्न न दूँगा। प्रात:काल जितनी इच्छा हो उतना अन्न लीजियेगा। दोनों अपनी-अपनी बातपर बड़ा भारी हठ कर बैठे। इस बातका शोर चारों ओर फैल गया। लोग इकट्ठे हो गये और श्रीनामदेवजीको समझाने लगे कि इस भूखे ब्राह्मणपर क्रोध क्यों करते हो, तुम्हीं मान जाओ, इसे कुछ अन्न दे दो। श्रीनामदेवजी नहीं माने, दिनके चौथे पहरके बीतनेपर उस भूखे ब्राह्मणदेवने इस प्रकार पैर फैला दिये कि मानो मर गये। गाँवके लोग श्रीनामदेवजीके भावको नहीं जानते थे। अत: उन लोगोंने नामदेवजीके सिर ब्राह्मण-हत्या लगा दी और उनका समाजसे बहिष्कार कर दिया। पर नामदेवजी बिलकुल चिन्तित नहीं हुए।

अपने नियमके अनुसार जागरण और कीर्तन करते हुए श्रीनामदेवजीने रात बितायी, प्रात:काल चिता बनाकर उस ब्राह्मणके मृतक-शरीरको गोदमें लेकर उसपर बैठ गये कि हत्यारे शरीरको न रखकर प्रायश्चित्तस्वरूप उसे भस्म कर देना ही उत्तम है। उसी समय भगवान् प्रकट हो गये और मुसकुराकर कहने लगे कि मैंने तो तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम्हारी एकादशीव्रतकी सच्ची निष्ठा मैंने देख ली, वह मेरे मनको बहुत ही प्यारी लगी, मुझे बड़ा सुख हुआ। इस प्रकार दर्शन देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। लोगोंने जब यह लीला देखी तो श्रीनामदेवजीके चरणोंमें आकर गिरे और प्रीतिमय चरित्र देखकर सभी भक्त हो गये।

एक बार एकादशीकी रात्रिको जागरण-कीर्तन हो रहा था। भगवद्भक्तोंको बड़ी प्यास लगी। तब श्रीनामदेवजी जल लानेके लिये नदीपर गये, प्रेतभयसे दूसरोंको जानेका साहस न था। श्रीनामदेवजीको आया देखकर महाविकरालरूपधारी प्रेतराज अपने साथियों-समेत आकर चारों ओर फेरी लगाने लगा। उसका स्वरूप एवं उसकी माया देखकर श्रीनामदेवजी थोड़ा भी भयभीत न हुए, उसे अपने इष्टका ही स्वरूप माना और उन्होंने फेंटसे झाँझ निकालकर तत्काल एक पद गाया और प्रणाम किया। भगवान् तो बड़े ही दयालु हैं, प्रेतरूप न जाने कहाँ गया! शोभाधाम श्यामसुन्दर प्रकट हो गये, जिनका दर्शन करके श्रीनामदेवजी परम प्रसन्न हुए और जल लाकर भक्तोंको पिलाया।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका वर्णन इस प्रकार किया है—

कियौ रूप ब्राह्मण को दूबरो निपट अंग भयो हिये रंग व्रत परिचैको लीजिये।
भई एकादशी अन्न मांगत बहुत भूखो आजु तौ न दैहौं भोर चाहौ जितौ दीजिये॥
कर्‌यो हठभारी मिलि दोऊ ताको शोर पर्‌यो समझावै नामदेव याको कहा खीझिये।
बीते जाम चरि मरि रहे यों पसारि पांव भाव पै न जानै दई हत्या नहीं छीजिये॥ १४२॥
रचिकै चिताकों विप्र गोद लैकै बैठे जाइ दियो मुसुकाइ मैं परीक्षा लीनी तेरी है।
देखि सो सचाई सुखदाई मन भाई मेरे भये अन्तर्धान परे पाँय प्रीति हेरी है॥
जागरन मांझ हरि भक्तनको प्यास लगी गये लैन जल प्रेत आनि कीनी फेरी है।
फेंट ते निकासि ताल गायो पद ततकाल बड़ेई कृपाल रूप धर्‌यो छबिढेरी है॥ १४३॥

श्रीजयदेवजी

प्रचुर भयो तिहुँ लोक गीतगोबिंद उजागर।
कोक काब्य नव रस्स सरस सिंगार को सागर॥
अष्टपदी अभ्यास करैं तेहि बुद्धि बढ़ावैं।
राधारमन प्रसन्न सुनन निश्चै तहँ आवैं॥
संत सरोरुह षंड कों पद्मापति सुखजनक रबि।
जयदेव कबी नृप चक्कवै खँडमँडलेस्वर आन कबि॥ ४४॥

एक महाकवि श्रीजयदेवजी संस्कृतके कविराजोंके राजा चक्रवर्ती-सम्राट् थे। शेष दूसरे सभी कवि आपके सामने छोटे-बड़े राजाओंके समान थे। आपके द्वारा रचित 'गीतगोविन्द' महाकाव्य तीनों लोकोंमें बहुत अधिक प्रसिद्ध एवं उत्तम सिद्ध हुआ। यह गीतगोविन्द कोकशास्त्रका, साहित्यके नवरसोंका और विशेषकर उज्ज्वल एवं सरस शृंगाररसका सागर है। इसकी अष्टपदियोंका जो कोई नित्य अध्ययन एवं गान करे, उसकी बुद्धि पवित्र एवं प्रखर होकर दिन-प्रतिदिन बढ़ेगी। जहाँ अष्टपदियोंका प्रेमपूर्वक गान होता है, वहाँ उन्हें सुननेके लिये भगवान् श्रीराधारमणजी अवश्य आते हैं और सुनकर प्रसन्न होते हैं। श्रीपद्मावतीजीके पति श्रीजयदेवजी सन्तरूपी कमलवनको आनन्दित करनेवाले सूर्यके समान इस पृथ्वीपर अवतरित हुए॥ ४४॥

(क) जयदेवजी श्रीजगन्नाथजीके स्वरूप

कविसम्राट् श्रीजयदेवजी बंगालप्रान्तके वीरभूमि जिलेके अन्तर्गत किन्दुबिल्व नामक ग्राममें उत्पन्न हुए थे। आपका वैराग्य ऐसा प्रखर था कि एक वृक्षके नीचे एक ही दिन निवास करते थे, दूसरे दिन दूसरे वृक्षके नीचे आसक्तिरहित रहते थे। जीवन-निर्वाह करनेकी अनेक सामग्रियोंमेंसे आप केवल एक गूदरी और एक कमण्डलु ही अपने पास रखते थे और कुछ भी नहीं। सुदेव नामके एक ब्राह्मणके कोई सन्तान न थी, उसने श्रीजगन्नाथजीसे प्रार्थना की कि यदि मेरे सन्तान होगी तो पहली सन्तान आपको अर्पण कर दूँगा। कुछ समयके बाद उसके एक कन्या हुई और जब द्वादश वर्षकी विवाहके योग्य हो गयी तो उस ब्राह्मणने श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें उस कन्या (पद्मावती)-को लाकर प्रार्थना की कि हे प्रभो! मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार आपको भेंट करनेके लिये यह कन्या लाया हूँ। उसी समय श्रीजगन्नाथजीने आज्ञा दी कि परमरसिक जयदेव नामके जो भक्त हैं, वे मेरे ही स्वरूप हैं, अत: इसे अभी ले जाकर उन्हें अर्पण कर दो और उनसे कह देना कि जगन्नाथजीकी ऐसी ही आज्ञा हुई है।

भगवान्‌की आज्ञा पाकर वह ब्राह्मण वनमें वहाँ गया, जहाँ कविराजराज भक्त श्रीजयदेवजी बैठे थे और उनसे बोला—हे महाराज! आप मेरी इस कन्याको पत्नीरूपसे अपनी सेवामें लीजिये, जगन्नाथजीकी ऐसी आज्ञा है। जयदेवजीने कहा—जगन्नाथजीकी बात जाने दीजिये, वे यदि हजारों स्त्रियाँ सेवामें रखें तो उनकी शोभा है, परंतु हमको तो एक ही पहाड़के समान भारवाली हो जायगी। अत: अब तुम कन्याके साथ यहाँसे लौट जाओ। ये भगवान्‌की आज्ञाको भी नहीं मान रहे हैं—यह देखकर ब्राह्मण खीज गया और अपनी लड़कीसे बोला—मुझे तो जगन्नाथजीकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं उसे कदापि टाल नहीं सकता हूँ। तुम इनके ही समीप स्थिर होकर रहो। श्रीजयदेवजी अनेक प्रकारकी बातोंसे समझाकर हार गये, पर वह ब्राह्मण नहीं माना और अप्रसन्न होकर चला गया। तब वे बड़े भारी सोचमें पड़ गये। फिर वे उस ब्राह्मणकी कन्यासे बोले—तुम अच्छी प्रकारसे मनमें विचार करो कि तुम्हारा अपना क्या कर्तव्य है? तुम्हारे योग्य

कैसा पति होना चाहिये? यह सुनकर उस कन्याने हाथ जोड़कर कहा—मेरा वश तो कुछ भी नहीं चलता है। चाहे सुख हो या दु:ख, यह शरीर तो मैंने आपपर न्यौछावर कर दिया है।

श्रीपद्मावतीजीका भावपूर्ण निश्चय सुनकर श्रीजयदेवजीने निर्वाहके लिये झोंपड़ी बनाकर छाया कर ली। अब छाया हो गयी तो उसमें भगवान् श्यामसुन्दरकी एक मूर्ति सेवा करनेके लिये पधरा ली। पश्चात् मनमें आया कि परम प्रभुकी ललित लीलाएँ जिसमें वर्णित हों, ऐसा एक ग्रन्थ बनाऊँ। उनके इस निश्चयके अनुसार अति सरस 'गीतगोविन्द' महाकाव्य प्रकट हुआ। गीतगोविन्द लिखते समय एक बार श्रीकिशोरी राधिकाजीके मानका प्रसंग आया। उसमें भगवान् श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाके चरणकमलोंको अपने मस्तकका भूषण बताकर प्रार्थना की कि इसे मेरे मस्तकपर रख दीजिये। इस आशयका पद आपके हृदयमें आया, पर उसे मुखसे कहते तथा पद्मावतीद्वारा ग्रन्थमें लिखाते समय सोच-विचारमें पड़ गये कि इस गुप्त रहस्यको कैसे प्रकट किया जाय? आप स्नान करने चले गये, लौटकर आये तो देखा कि वह पद पोथीमें श्यामसुन्दरने लिख दिया है। इससे जयदेवजी अति प्रसन्न हुए और संकोच त्यागकर माधुर्यरसकी लीलाओंका गान करने लगे।

इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

किन्दु बिल्लु ग्राम तामे भये कविराज राज भर्‌यो रसराज हिये मन मन चाखियै।
दिन दिन प्रति रूख रूख तर जाइ रहैं गहैं एक गूदरी कमण्डल कों राखियै॥
कही देवै विप्र सुता जगन्नाथदेव जू कों भयो जब समै चल्यो दैन प्रभु भाखिये।
रसिक जैदेव नाम मेरोई सरूप ताहि देवो ततकाल अहो मेरी कहि साखिये॥ १४४॥
चल्यो द्विज तहां जहां बैठे कविराजराज अहो महाराज मेरी सुता यह लीजियै।
कीजिये विचार अधिकार विस्तार जाके ताहीको निहारि सुकुमारि यह दीजियै॥
जगन्नाथदेव जू की आज्ञा प्रतिपाल करौ ढरो मति धरो हिये ना तो दोष भीजियै।
उनको हजार सोहैं हमको पहार एक ताते फिरि जावो तुम्हैं कहा कहि खीजियै॥ १४५॥
सुता सों कहत तुम बैठि रहौ याही ठौर आज्ञा सिरमौर मौपै नाहीं जाति टारी है।
चल्यौ अनखाइ समझाइ हारे बातनि सों मन तूं समझ कहा कीजै सोच भारी है॥
बोलि द्विज बालकी सों आपही विचार करो धरो हिये ज्ञान मोपै जाले न सँभारी है।
बोली करजोरि मेरो जोर न चलत कछू चाहौ सोई होहु यह वारि फेरि डारी है॥ १४६॥
जानी जब भई तिया कियो प्रभु जोर मोपै तो पै एक झोंपड़ी की छाया कर लीजिये।
भई तब छाया श्याम सेवा पधारइ लई नई एक पोथी मैं बनाऊँ मन कीजिये॥
भयो जू प्रगट गीत सरस गोविन्दजू को मान में प्रसंग सीसमण्डन सो दीजिये।
वही एक पद मुख निकसत सोच पर्‌यो धर्‌यो कैसे जात लाल लिख्यो मति रीझिये॥ १४७॥

(ख) गीतगोविन्दकी महिमा

(१)

जगन्नाथधाममें एक राजा पण्डित था। उसने भी एक पुस्तक बनायी और उसका गीतगोविन्द नाम रखा। उसमें भी श्रीकृष्णचरित्रोंका वर्णन था। राजाने ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा कि यही गीतगोविन्द है। इसकी प्रतिलिपियाँ करके पढ़िये और देश-देशान्तरोंमें प्रचार करिये। इस बातको सुनकर विद्वान् ब्राह्मणोंने असली गीतगोविन्दको खोलकर दिखा दिया और मुसकराकर बोले कि यह तो कोई नयी दूसरी पुस्तक है, गीतगोविन्द नहीं है। राजाका तथा राजभक्त विद्वानोंका आग्रह था कि यही गीतगोविन्द है, इससे लोगोंकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। कौन-सी पुस्तक

असली है, यह निर्णय करनेके लिये दोनों पुस्तकें श्रीजगन्नाथदेवजीके मन्दिरमें रखी गयीं। बादमें जब पट खोले गये तो देखा गया कि जगन्नाथजीने राजाकी पुस्तकको दूर फेंक दिया है और श्रीजयदेवकविकृत गीतगोविन्दको अपनी छातीसे लगा लिया है।

इस दृश्यको देखकर राजा अत्यन्त लज्जित हुआ। अपनी पुस्तकका अपमान जानकर बड़े भारी शोकमें पड़ गया और निश्चय किया कि अब मैं समुद्रमें डूबकर मर जाऊँगा। जब राजा डूबने जा रहा था तो उस समय प्रभुने दर्शन देकर आज्ञा दी कि तू समुद्रमें मत डूब। श्रीजयदेवकविकृत गीतगोविन्द-जैसा दूसरा ग्रन्थ नहीं हो सकता है। इसलिये तुम्हारा शरीर त्याग करना वृथा है। अब तुम ऐसा करो कि गीतगोविन्दके बारह सर्गोंमें अपने बारह श्लोक मिलाकर लिख दो। इस प्रकार तुम्हारे बारह श्लोक उसके साथ प्रचलित हो जायँगे, जिसकी प्रसिद्धि तीनों लोकोंमें फैल जायगी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

नीलाचल धाम तामै पण्डित नृपति एक करी यही नाम धरि पोथी सुखदाइयै।
द्विजन बुलाइ कही यही है प्रसिद्ध करो लिखि लिखि पढ़ो देश देशनि चलाइयै॥
बोले मुसकाइ विप्र छिप्रसों दिखाइ दई नई यह कोऊ मति अति भरमाइयै।
धरी दोऊ मन्दिर में जगन्नाथ देवजू के दीनी यह डारि वह हार लपटाइयै॥ १४८॥
पर्‌यो सोच भारी नृप निपट खिसानों भयो गयो उठि सागर मैं बूड़ों वही बात है।
अति अपमान कियो, कियो मैं बखान सोई गोई जात कैसे? आंच लागी गात गात है॥
आज्ञा प्रभु दई मत बूड़ै तूं समुद्र मांझ दूसरो न ग्रंथ ऐसो वृथा तनुपात है।
द्वादश सुश्लोक लिखि दीजै सर्ग द्वादश में ताहि संग चलै जाकी ख्याति पात पात है॥ १४९॥

(२)

एक बार एक मालीकी लड़की बैंगनके खेतमें बैंगन तोड़ते समय गीतगोविन्दके पाँचवें सर्गकी ***'धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली'*** इस अष्टपदीको गा रही थी। उस मधुर गानको सुननेके लिये श्रीजगन्नाथजी जो उस समय अपने श्रीअंगपर महीन एवं ढीली पोशाक धारण किये हुए थे, उसके पीछे-पीछे डोलने लगे। प्रेमवश बेसुध होकर लड़कीके पीछे-पीछे घूमनेसे काँटोंमें उलझकर श्रीजगन्नाथजीके वस्त्र फट गये। उस लड़कीके गान बन्द करनेपर आप मन्दिरमें पधारे। फटे वस्त्रोंको देखकर पुरीके राजाने आश्चर्यचकित होकर पुजारियोंसे पूछा—अरे! यह क्या हुआ, ठाकुरजीके वस्त्र कैसे फट गये? पुजारियोंने कहा कि हमें तो कुछ भी मालूम नहीं है। तब स्वयं ठाकुरजीने ही सब बात बता दी। राजाने प्रभुकी रुचि जानकर पालकी भेजी, उसमें बिठाकर उस लड़कीको बुलाया। उसने आकर ठाकुरजीके सामने नृत्य करते हुए उसी अष्टपदीको गाकर सुनाया। प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। तबसे राजाने मन्दिरमें नित्य गीतगोविन्दगानकी व्यवस्था की।

उक्त घटनासे गीतगोविन्दके गायनको अति गम्भीर रहस्य जानकर पुरीके राजाने सर्वत्र यह ढिंढोरा पिटवाया कि कोई राजा हो या निर्धन प्रजा हो, सभीको उचित है कि इस गीतगोविन्दका मधुर स्वरोंसे गान करें। उस समय ऐसी भावना रखें कि प्रियाप्रियतम श्रीराधाश्यामसुन्दर समीप विराजकर श्रवण कर रहे हैं।

गीतगोविन्दके महत्त्वको मुलतानके एक मुगलसरदारने एक ब्राह्मणसे सुन लिया। उसने घोषित रीतिके अनुसार गान करनेका निश्चय करके अष्टपदियोंको कण्ठस्थ कर लिया। जब वह घोड़ेपर चढ़कर चलता था तो उस समय घोड़ेपर आगे भगवान् विराजे हैं ऐसा ध्यान कर लेता था, फिर गान करता था। एक दिन उसने घोड़ेपर प्रभुको आसन नहीं दिया और गान करने लगा, फिर क्या देखा कि मार्गमें घोड़ेके आगे-आगे मेरी ओर मुख किये हुए श्यामसुन्दर पीछेको चलते हैं और गान सुन रहे हैं। घोड़ेसे उतरकर उसने प्रभुके चरणस्पर्श किये तथा नौकरी छोड़कर विरक्त वेश धारण कर लिया। गीतगोविन्दका अनन्त प्रताप है, इसकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसपर स्वयं रीझकर भगवान्ने उसमें अपने हाथसे पद लिखा है।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

सुता एक मालीकी जू बैंगनकी वारी मांझ तौरै वनमाली गावै कथा सर्ग पांच की।
डोलैं जगन्नाथ पांछे काछें अंग मिहींझँगा आछे कहि घूमैं सुधि आवै विरहांच की॥
फट्यो पट देखि नृप पूछी अहो भयो कहा? जानत न हम अब कहो बात सांच की।
प्रभु ही जनाई मनभाई मेरे वही गाथा ल्याये वही बालकी कौं पालकी में नाच की॥ १५०॥
फेरी नृप डौंड़ी यह औंड़ी बात जानि महा कही राजा रंक पढ़ैं नीकी ठौर जानिकैं।
अक्षर मधुर और मधुर स्वरनि ही सों गावै जब लाल प्यारी ढिग हिलैं आनिकैं॥
सुनि यह रीति एक मुगल ने धारि लई पढ़ै चढ़ै घोड़े आगे श्यामरूप ठानि कैं।
पोथी को प्रताप स्वर्ग गावत हैं देव बधू आप ही जू रीझि लिख्यो निजकर आनि कैं॥ १५१॥

(ग) श्रीजयदेवजीकी साधुता

श्रीजयदेवजीको एक बार एक सेवकने अपने घर बुलाया। दक्षिणामें आग्रह करके कुछ मुहरें देने लगा, आपके मना करनेपर भी उसने आपकी चद्दरमें मुहरें बाँध दीं। आप अपने आश्रमको चले, तब मार्गमें उन्हें ठग मिल गये। आपने उनसे पूछा कि तुमलोग कहाँ जाओगे? ठगोंने उत्तर दिया—जहाँ तुम जा रहे हो, वहीं हम भी जायँगे। श्रीजयदेवजी समझ गये कि ये ठग हैं। आपने गाँठ खोलकर सब मुहरें उन्हें दे दीं और कहा कि इनमेंसे जितनी मोहर आप लेना चाहें ले लें। उन दुष्टोंने अपने मनमें सोच-समझकर कहा कि इन्होंने मेरे साथ चालाकी की है। अभी तो भयवश सब धन बिना माँगे ही हमें सौंप दिया है। परंतु इनके मनमें यही है कि यहाँसे तो चलने दो, आगे जब नगर आयेगा तो शीघ्र ही इन सबोंको पकड़वा दूँगा।

यह सोचकर उन ठगोंने श्रीजयदेवजीके हाथ-पैर काटकर बड़े गड्ढेमें डाल दिये और अपने-अपने घरोंको चले गये। थोड़े समय बाद ही वहाँ एक राजा (लक्ष्मणसेन) आया। उसने देखा कि श्रीजयदेवजी संकीर्तन कर रहे हैं और गड्ढेमें दिव्य प्रकाश छाया है तथा हाथ-पैर कटे होनेपर भी वे परम प्रसन्न हैं। तब उन्हें गड्ढेसे बाहर निकालकर राजाने हाथ-पैर कटनेका प्रसंग पूछा। जयदेवजीने उत्तर दिया कि मुझे इस प्रकारका ही शरीर प्राप्त हुआ है।

श्रीजयदेवजीके दिव्य दर्शन एवं मधुर वचनामृतको सुनकर राजाने मनमें विचारा कि मेरा बड़ा भारी सौभाग्य है कि ऐसे सन्तके दर्शन प्राप्त हुए। राजा उन्हें पालकीमें बिठाकर घर ले आया। चिकित्साके द्वारा कटे हुए हाथ-पैरोंके घाव ठीक करवाये, फिर श्रीजयदेवजीसे प्रार्थना की कि अब आप मुझे आज्ञा दीजिये कि कौन-सी सेवा करूँ? श्रीजयदेवजीने कहा कि राजन्! भगवान् और भक्तोंकी सेवा कीजिये। ऐसी आज्ञा पाकर राजा साधु-सेवा करने लगा। इसकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। एक दिन वे ही चारों ठग सुन्दर कण्ठी-माला धारणकर राजाके यहाँ आये। उन्हें देखते ही श्रीजयदेवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—देखो, आज तो मेरे बड़े गुरु भाई लोग आये हैं। ऐसा कहकर उन्होंने सबका बड़ा ही स्वागत किया।

श्रीजयदेवजीने शीघ्र राजाको बुलवाकर कहा कि इनकी प्रेमसे यथोचित सेवा करके संत-सेवाका फल प्राप्त कर लो। आज्ञा पाकर राजा उन्हें भीतर महलमें ले गया और अनेक सेवकोंको उनकी सेवामें लगा दिया, परंतु उन चारोंके मन अपने पापसे व्याकुल थे, उन्हें भय था कि यह हमें पहचान गया है, राजासे कहकर मरवा देगा। वे राजासे बार-बार विदा माँगते थे, पर राजा उन्हें जाने नहीं देता था। तब श्रीजयदेवजीके कहनेपर राजाने अनेक प्रकारके वस्त्र-रत्न-आभूषण आदि देकर उन्हें विदा किया। सामानको ढोनेके लिये साथमें कई मनुष्योंको भी भेजा।

राजाके सिपाही गठरियोंको लेकर उन ठग-सन्तोंको पहुँचानेके लिये उनके साथ-साथ चले, कुछ दूर जानेपर राजपुरुषोंने उन सन्तोंसे पूछा कि भगवन्! राजाके यहाँ नित्य संत-महात्मा आते-जाते रहते हैं, परंतु स्वामीजीने जितना सत्कार आपका किया और राजासे करवाया है, ऐसा किसी दूसरे साधु-सन्तका सेवा-सत्कार आजतक

नहीं हुआ। इसलिये हम प्रार्थना करते हैं कि आप बताइये कि स्वामीजीसे आपका क्या सम्बन्ध है? उन्होंने कहा—यह बात अत्यन्त गोपनीय है, मैं तुम्हें बताता हूँ, पर तुम किसीसे मत कहना। पहले तुम्हारे स्वामीजी और हम सब एक राजाके यहाँ नौकरी करते थे। वहाँ इन्होंने बड़ा भारी अपराध किया। राजाने इन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी। परंतु हमने अपना प्रेमी जानकर इनको मारा नहीं। केवल हाथ-पैर काटकर राजाको दिखा दिया और कह दिया कि हमने मार डाला। उसी उपकारके बदलेमें हमारा सत्कार विशेषरूपसे कराया गया है।

उन कृतघ्नी साधु-वेषधारियोंके इस प्रकार झूठ बोलते ही पृथ्वी फट गयी और वे सब उसमें समा गये। इस दुर्घटनासे राजपुरुष लोग आश्चर्यचकित हो गये। वे सब-के-सब दौड़कर स्वामीजीके पास आये और जैसा हाल था, कह सुनाया। उसके सुनते ही श्रीजयदेवजी दुःखी होकर हाथ-पैर मलने लगे। उसी क्षण उनके हाथ-पैर बड़े सुन्दर जैसे थे, वैसे ही फिर हो गये। राजपुरुषोंने दोनों आश्चर्यजनक घटनाओंको राजासे कह सुनाया। हाथ-पैर पूरे हो जानेकी घटना सुनकर राजा अति प्रसन्न हुआ। उसी समय वह दौड़कर स्वामीजीके समीप आया और चरणोंमें सिर रखकर पूछने लगा—प्रभो! कृपा करके इन दोनों चरित्रोंका रहस्य खोलकर कहिये कि क्यों धरती फटी और उसमें सब साधु कैसे समाये? आपके ये हाथ-पैर कैसे निकल आये?

राजाने स्वामीजीसे जब अत्यन्त हठ किया। तब उन्होंने सब बात खोलकर कह दी, फिर बोले कि देखो राजन्! यह सन्तोंका वेष अत्यन्त अमूल्य है, इसकी बड़ी भारी महिमा है। सन्तोंके साथ कोई चाहे जैसी और चाहे जितनी बुराई करे तो भी वे उस बुराई करनेवालेका बुरा न सोचकर बदलेमें उसके साथ भलाई ही करते हैं। साधुताका त्याग न करनेपर सन्त, महापुरुष एवं भगवान् श्रीश्यामसुन्दर मिल जाते हैं। राजाने श्रीजयदेवजीका नाम तो सुना था, पर उसने कभी दर्शन नहीं किया था। आज जब उसने श्रीजयदेवजीके नाम-गाँवको जाना तो प्रसन्न होकर कहने लगा कि आप कृपाकर यहाँ विराजिये। आपके यहाँ विराजनेसे मेरे पूरे देशमें प्रेमभक्ति फैल गयी है।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका वर्णन इन कवित्तोंमें किया है—

पोथी की तो बात सब कही मैं सुहात हिये सुनो और बात जामें अति अधिकाइये।
गाँठि में मुहर मग चलत में ठग मिले कहो कहाँ जात जहाँ तुम चलि जाइये॥
जानि लई बात खोलि द्रव्य पकराय दियो, लियो चाहो जोई-जोई सोइ मोकों ल्याइये।
दुष्टनि समुझि कही कीनी इन विद्या अहो आवै जो नगर इन्हें बेगि पकराइये॥ १५२॥
एक कहै डारो मार भलो है विचार यही एक कहै मारौ मत धन हाथ आयो है।
जो पै ले पिछान कहूँ, कीजिये निदान कहा? हाथ पाँव काटि बड़े गाढ़ पधरायो है॥
आयो तहाँ राजा एक देखिकै विवेक भयो छायो उजियारो औ प्रसन्न दरसायो है।
बाहर निकासि मानो चन्द्रमा प्रकास राशि पूछ्यो इतिहास कह्यो ऐसो तनु पायो है॥ १५३॥
बड़ेई प्रभाववान सकै को बखान अहो मेरे कोऊ भूरि भाग दरशन कीजियै।
पालकी बिठाय लिये किये सब ठूठ नीके जीके भाये भये कछु आज्ञा मोहिं दीजियै॥
करौ हरि साधु सेवा नाना पकवान मेवा आवैं जोई सन्त तिन्हें देखि देखि भीजियै।
आये वेई ठग माला तिलक चिलक किये किलकि के कही बड़े बन्धु लखि लीजियै॥ १५४॥
नृपति बुलाय कही हिये हरि भाय भरि ढरे तेरे भाग अब सेवा फल लीजियै।
गयो लै महल माँझ टहल लगाये लोग लागे होन भोग जिय शंका तन छीजियै॥
माँगैं बार बार विदा राजा नहीं जान देत अति अकुलाये कही स्वामी धन दीजियै।
दैकै बहु भाँति सो पठाये संग मानुष हूँ आवौ पहुँचाय तब तुम पर रीझियै॥ १५५॥

पूछैं नृप नर कोऊ तुम्हरी न सरवर जिते आये साधु ऐसी सेवा नहीं भई है।
स्वामीजू सौं नातौ कहा? कहौ हम खांइ हा हा राखियो दुराइ यह बात अति नई है॥
हूते एक ठौर नृप चाकरीमें तहा इन कियोई बिगार 'मारि डारो' आज्ञा दई है।
राखे हम हितू जानि लै निदान हाथ-पाव वाही के इसान अब हम भरि लई है॥ १५६॥
फाटि गई भूमि सब ठग वे समाइ गये भये ये चकित दौरि स्वामी जू पै आये हैं।
कही जिती बात सुनि गात गात कांपि उठे हाथ-पांव मीड़ैं भये ज्योंके त्यों सुहाये हैं॥
अचरज दोऊ नृप पास जा प्रकाश किये जिये एक सुनि आये वाही ठौर धाये हैं।
पूछैं बार-बार सीस पांयनि पै धारि रहे कहिये उघारि कैसे मेरे मन भाये हैं॥ १५७॥
राजा अति आरि गही कही सब बात खोलि निपट अमोल यह सन्तन को वेस है।
कैसो अपकार करै तऊ उपकार करै ढरैं रीति आपनी ही सरस सुदेस है॥
साधुता न तजैं कभूं, जैसे दुष्ट दुष्टता न यही जानि लीजै मिले रसिक नरेस है।
जान्यो जब नांव ठांव रहो इहा बलि जांव भयो मैं सनाथ प्रेम भक्ति भई देस है॥ १५८॥

(घ) जयदेवजीकी पत्नी पद्मावतीजीका पतिप्रेम

श्रीजयदेवजीकी आज्ञासे राजा किन्दुबिल्व आश्रमसे उनकी पत्नी श्रीपद्मावतीजीको लिवा लाये। श्रीपद्मावतीजी रानीके निकट रनिवासमें रहने लगीं। एक दिन जब रानी पद्मावतीके निकट बैठी थी। उसी समय किसीने आकर रानीको सूचित किया कि तुम्हारा भाई शरीर छोड़कर देवलोकवासी हुआ और तुम्हारी भावजोंमेंसे एक सती हो गयी। यह सुनकर रानीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि हमारी भाभी कितनी बड़ी सती साध्वी थीं। श्रीपद्मावतीजीको इससे कुछ भी आश्चर्य न हुआ। उन्होंने रानीको समझाया कि पतिके स्वर्गवासी होनेपर उनके मृत शरीरके साथ जल जाना उत्तम पातिव्रत-सूचक है, परंतु अनन्य प्रीतिकी यह रीति है कि प्रियतमके प्राण छूट जायँ तो अपने प्राण भी उसी समय शरीरको छोड़कर साथ चले जायँ।

पद्मावतीजीने रानीकी भाभीकी प्रशंसा नहीं की, इससे रानीने व्यंग्य करते हुए कहा कि आपने जैसी पतिव्रता बतायी ऐसी तो केवल आप ही हो। समय पाकर सब बात रानीने राजासे कहकर फिर यों कहा—आप स्वामीजी (श्रीजयदेवजी)-को थोड़ी देरके लिये बागमें ले जाओ, तब मैं यह देखूँगी कि इनकी पतिमें कैसी प्रीति है। राजाने रानीका विचार सुनकर कहा कि यह उचित नहीं है। जब रानीने बड़ा हठ किया, तब राजाने उसकी बात मानकर वैसा ही किया, राजाके साथ स्वामीजीके बागमें चले जानेपर रानीकी सिखायी हुई एक दासीने आकर पद्मावतीजीको सुनाया कि स्वामीजी भगवान्के धामको चले गये। यह सुनते ही रानी और समीप बैठी हुई स्त्रियाँ दुःख प्रकट करनेके ढोंगको रचकर धरतीपर लोटने और रोने लगीं। ध्यानद्वारा जानकर थोड़ी देर बाद भक्तवधू श्रीपद्मावतीजी बोलीं—अजी रानीजी! मेरे स्वामीजी तो बहुत अच्छी तरहसे हैं, तुम अचानक ही इस प्रकार क्यों धोखेमें आकर डर रही हो?

रानीकी मायाका श्रीपद्मावतीजीपर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ, भेद खुल गया, इससे रानीको बड़ी लज्जा हुई। जब कुछ दिन बीत गये तो फिर दूसरी रानीने उसी प्रकारकी तैयारी करके माया-जाल रचा। श्रीपद्मावतीजी अपने मनमें समझ गयीं कि रानी परीक्षा लेना चाहती है तो परीक्षा दे ही देना चाहिये। इस बार जैसे ही किसी दासीने आकर कहा अजी! स्वामीजी तो प्रभुको प्राप्त हो गये। वैसे ही झट पतिप्रेमसे परिपूर्ण होकर श्रीपद्मावतीजीने अपना शरीर छोड़ दिया। इनके मृतक शरीरको देखकर रानीका मुख कान्तिहीन सफेद हो गया। राजा आये और

उन्होंने जब यह सब जाना तो कहने लगे कि इस स्त्रीके चक्करमें आकर मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी, अब इस पापका यही प्रायश्चित्त है कि मैं भी जल मरूँ। श्रीजयदेवजीको जब यह समाचार मिला तो वे दौड़कर वहाँपर आये और मरी हुई पद्मावतीको तथा मरनेके लिये तैयार राजाको देखा। राजाने कहा कि इनको मृत्यु मैंने दी है। जयदेवजीने कहा—तो अब तुम्हारे जलनेसे ये जीवित नहीं हो सकती हैं। अतः तुम मत जलो।

राजाने कहा—महाराज! अब तो मुझे जल ही जाना चाहिये; क्योंकि मैंने आपके सभी उपदेशोंको धूलमें मिला दिया। श्रीजयदेवजीने राजाको अनेक प्रकारसे समझाया, परंतु उसके मनको कुछ भी शान्ति नहीं मिली, तब आपने गीतगोविन्दकी एक अष्टपदीका गान आरम्भ किया। संगीत-विधिसे अलाप करते ही पद्मावतीजी जीवित हो गयीं। इतनेपर भी राजा लज्जाके मारे मरा जा रहा था और आत्महत्या कर लेना चाहता था। वह बार-बार मनमें सोचता था कि ऐसे महापुरुषका संग पाकर भी मेरे मनमें भक्तिका लेशमात्र भी नहीं आया। श्रीजयदेवजीने समझा-बुझाकर राजाको शान्त किया और किन्दुबिल्व ग्रामको चले आये।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

गये जा लिवाय ल्याय कविराज राजतिया किया लै मिलाप आप रानी ढिग आई हैं।
मर्‍यो एकभाई वाकी भई यों भौजाई सती कोऊ अंग काटि कोऊ कूदि परी धाई हैं॥
सुनत ही नृप बधू निपट अचम्भो भयो इनकैं न भयो फिरि कही समुझाई हैं।
प्रीति की न रीति यह बड़ी विपरीत अहो छुटै तन जबै प्रिया प्रान छूटि जाई हैं॥ १५९॥
'ऐसी एक आप' कहि राजा सूं यूं बात कही लैके जाओ बाग स्वामी नेकु देखौं प्रीतिकों।
निपट बिचारी बुरी देत मेरे गरे छुरी तिया हठ मानि करी वैसे ही प्रतीति कों॥
आनि कहैं आपु पाये कही यही भांति आय बैठी ढिग तिया देखि लोटि गई रीति कों।
बोलीं भक्तबधू अजू वे तो हैं बहुत नीके तुम कहा औचक ही पावति हो भीति कों॥ १६०॥
भई लाज भारी पुनि फेरि कै सँवारी दिन बीति गये कोऊ जब तब वही कीनी है।
जानि गई भक्त बधू चाहति परीछा लियो कही अजू पाये सुनि तजी देह भीनी है॥
भयो मुखस्वेत रानी राजा आये जानी यह रची चिता जरौं मति भई मेरी हीनी है।
भई सुधि आपकौं सु आये बेगि दौरि इहाँ देखि मृत्यु प्राय नृप कह्यो मेरी दीनी है॥ १६१॥
बोल्यो नृप अजू मोहिं जरेई बनत अब सब उपदेश लैकै धूरिमें मिलायौ है।
कह्यौ बहु भांति ऐपै आवति न शांति किहूँ गाई अष्टपदी सुर दियौ तन ज्यायौ है॥
लाजनिको मार्‍यो राजा चहै अपघात कियौ जियो नहिं जाति भक्ति लेसहूं न आयौ है।
करि समाधान निज ग्राम आये किंदुबिल्लु जैसो कछु सुन्यौ यह परचै लै गायौ है॥ १६२॥

(ङ) श्रीजयदेवजीकी गंगाजीके प्रति निष्ठा

श्रीजयदेवजीका जहाँ आश्रम था, वहाँसे गंगाजीकी धारा अठारह कोस दूर थी। परंतु आप नित्य गंगा-स्नान करते थे। जब आपका शरीर अत्यन्त वृद्ध हो गया, तब भी आप अपने गंगा-स्नानके नित्य-नियमको कभी नहीं छोड़ते थे। इनके बड़े भारी प्रेमको देखकर इन्हें सुख देनेके लिये रातको स्वप्नमें श्रीगंगाजीने कहा—अब तुम स्नानार्थ इतनी दूर मत आया करो, केवल ध्यानमें ही स्नान कर लिया करो। धारामें जाकर स्नान करनेका हठ मत करो। श्रीजयदेवजीने इस आज्ञाको स्वीकार नहीं किया। तब फिर गंगाजीने स्वप्नमें कहा—तुम नहीं मानते हो तो मैं ही तुम्हारे आश्रमके निकट सरोवरमें आ जाऊँगी। तब आपने

कहा—मैं कैसे विश्वास करूँगा कि आप आ गयी हैं। गंगाजीने कहा—जब आश्रमके समीप जलाशयमें कमल खिले देखना, तब विश्वास करना कि गंगाजी आ गयीं। ऐसा ही हुआ, खिले हुए कमलोंको देखकर श्रीजयदेवजीने वहीं स्नान करना आरम्भ कर दिया। आपने अन्तकालमें श्रीवृन्दावनधामको प्राप्त किया।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

देवधुनी सोत हो अठारै कोस आश्रम तैं सदाई स्नान करैं धरैं जोग्यताई कौं।
भयो तन वृद्ध तऊँ छोड़ें नहीं नित्य नेम प्रेम देखि भारी निशि कही सुखदाई कौं॥
आवौ जिनि ध्यान करौ, करौ मत हठ ऐसो मानी नहीं आऊँ मैं ही जानौं कैसे आई कौं।
फूले देखौ कंज तब कीजियो प्रतीति मेरी भई वही भांति सेवैं अबलौं सुहाई कौं॥ १६३॥

श्रीश्रीधर स्वामीजी

तीनि कांड एकत्व सानि कोउ अग्य बखानत।
कर्मठ ग्यानी ऐंचि अर्थ कौ अनरथ बानत॥
परमहंस संहिता बिदित टीका बिसतार्‍यो।
षट सास्त्रनि अबिरुद्ध बेद संमतहि बिचार्‍यो॥
परमानंद प्रसाद तें माधौ सुकर सुधार दियो।
श्रीधर श्रीभागवत में परम धरम निरनय कियो॥ ४५॥

श्रीश्रीधरस्वामीने श्रीमद्भागवतमें परमधर्मका निर्णय किया। श्रीभागवतधर्मके रहस्योंको ठीक प्रकारसे न जाननेके कारण कुछ विद्वानोंने तीनों (कर्म, ज्ञान, उपासना) काण्डोंको एकमें मिश्रित करके श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की। कर्मकाण्डी और शुष्क ज्ञानी लोग खींचातानी एवं कठिन कल्पनाएँ करके अर्थका विपरीत अर्थ (अनर्थ) करते थे। जिज्ञासु भक्तगण शंकित हो जाते थे, वास्तविक तात्पर्य ओझल हो जाता था। ऐसी स्थितिमें विश्वविख्यात 'परमहंससंहिता' की विद्वानोंमें प्रसिद्ध टीका 'भावार्थ-दीपिका' की रचना स्वामी श्रीधराचार्यजीने की। उसमें षट्शास्त्र एवं षड्-दर्शनोंके सर्वथा अनुकूल तथा वेदोपनिषद्-सम्मत सिद्धान्तका समर्थन किया। श्रीधरस्वामीके गुरुदेव श्रीपरमानन्द-सरस्वतीपादजीकी कृपासे भगवान् विन्दुमाधवने श्रीधरकृतटीकाको अपने हस्तकमलसे सुधार दिया, हस्ताक्षरित करके सर्वोत्तम सिद्ध किया॥ ४५॥

यहाँ श्रीश्रीधर स्वामीजीके विषयमें संक्षेपमें कुछ विवरण प्रस्तुत है—

दक्षिण भारतके किसी नगरमें वहाँके राजा और मन्त्रीमें मार्ग चलते समय भगवान्की कृपा तथा प्रभावके सम्बन्धमें बात हो रही थी। मन्त्री कह रहे थे—'भगवान्की उपासनासे उनकी कृपा प्राप्त करके मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है।' संयोगकी बात या दयामय भगवान्की इच्छा—राजाने देखा कि एक बालक फूटे पात्रमें तेल लिये जा रहा है। राजाने मन्त्रीसे पूछा—'क्या यह बालक भी बुद्धिमान् हो सकता है?' मन्त्रीने बड़े विश्वासके साथ कहा—'भगवान्की कृपासे अवश्य हो सकता है।' बालक बुलाया गया। पता लगा कि वह ब्राह्मणका बालक है। उसके माता-पिता उसे बचपनमें ही छोड़कर परलोक चले गये थे। परीक्षाके लिये नृसिंहमन्त्रकी दीक्षा दिलाकर उसे आराधनामें लगा दिया गया। बालक भी सब प्रकारसे भगवान्के भजनमें लग गया। उस अनाथ बालककी भक्ति देखकर नृसिंहरूपमें दर्शन देकर भगवान्ने बालकको वरदान दिया—'तुम्हें वेद, वेदांग, दर्शनशास्त्र आदिका सम्पूर्ण ज्ञान होगा और मेरी भक्ति तुम्हारे हृदयमें निवास करेगी।' बालक और कोई नहीं श्रीधर स्वामी ही थे।

अब इस बालककी विद्वत्ताका क्या पूछना! भगवान्की

दी हुई विद्याकी लोकमें भला, कौन बराबरी कर सकता था! बड़े-बड़े विद्वान् इनका सम्मान करने लगे। राजा इन्हें आदर देने लगे। धनका अभाव नहीं रहा। विवाह हुआ और पत्नी आयी। परंतु गृहस्थ होकर भी इनका चित्त घरमें लगता नहीं था। सब कुछ छोड़कर केवल प्रभुका भजन किया जाय, इसके लिये इनके प्राण तड़पते रहते थे। इनकी स्त्री गर्भवती हुई, प्रथम सन्तानको जन्म देकर वह परलोक चली गयी। स्त्रीकी मृत्युसे इन्हें दुःख नहीं हुआ। इन्होंने इसे प्रभुकी कृपा ही माना। परंतु अब नवजात बालकके पालन-पोषणमें ही व्यस्त रहना इन्हें अखरने लगा। एक दिन लीलामय प्रभुकी लीलासे इनके सामने घरकी छतसे एक पक्षीका अण्डा भूमिपर गिर पड़ा और फूट गया। अण्डा पक चुका था। उससे लाल-लाल बच्चा निकलकर अपना मुख हिलाने लगा। इनको ऐसा लगा कि इस बच्चेको भूख लगी है; यदि अभी कुछ न मिला तो यह मर जायगा। उसी समय एक छोटा कीड़ा उड़कर फूटे अण्डेके रसपर आ बैठा और उसमें चिपक गया। पक्षीके बच्चेने उसे खा लिया। भगवान्‌की यह लीला देखकर श्रीधर स्वामीके हृदयमें बल आ गया। यह सोचकर कि सबका भरण-पोषण भगवान् स्वयं करते हैं। ये वहाँसे काशी चले आये। विश्वनाथपुरीमें आकर ये भगवान्‌के भजनमें तल्लीन हो गये।

श्रीश्रीधर स्वामीजी श्रीबिन्दुमाधवजीके बड़े ही भक्त थे। काशीवास करते समय एक विद्यार्थी आपकी सेवामें रहा करता था, संयोगसे उसका भी नाम माधव ही था। एक बारकी बात है, आप बीमार पड़ गये, उस समय माधव आपकी सेवामें था। उसी बीच माधवके पिताजी भी बीमार पड़ गये। परदुःखकातर श्रीस्वामीजीने स्वयं अस्वस्थ रहते हुए भी माधवको उसके पिताकी सेवामें आग्रहपूर्वक भेज दिया। माधव गुरुकी आज्ञा मानकर चला गया, इधर स्वामीजी ज्वरकी अधिकतासे अचेतावस्थामें हो गये और माधव! माधव! कहकर उसे बुलाने लगे। भक्तवत्सल भगवान्‌ने अपने भक्तकी पुकार सुनकर विद्यार्थी माधवका रूप बनाया और आ गये सेवा करने। अब विद्यार्थी बने भगवान् बिन्दुमाधव श्रीधर स्वामीकी समस्त परिचर्या करते। इस प्रकार कई दिन बीत गये। श्रीस्वामीजी स्वस्थ हो गये, उधर विद्यार्थी माधवके पिता भी स्वस्थ हो गये थे, अतः वह गुरुजीके पास लौट आया। उसे आया देख भगवान् अन्तर्धान हो गये। आनेपर माधवने देखा कि चूल्हा जल रहा है और उसपर खिचड़ी बन रही है, पर कोई बनानेवाला न दिखायी दिया। श्रीस्वामीजी विश्राम कर रहे थे। बालक माधवने गुरुजीको अपने पिताके स्वस्थ हो जानेकी सूचना दी और पूछा—गुरुदेव! यह खिचड़ी कौन पका रहा है? श्रीस्वामीजी आश्चर्यचकित हो बोले—बेटा माधव! अभी-अभी तूने ही तो चूल्हा जलाकर खिचड़ी चढ़ायी है, फिर मुझसे क्यों पूछ रहा है? माधवने कहा—गुरुजी! मैं तो आपकी आज्ञासे ही अपने अस्वस्थ पिताकी सेवामें गाँव गया था, फिर मैंने कैसे आपकी सेवा की? अब श्रीश्रीधर स्वामीजीके समक्ष सारी बात स्पष्ट हो गयी कि मेरे 'माधव-माधव' पुकारनेपर आकर मेरी सेवा करनेवाले स्वयं भक्तवत्सल भगवान् बिन्दुमाधवजी ही थे। कुछ कालतक काशीवास करनेके बाद आप श्रीधाम श्रीवृन्दावन चले आये।

गीता, भागवत, विष्णुपुराणपर श्रीधर स्वामीकी टीकाएँ मिलती हैं। इनकी टीकाओंमें भक्ति तथा प्रेमका अखण्ड प्रवाह है। एकमात्र श्रीधर स्वामी ही ऐसे हैं कि जिनकी टीकाका सभी सम्प्रदायके लोग आदर करते हैं। कुछ लोगोंने इनकी भागवतकी टीकापर आपत्ति की, उस समय इन्होंने वेणीमाधवजीके मन्दिरमें भगवान्‌के पास ग्रन्थ रख दिया। कहते हैं कि स्वयं भगवान्‌ने अनेक साधु-महात्माओंके सम्मुख वह ग्रन्थ उठाकर हृदयसे लगा लिया। भगवान्‌के ऐसे लाड़ले भक्त ही पृथ्वीको पवित्र करते हैं।

इस घटनाका वर्णन भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

पंडित समाज बड़े बड़े भक्तराज जिते भागवत टीका करि आपसमें रीझिये।
भयो जू विचार काशीपुरी अविनाशी मांझ सभा अनुसार जोई सोई लिखि दीजिये॥
ताको तो प्रमान भगवान बिन्दुमाधौजी हैं साधौ यही बात धरि मन्दिर में लीजिये।
धरे सब जाय प्रभु सुकर बनाय दियो कियो सर्व ऊपर लै चल्यो मति धीजिये॥ १६४॥

श्रीबिल्वमंगलजी

करुनामृत सुकबित्त जुक्ति अनुचिष्ट उचारी।
रसिक जनन जीवन जु हृदय हारावलि धारी॥
हरि पकरायो हाथ बहुरि तहँ लियो छुटाई।
कहा भयो कर छुटैं बदौं जौ हिय तें जाई॥
चिंतामनि सँग पाय कें ब्रजबधू केलि बरनी अनुप।
कृष्न कृपा कां पर प्रगट बिल्वमँगल मंगलस्वरुप॥ ४६॥

भगवान् श्रीकृष्णके परम कृपापात्र श्रीबिल्वमंगलजी इस संसारमें प्रत्यक्ष मंगल-कल्याणके स्वरूप थे। विश्वका मंगल ही बिल्वमंगलके रूपमें प्रकट हुआ। आपने 'श्रीकृष्णकर्णामृत' नामक सुन्दर काव्यका निर्माण किया, जिसकी उक्तियाँ सर्वथा नयी हैं, दूसरे कवियोंकी जूठी नहीं हैं। प्रेमाभक्तिसे प्रकट सहज एवं दिव्य उद्गार हैं। श्रीकृष्णकर्णामृत रसिकभक्तोंका जीवन-प्राण है, उन्होंने इसे कई लड़ियोंके हारके समान अपने हृदयमें धारण किया है। एक बार भगवान् श्यामसुन्दरने (अन्धा होनेपर वृन्दावनका) मार्ग दिखाते हुए अपना हाथ पकड़ाया और फिर उसे छुड़ा लिया। उस समय आपने उनसे कहा—हाथ छुड़ाकर चले जानेसे क्या हुआ, मैं तुम्हें वीर पुरुष तब समझूँ, जब मेरे हृदयके बन्धनसे छूटकर चले जाओ। आपने चिन्तामणिका संग पाकर व्रजगोपियोंके साथ हुई श्रीकृष्णकी लीलाओंका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। उसके द्वारा सभी भक्तोंका मंगल हुआ, अतः आप मंगलकी मूर्ति ही थे॥ ४६॥

(क) भक्त बिल्वमंगलका प्रारम्भिक जीवन

दक्षिण प्रदेशमें कृष्णवेणा नदीके तटपर एक ग्राममें रामदास नामक एक भगवद्भक्त ब्राह्मण निवास करते थे। उन्हींके पुत्रका नाम था बिल्वमंगल। पिताने यथासाध्य पुत्रको धर्मशास्त्रोंकी शिक्षा दी थी। परंतु पिता-माताके देहावसानके बाद संगदोषसे बिल्वमंगलके अन्तःकरणमें अनेक दोषोंने अपना घर कर लिया। यहाँतक कि वह चिन्तामणि नामक एक वेश्याके रूपपर आसक्त हो गया।

आज बिल्वमंगलके पिताका श्राद्ध है, विद्वान् कुलपुरोहित बिल्वमंगलसे श्राद्धके मन्त्रोंकी आवृत्ति करवा रहे हैं, परंतु उसका मन 'चिन्तामणि' की चिन्तामें निमग्न है। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। किसी प्रकार श्राद्ध समाप्तकर जैसे-तैसे ब्राह्मणोंको झटपट भोजन करवाकर बिल्वमंगल चिन्तामणिके घर जानेको तैयार हुआ। सन्ध्या हो चुकी थी, लोगोंने समझाया कि 'भाई! आज तुम्हारे पिताका श्राद्ध है, वेश्याके घर नहीं जाना चाहिये।' परंतु कौन सुनता था। उसका हृदय तो कभीका धर्म-कर्मसे शून्य हो चुका था। बिल्वमंगल दौड़कर नदीके किनारे पहुँचा। अकस्मात् प्रबल वेगसे तूफान आया और उसीके साथ मूसलधार वर्षा होने लगी, रात-दिन नदीमें रहनेवाले केवटोंने भी नावोंको किनारे बाँधकर वृक्षोंका आश्रय लिया, परंतु बिल्वमंगलपर इन सबका कोई असर नहीं पड़ा। उसने केवटोंसे उस पार ले चलनेको कहा, उतराईका भी गहरा लालच दिया; परंतु मृत्युका सामना करनेको कौन तैयार होता। अन्तमें वह अधीर हो उठा और कुछ भी आगा-पीछा न सोचकर तैरकर पार जानेके लिये सहसा नदीमें कूद पड़ा। संयोगवश नदीमें एक मुर्दा बहा जा रहा था। बिल्वमंगल तो बेहोश था, उसने उसे काठ समझा और उसीके सहारे नदीके उस पार चला गया। कुछ ही दूरपर

चिन्तामणिका घर था। श्राद्धके कारण आज बिल्वमंगलके आनेकी बात नहीं थी, अतएव चिन्तामणि घरके सब दरवाजोंको बन्द करके निश्चिन्त होकर सो चुकी थी। बिल्वमंगलने बाहरसे बहुत पुकारा; परंतु तूफानके कारण अन्दर कुछ भी नहीं सुनायी पड़ा। बिल्वमंगलने इधर-उधर ताकते हुए बिजलीके प्रकाशमें दीवालपर एक रस्सा-सा लटकता देखा, तुरंत उसने उसे पकड़ा और उसीके सहारे दीवाल फाँदकर अन्दर चला गया। चिन्तामणिको जगाया। वह तो इसे देखते ही स्तम्भित-सी रह गयी! नंगा बदन, सारा शरीर पानीसे भीगा हुआ, भयानक दुर्गन्ध आ रही है। उसने कहा—'तुम इस भयावनी रातमें नदी पार करके बन्द घरमें कैसे आये?' बिल्वमंगलने काठपर चढ़कर नदी पार होने और रस्सेकी सहायतासे दीवालपर चढ़नेकी कथा सुनायी! वृष्टि थम चुकी थी। चिन्ता दीपक हाथमें लेकर बाहर आयी, देखती है तो दीवालपर भयानक काला नाग लटक रहा है और नदीके तीर सड़ा मुर्दा पड़ा है। बिल्वमंगलने भी देखा और देखते ही काँप उठा। चिन्तामणिने भर्त्सना करके कहा—'तू ब्राह्मण है? अरे, आज तेरे पिताका श्राद्ध था, परंतु एक हाड़-मांसकी पुतलीपर तू इतना आसक्त हो गया कि अपने सारे धर्म-कर्मको तिलांजलि देकर इस डरावनी रातमें मुर्दे और साँपकी सहायतासे यहाँ दौड़ा आया! तू आज जिसे परम सुन्दर समझकर इस तरह पागल हो रहा है, उसका भी एक दिन तो वही परिणाम होनेवाला है, जो इस सड़े मुर्देका है! अरे! यदि तू इसी प्रकार उस मनमोहन श्यामसुन्दरसे मिलनेके लिये यों छटपटाकर दौड़ता तो अबतक उनको पाकर तू अवश्य ही कृतार्थ हो चुका होता!'

वेश्याकी वाणीने बड़ा काम किया! बाल्यकालकी स्मृति उसके मनमें जाग उठी। पिताजीकी भक्ति और उनकी धर्मप्राणताके दृश्य उसकी आँखोंके सामने मूर्तिमान् होकर नाचने लगे। बिल्वमंगलने चिन्तामणिके चरण पकड़ लिये और कहा—'माता! तूने आज मुझको दिव्यदृष्टि देकर कृतार्थ कर दिया।' मन-ही-मन चिन्तामणिको गुरु मानकर प्रणाम किया और उसी क्षण बिल्वमंगलके जीवन-नाटककी यवनिकाका परिवर्तन हो गया।

इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

कृष्ण वेना तीर एक द्विज मतिधीर रहै ह्वै गयो अधीर संग चिन्तामनि पाइकै।
तजी लोकलाज हिये वाहीको जु राज भयौ निशि दिन काज वहै रहै घर जाइकै॥
पिताको सराध नेकु रह्यौ मन साधि दिन शेषमें आवेश चल्यौ अति अकुलाइकै।
नदी चढ़ी रही भारी पैये न अवारी नाव भाव भर्‍यो हियौ जियौ जात न धिजाइकै॥ १६५॥
करत विचार वारिधार में न रहै प्राण ताते भली धार मित्र सनमुख जाइयै।
परे कूदि नीर कछु सुधि न शरीर की है वही एक पीर कब दरसन पाइयै॥
पैयत न पार तन हारि भयो बूड़िबे कों मृतक निहारि मानी नाव मन भाइयै।
लगेई किनारे जाय चले पग धाय चाय आये पट लागे निशि आधी सो विहाइयै॥ १६६॥
अजगर घूमि झूमि भूमिको परस कियो लियोई सहारो चढ्यो छात पर जायकै।
ऊपर किवार लगे पर्‍यो कूदि आंगन में गिर्‍यो यों गरत रागी जागी सोर पायकै॥
दीपक बराइ जो पै देखै विल्वमंगल है बड़ोई अमंगल तूं कियो कहा आय कै।
जल अन्हवाय सूखे पट पहराय हाय! कैसें करि आयो जल पार द्वार धाय कै॥ १६७॥
नौका पठवाई द्वार लाव लटकाई देखि मेरे मन भाई मैं तो तबैं लई जानि कै।
चलो देखौं अहो, यह कहा धौं प्रलाप करै देख्यो विषधर महा खीजी अपमानि कै॥
जैसो मन मेरे हाड़ चाम सौं लगायो तैसो स्याम सों लगावो तौ पै जानिये सयानिकै।
मैं तो भये भोर भजौं युगल किशोर अब तेरी तुही जानै चाहौ करौ मन मानिकै॥ १६८॥

(ख) सात्त्विक परिवर्तन

दोनोंने उस पूरी रात भगवान्‌का भजन किया और प्रातः होते ही चिन्तामणिने हरिद्वारकी और बिल्वमंगलने सन्त श्रीसोमगिरिजी महाराजके आश्रमकी राह ली। वहाँ गुरुदेवसे दीक्षा लेकर एक वर्षतक आश्रममें ही रहकर भजन-पूजन किया, फिर वृन्दावन धामके लिये चल पड़ा। एक दिन अकस्मात् उसे रास्तेमें एक परम रूपवती युवती दीख पड़ी, पूर्व-संस्कार अभी सर्वथा नहीं मिटे थे। युवतीका सुन्दर रूप देखते ही नेत्र चंचल हो उठे।

बिल्वमंगलको फिर मोह हुआ। वह युवतीके पीछे-पीछे उसके मकानतक गया। युवती अपने घरके अन्दर चली गयी, बिल्वमंगल उदास होकर घरके दरवाजेपर बैठ गया। घरके मालिकने बाहर आकर देखा कि एक मलिनमुख अतिथि ब्राह्मण बाहर बैठा है। उसने कारण पूछा। बिल्वमंगलने कपट छोड़कर सारी घटना सुना दी और कहा कि 'मैं एक बार फिर उस युवतीको प्राण भरकर देख लेना चाहता हूँ, तुम उसे यहाँ बुलवा दो।' युवती उसी गृहस्थकी धर्मपत्नी थी, अतिथिवत्सल गृहस्थ अपनी पत्नीको बुलानेके लिये अन्दर गया। इधर बिल्वमंगलको अपनी अवस्थाका यथार्थ ज्ञान हुआ, हृदय शोकसे भर गया और न मालूम क्या सोचकर उसने पासके बेलके पेड़से दो काँटे तोड़ लिये। इतनेमें ही गृहस्थकी धर्मपत्नी वहाँ आ पहुँची, बिल्वमंगलने उसे फिर देखा और मन-ही-मन अपनेको धिक्कार देकर कहने लगा कि 'अभागी आँखें! यदि तुम न होतीं तो आज मेरा इतना पतन क्यों होता?' इतना कहकर बिल्वमंगलने उन दोनों काँटोंको दोनों आँखोंमें भोंक लिया! आँखोंसे रुधिरकी अजस्र धारा बहने लगी! गृहस्थ और उसकी पत्नीको बड़ा दुःख हुआ, परंतु वे बेचारे निरुपाय थे। बिल्वमंगलका बचा-खुचा चित्त-मल भी आज सारा नष्ट हो गया और अब तो वह उस अनाथके नाथको अतिशीघ्र पानेके लिये बड़ा ही व्याकुल हो उठा। उसके जीवन-नाटकका यह तीसरा पट-परिवर्तन हुआ।

इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें किया है—

खुलि गईं आँखैं अभिलाषैं रूप माधुरी कौं चाखैं रसरंग औ उमंग अंग न्यारियै।
बीन लै बजाई गाई विपिन निकुंज क्रीड़ा भयो सुख पुंज जापै कोटि विषै वारियै॥
बीति गई राति प्रात चले आप आप कों जू हिये वही जाप दृग नीरि भरि डारियै।
सोमगिरि नाम अभिराम गुरु कियो आनि सकै को बखानि लाल भुवन निहारियै॥ १६९॥
रहे सो बरस रस सागर मगन भये नये नये चोजके श्लोक पढ़ि जीजिये।
चले वृन्दावन मन कहै कब देखौं जाय आय मग मांझ एक ठौर मति भीजिये॥
पर्‍यो बड़ो सोर दृगकोर कै न चाहैं काहू तहां सर तिया न्हाति देखि आंखैं रीझिये।
लगे वाके पाछे कांछे कांछकी न सुधि कछू गई घर आछे रहे द्वार तन छीजिये॥ १७०॥
आयो वाको पति द्वार देखै भागवत ठाढ़े बड़े भागवत पूछी वधू सों जनाइयें।
कही जू पधारौ पाँव धारो गृह पावनकों पांवन पखारौं जल ढारौं सीस भाइयें॥
चले भौन मांझ मन आरति मिटायबेकौं गायवेकौं जोई रीति सोई कें बताइयें।
नारिसे कह्यौ है तू सिंगार करि सेवा कीजै लीजैयौं सुहाग जामें बेगि प्रभु पाइयें॥ १७१॥
चलीये सिंगार करि थार मैं प्रसाद लैके ऊँची चित्रसारी जहाँ बैठै अनुरागी हैं।
झनक मनक जाइ जोरि कर ठाढ़ी रही गही मति देखि-देखि नून वृत्ति भागी हैं॥
कही युगसूई ल्यावो, ल्याई, दई, लई, हाथ, फोरि डारी आंखैं अहो बड़ी ये अभागी हैं।
गई पति स्वास भरत न बोलि आवै बोली दुखपाय आय पांय परे रागी हैं॥ १७२॥

किये अपराध हम साधु कौं दुखायौं अहो बड़े तुम साधु हम नाम साधु धर्‍यो है।
रहौ अजू सेवा करौं करी तुम सेवा ऐसी जैसी नहीं काहू मांझ मेरौ मन भर्‍यो है॥
चले सुख पाय दृगभूतसे छुटाइ दिये हिये ही की आंखिन सों अबै काम पर्‍यो है।
बैठे बन मध्य जाइ भूखे जानि आप आइ भोजन कराइ चलौ छाया दिन ढर्‍यो है॥ १७३॥

(ग) बिल्वमंगलपर भगवान्‌की कृपा

परम प्रियतम श्रीकृष्णके वियोगकी दारुण व्यथासे उसकी फूटी आँखोंने चौबीसों घण्टे आँसुओंकी झड़ी लगा दी। न भूखका पता है न प्यासका, न सोनेका ज्ञान है और न जगनेका। 'कृष्ण-कृष्ण' की पुकारसे दिशाओंको गुँजाता हुआ बिल्वमंगल जंगल-जंगल और गाँव-गाँवमें घूम रहा है! ऐसी दशामें प्रेममय श्रीकृष्ण कैसे निश्चिन्त रह सकते हैं। एक छोटे-से गोप-बालकके वेषमें भगवान् बिल्वमंगलके पास आकर अपनी मुनि-मनमोहिनी मधुर वाणीसे बोले,—'सूरदासजी! आपको बड़ी भूख लगी होगी, मैं कुछ मिठाई लाया हूँ, जल भी लाया हूँ; आप इसे ग्रहण कीजिये।' बिल्वमंगलके प्राण तो बालकके उस मधुर स्वरसे ही मोहे जा चुके थे, उसके हाथका दुर्लभ प्रसाद पाकर तो उसका हृदय हर्षके हिलोरोंसे उछल उठा! बिल्वमंगलने बालकसे पूछा, 'भैया! तुम्हारा घर कहाँ है, तुम्हारा नाम क्या है? तुम क्या करते हो?'

बालकने कहा, 'मेरा घर पास ही है, मेरा कोई खास नाम नहीं; जो मुझे जिस नामसे पुकारता है, मैं उसीसे बोलता हूँ, गौएँ चराया करता हूँ। मुझसे जो प्रेम करते हैं, मैं भी उनसे प्रेम करता हूँ।' बिल्वमंगल बालककी वीणा-विनिन्दित वाणी सुनकर विमुग्ध हो गया! बालक जाते-जाते कह गया कि 'मैं रोज आकर आपको भोजन करवा जाया करूँगा।' बिल्वमंगलने कहा, 'बड़ी अच्छी बात है; तुम रोज आया करो।'

एक दिन बालकबने उन नटवरनागरने अपनी दीवाना बना देनेवाली वाणीमें कहा, 'बाबाजी! चुपचाप क्या सोचते हो? वृन्दावन चलोगे?' वृन्दावनका नाम सुनते ही बिल्वमंगलका हृदय हरा हो गया, परंतु अपनी असमर्थता प्रकट करता हुआ बोला—'भैया! मैं अन्धा वृन्दावन कैसे जाऊँ?' बालकने कहा—'यह लो मेरी लाठी, मैं इसे पकड़े-पकड़े तुम्हारे साथ चलता हूँ!' बिल्वमंगलका मुख खिल उठा, लाठी पकड़कर भगवान् भक्तके आगे-आगे चलने लगे। थोड़ी-सी दूर जाकर बालकने कहा, 'लो! वृन्दावन आ गया, अब मैं जाता हूँ।' बिल्वमंगलने बालकका हाथ पकड़ लिया, हाथका स्पर्श होते ही सारे शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी, सात्त्विक प्रकाशसे सारे द्वार प्रकाशित हो उठे, बिल्वमंगलने दिव्य दृष्टि पायी और उसने देखा कि बालकके रूपमें साक्षात् मेरे श्यामसुन्दर ही हैं। बिल्वमंगलका शरीर रोमांचित हो गया, आँखोंसे प्रेमाश्रुओंकी अनवरत धारा बहने लगी भगवान्‌का हाथ उसने और भी जोरसे पकड़ लिया और कहा—'अब पहचान लिया है, बहुत दिनोंके बाद पकड़ सका हूँ। प्रभु! अब नहीं छोड़नेका!' भगवान्‌ने कहा, 'छोड़ते हो कि नहीं?' बिल्वमंगलने कहा, 'नहीं, कभी नहीं, त्रिकालमें भी नहीं।'

भगवान्‌ने जोरसे झटका देकर हाथ छुड़ा लिया। हाथ छुड़ाते ही बिल्वमंगलने कहा—जाते हो? पर स्मरण रखो—

हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानि कै मोहि।
हिरदै तें जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि॥

भगवान्‌ने बिल्वमंगलकी आँखोंपर अपना कोमल करकमल फिराया, उसकी आँखें खुल गयीं। नेत्रोंसे प्रत्यक्ष भगवान्‌को देखकर—उनकी भुवनमोहिनी अनूप रूपराशिके दर्शन पाकर बिल्वमंगल अपने आपको सँभाल नहीं सका। वह चरणोंमें गिर पड़ा और प्रेमाश्रुओंसे प्रभुके पावन चरणकमलोंको धोने लगा।

इस भावको प्रियादासजी इस प्रकार कहते हैं—

चले लै गहाइ कर छाया घन तरुतर चाहत छुड़ायो हाथ छोड़ैं कैसे? नीको है।
ज्यों ज्यों बल करैं त्यों त्यों तजत न एऊ अरे लियोई छुटाइ गह्यो गाढ़ो रूपहीको है॥
ऐसे ही करत वृन्दावन घन आइ लियो पियो चाहैं रस सब जग लाग्यो फीको है।
भई उतकण्ठा भारी आये श्रीबिहारीलाल मुरली बजाइकै सुकियो भायो जीको है॥ १७४॥

(घ) बिल्वमंगल और चिन्तामणिका सौभाग्य

भगवान्ने उठाकर उसे अपनी छातीसे लगा लिया। भक्त और भगवान्के मधुर मिलनसे समस्त जगत्में मधुरता छा गयी। देवता पुष्पवृष्टि करने लगे। सन्त—भक्तोंके दल नाचने लगे। हरिनामकी पवित्र ध्वनिसे आकाश परिपूर्ण हो गया। भक्त और भगवान् दोनों धन्य हुए। वेश्या चिन्तामणि, गृहस्थ और उनकी पत्नी भी वहाँ आ गयीं, भक्तके प्रभावसे भगवान्ने उन सबको अपना दिव्य दर्शन और दूध-भातका प्रसाद देकर कृतार्थ किया। धन्य बिल्वमंगल! धन्य चिन्तामणि! बिल्वमंगलने चिन्तामणिको अपना गुरु ही माना और अपने ग्रन्थ 'कृष्ण-कर्णामृत' का मंगलाचरण 'चिन्तामणिर्जयति'से किया।

बिल्वमंगल जीवनभर भक्तिका प्रचार करके भगवान्की महिमा बढ़ाते रहे और अन्तमें गोलोकधाम पधारे।

इस वृत्तान्तका प्रियादासजीने अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

खुलि गये नैंन ज्यौं कमल रवि उदै भये देखि रूपराशि बाढ़ी कोटि गुनी प्यास है।
मुरली मधुरसुर राख्यो मदभरि मनो ढरि आयो कानन मैं आनन मैं भास है॥
मानिकै प्रताप चिन्तामनि मन मांझ भई 'चिन्तामनि जैति' आदि बोले रसरास है।
'करनामृत' ग्रन्थ हृदय ग्रन्थिको विदारि डारै बांधै रस ग्रन्थ पन्थ युगल प्रकास है॥ १७५॥
चिन्तामनि सुनी वनमांझ रूप देख्यौ लाल ह्वै गई निहाल आई नेह नातो जानिकै।
उठि बहु मान कियौ दियौ दूध भात दोना दै पठावैं नित हरि हितू जन मानिकै॥
लियौ कैसे जाय तुम्हें भायसों दियो जो प्रभु लैहौं नाथ हाथसौं जो देहैं सनमानिकै।
बैठे दोऊ जन कोऊ पावैं नहीं एक कन रीझे श्याम घन दीनो दूसरो हू आनिकै॥ १७६॥

श्रीविष्णुपुरीजी

भगवत धर्म उतंग आन धर्म आन न देखा।
पीतर पटतर बिगत निकष ज्यों कुंदन रेखा॥
कृष्न कृपा कहि बेलि फलित सतसंग दिखायो।
कोटि ग्रंथ को अर्थ तेरह बिरचन में गायो॥
महा समुद्र भागवत तें भक्ति रतन राजी रची।
कलि जीव जँजाली कारने बिष्णुपुरी बड़ि निधि सँची॥ ४७॥

श्रीविष्णुपुरीजीने कलियुगके प्रपंची जीवोंके कल्याणके लिये बड़े भारी खजानेको (भक्तिको) इकट्ठा किया। उन्होंने वैष्णवधर्मको ही सर्वश्रेष्ठ माना। अन्य अवैदिक धर्मोंकी ओर देखा भी नहीं। जिस प्रकार कसौटीपर सोनेकी रेखाके सामने पीतलकी रेखा चमकती ही नहीं है, उसी प्रकार उन्होंने अपनी बुद्धिकी कसौटीपर वैष्णवधर्मको कसकर सच्चा-खरा पाया और अन्य धर्मोंको तुच्छ देखा। आपने संतसंगको श्रीकृष्णकी

कृपारूपी लताका फल बताया। करोड़ों ग्रन्थोंका तात्पर्य (भक्ति) केवल तेरह विरचनों (अध्यायों)-में गाया। श्रीमद्भागवतरूपी महासमुद्रसे रत्नरूपी श्लोकोंको निकालकर 'भक्तिरत्नावली' की रचना की॥ ४७॥

श्रीविष्णुपुरी (स्वामी)-जीका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीविष्णुपुरीजी परमहंसकोटिके संन्यासी थे और तिरहुतके रहनेवाले थे। ये बड़े ही प्रेमी भक्त तथा विद्वान् थे। इन्होंने भगवद्भक्तिरत्नावली, भागवतामृत, हरिभक्ति-कल्पलता और वाक्यविवरण—ये चार ग्रन्थ लिखे थे।

कहा जाता है कि महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव और विष्णुपुरीजी एक बार काशीमें मिले थे। जब चैतन्य महाप्रभु वृन्दावनसे पुरीको जा रहे थे, उस समय दोनों ही एक-दूसरेके प्रति बड़े आकर्षित हुए। एक बार विष्णुपुरीके एक शिष्य काशीसे जगन्नाथपुरी गये और वहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभुसे मिलकर पूछा कि 'आपको विष्णुपुरीके लिये कोई सन्देशा भेजना हो अथवा उनसे कोई प्रार्थना करनी हो तो कृपाकर बताइये।' तब श्रीचैतन्यदेवने सभी वैष्णवोंके सामने उस शिष्यके द्वारा विष्णुपुरीको यह कहला भेजा कि 'आप हमारे लिये एक सुन्दर रत्नावली भेजिये।'

श्रीचैतन्य महाप्रभु-जैसे महान् त्यागीके मुँहसे इस प्रकारके शब्द सुनकर उनके साथियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, परंतु उन्हें डरके मारे कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ। कुछ दिन बीत जानेपर विष्णुपुरीका वही शिष्य फिर जगन्नाथपुरी आया और महाप्रभुके हाथमें एक पुस्तक देकर बोला कि 'गुरुदेवने आपके आदेशानुसार यह रत्नावली आपकी सेवामें भेजी है।' यह सुनकर महाप्रभुके साथियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने महाप्रभुके आशयको न समझ सकनेपर बड़ा पश्चात्ताप किया। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने उस रत्नावलीको भगवान् श्रीनीलाचलनाथके चरणोंमें रख दिया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

जगन्नाथ क्षेत्र मांझ बैठे महा प्रभूजू वै चहूँ ओर भक्त भूप भीर अति छाई है।
बोले विष्णुपुरी पुरीकाशी मध्य रहैं जाते जानियत मोक्ष चाह नीकी मन आई है॥
लिखी प्रभु चीठी 'आपु मणिगण माला' एक दीजिये पठाइ मोहिं लागती सुहाई है।
जानि लई बात निधि भागवत रत्नदाम दई पठै आदि मुक्ति खोदिकै बहाई है॥ १७७॥

श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके अनुयायी सन्तगण

नाम तिलोचन सिष्य सूर ससि सदृस उजागर।
गिरा गंग उनहारि काब्य रचना प्रेमाकर॥
आचारज हरिदास अतुल बल आनँद दायन।
तेहिं मारग बल्लभ्भ बिदित पृथु पधति परायन॥
नवधा प्रधान सेवा सुदृढ़ मन बच क्रम हरि चरन रति।
बिष्णुस्वामि सँप्रदाइ दृढ़ ग्यानदेव गंभीर मति॥ ४८॥

श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायके अनुयायी सुदृढ़ विचार एवं गम्भीर मतिवाले श्रीज्ञानदेवजी हुए। श्रीनामदेवजी और श्रीत्रिलोचनजी उनके शिष्य थे, जो सूर्य और चन्द्रके समान भक्तजगत्को प्रकाशित करनेवाले थे। श्रीज्ञानदेवजीकी वाणी गंगाजीके समान पवित्र थी। उनकी काव्यरचना (गीताकी टीका ज्ञानेश्वरी एवं अभंगादि) तो मानो भगवत्प्रेमकी खानि थी। आचार्यों तथा हरिभक्तोंका आपमें अपार बल था। आप सभीको आनन्दित करनेवाले थे। श्रीपृथुजीकी अर्चन-पद्धतिके अनुसार उपासना करनेवाले परम प्रसिद्ध

श्रीवल्लभाचार्यजी इसी सम्प्रदायमें हुए। वे नवधाभक्तिको प्रधान मानकर सुदृढ़ भावसे भगवत्सेवा करते थे। उन्हें मन, वाणी और कर्मसे भगवान्‌के चरणोंमें प्रीति थी॥ ४८॥

श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके इन सन्तोंका पावन चरित इस प्रकार है—

श्रीज्ञानदेवजी

श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायके अनुयायी अति ही गम्भीर बुद्धिवाले श्रीज्ञानदेवजी नामक सन्त थे। इनके पिताजीने गृहस्थाश्रमको त्यागकर संन्यास ले लिया और श्रीगुरुदेवसे झूठ बोल दिया कि मेरे स्त्री नहीं है, मैं गुरु करना चाहता हूँ। बादमें स्त्रीने संन्यासी होनेकी बात सुनी, तब वह आयी और उसने उनके गुरुसे सब बात कही। तब गुरुजीने जाना कि इसने मिथ्या बोलकर मुझसे संन्यास लिया है। स्त्रीने कहा कि प्रभो! आप इनका हाथ पकड़कर मेरे साथ कर दीजिये। इस प्रकार वह उन्हें घर ले आयी। इससे कुटुम्बी लोग अत्यन्त रुष्ट हुए और इन्हें उन लोगोंने जाति-पाँतिसे बाहर निकाल दिया। अब ये समाजसे अलग रहने लगे, परंतु इनके मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं था; क्योंकि इन्होंने गुरुकी आज्ञासे पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया था।

श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीज्ञानदेवजीके माता-पिताका परिचय देते हुए एक कवित्तमें कहते हैं—

विष्णु स्वामि सम्प्रदाई बड़ोई गम्भीर मति ज्ञानदेव नाम ताकी बात सुनि लीजियै।
पिता गृह त्यागि आइ ग्रहण संन्यास कियो दियो बोलि झूठ तिया नहीं गुरु कीजियै॥
आई सुनि बधू पांछें कह्यो जान्यो मिथ्यावाद भुजनि पकरि मेरे संग करि दीजियै।
ल्याई सो लिवाइ जाति अति ही रिसाइ दियो पंक्ति मैं ते डारि रहैं दूरि नहीं छीजियै॥ १७८॥

संन्यास-आश्रम त्यागकर घरमें रहनेपर उनके तीन पुत्र हुए, जिनमें बड़े ज्ञानदेवजी थे। इनकी श्रीकृष्ण भगवान्‌में सच्ची प्रीति थी। जब वे पढ़नेके लिये गुरुकुलमें गये तो उनको किसीने वेद नहीं पढ़ाया। सब यही कहने लगे कि तुम संन्यासीके पुत्र हो, तुम्हारी जाति नष्ट हो गयी। फिर ब्राह्मण विद्वानोंकी एक सभा हुई। उसमें ज्ञानदेवजीने प्रश्न किया कि आपके मनमें क्या विचार है, मैं वेद पढ़ सकता हूँ या नहीं? पण्डितोंने कहा—तुम्हारा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है। अतः तुम्हें वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है। यह सुनकर ज्ञानदेवजीने समीपके एक भैंसेको देखकर कहा कि वेद तो यह भैंसा भी बिना किसीके पढ़ाये पढ़ सकता है। ज्ञानदेवजीने आज्ञा दी और भैंसा वेदपाठ करने लगा। ज्ञानदेवजीने यह भक्तिका प्रताप दिखाया, जिससे उन पण्डितोंमें भी भक्ति प्राप्त करनेकी रुचि जाग गयी। उनका अहंकार दूर हो गया। उन्होंने आकर श्रीज्ञानदेवजीके चरण पकड़ लिये। भक्तोंका-सा सरल-स्वभाव अपनाकर उन्होंने दीनता ग्रहण की।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

भये पुत्र तीन तामें मुख्य बड़ो ज्ञानदेव जाकी कृष्णदेव जूसों हिये की सचाई है।
वेद न पढ़ावे कोऊ कहैं सब जाति गई लई करि सभा अहो कहा मन आई है॥
बिनस्यो ब्रह्मत्व कही श्रुति अधिकार नाहिं बोल्यों यों निहारि पढ़ै भैंसा लै दिखाई है।
देखि भक्ति भाव चाव भयो आनि गहैं पांव कियोई सुभाव वही गही दीनताई है॥ १७९॥

श्रीत्रिलोचनजी

भक्तवर श्रीत्रिलोचनजी वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए। ये बड़े ही वैष्णव भक्त थे, परंतु वे जैसी सेवा करना चाहते थे, वैसी बन नहीं पाती थी; क्योंकि उनकी पत्नीके अतिरिक्त घरमें और कोई सेवामें सहयोग देनेवाला न था। उनके मनमें एक यह बड़ी अभिलाषा थी कि कोई एक ऐसा नौकर मिल जाय जो साधुओंके मनकी बात जानकर अच्छी प्रकारसे उनकी सेवा किया करे।

अपने भक्तका मनोरथ पूरा करनेके लिये एक दिन

स्वयं भगवान्‌ने ही नौकरका रूप धारण किया और श्रीत्रिलोचनजीके द्वारपर आये। श्रीत्रिलोचनजीने घरसे निकलते ही उन्हें देखा और इनसे पूछा—अजी ! आप कहाँसे पधारे हैं, मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि आपके घरमें माता-पिता आदि कोई भी नहीं हैं। नौकररूपधारी भगवान्‌ने कहा—आप सच कहते हैं मेरे पिता-माता आदि कोई भी नहीं है। त्रिलोचनजीने कहा—क्या नौकरी करोगे, मुझे सन्तोंकी सेवाके लिये एक नौकर चाहिये। तब आपने कहा कि यदि मेरे स्वभावसे स्वामीका स्वभाव मिल जाय तो मैं सेवा-टहल कर सकता हूँ। श्रीत्रिलोचनजीने पूछा—आपके स्वभावसे औरोंका मेल क्यों नहीं हो पाता है ? तब आपने कहा कि मैं पाँच सात सेर अन्न नित्य खाता हूँ, इसीसे लोग नाराज हो जाते हैं और मुझे रख नहीं पाते हैं।

उस नौकरने फिर कहा—चार वर्णोंकी रीतियोंका मुझे ज्ञान है। सभी कार्योंको मैं अच्छी तरहसे मन लगाकर करता हूँ। उनमें किसीसे सहायता भी नहीं लेना चाहता हूँ। रही भक्तोंकी सेवा-टहल—उसे तो करते-करते मेरा सब जीवन ही बीता है। 'अन्तर्यामी' मेरा नाम है। मैं तो अब आपका दास हो गया। भक्त त्रिलोचनने कहा—इच्छानुसार खूब भर-पेट खाओ, किसी प्रकारका संकोच मत करो।

इसके बाद भक्त त्रिलोचनजीने अपनी स्त्रीसे कहा—तुम इस अन्तर्यामीको भोजन देते समय थोड़ी-सी भी खिन्नता मनमें मत लाना। नहीं तो यह कहीं भाग जायगा। फिर ऐसा नौकर कभी न मिलेगा। जो कुछ यह खाये, वही इसे खिलाओ। यह नित्यप्रति सन्तसेवा करेगा। श्रीत्रिलोचनजीके यहाँ अनेक साधु-सन्त नित्यप्रति आते ही रहते थे। सन्तसेवा अन्तर्यामीको हृदयसे प्रिय थी। सन्तोंकी इच्छाके अनुसार रुचिपूर्वक अन्तर्यामी उनके पैर दबाते और सब प्रकारकी सेवा करते। इस प्रकार सेवा करते-करते तेरह महीने बीत गये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीत्रिलोचनजीकी सन्त-सेवाके प्रति इस अनन्य निष्ठाका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

भये उभै शिष्य नामदेव श्रीतिलोचन जू सूर शशि नाईं कियो जग में प्रकाश है।
नामा की तो बात कहि आये सुनो दूसरे की सुनेई बनत भक्त कथा रसरास है॥
उपजे बनिक कुल सेवैं कुल अच्युत कों ऐपैं नहिं बनै एक तिया रहै पास है।
टहलू न कोई साधु मनही की जानि लेत ये ही अभिलाष सदा दासनिको दास है॥ १८०॥
आये प्रभु टहलुवा रूपधरि द्वारपर फटी एक कामरी पन्हैंया टूटी पांय है।
निकसत पूछे अहो! कहां ते पधारे आप, बाप महतारी और देखिये न गाय है॥
बाप महतारी मेरे कोऊ नाहिं सांची कहौं, गहौं मैं टहल जो पै मिलत सुभाय हैं।
अनमिल बात कौन? दीजियै जनाय बहू, पाऊँ पांच सात सेर उठत रिसाय हैं॥ १८१॥
चारि हू बरन की जु रीति सब मेरे हाथ साथ हू न चाहौं करौं नीके मन लाइ कै।
भक्तनकी सेवा सो तो करत जनम गयो नयौ कछु नाहिं डारे बरस बिताइ कै॥
अंत्रजामी नाम मेरो चेरो भयो तेरो हौं तो बोल्यो भक्त भावै खावो निशंक अघाइ कै।
कामरी पन्हैयां सब नई करि दई और मीड़ि कै न्हवायो तन मैल कौं छुटाइ कै॥ १८२॥
बोल्यो घर दासी सों तू रहै याकी दासी होइ देखियो उदासी देत ऐसो नहीं पावनौ।
खाय सो खवावो सुखपावो नित नित कियै जियै जग माहिं जौलौं मिलि गुन गावनौ॥
आवत अनेक साधु भावत टहल हिये लिये चाव दाबैं पांव सबनि लड़ावनौ।
ऐसे ही करत मास तेरह बितीत भये गये उठि आपु नेकु बात कौ चलावनौ॥ १८३॥

श्रीत्रिलोचनजीकी स्त्री एक दिन पड़ोसिनके घर गयी, तब उसने पूछा कि तुम इतनी कमजोर एवं उदास क्यों हो गयी हो ? भक्तजीकी स्त्रीने उत्तर दिया कि क्या कहूँ ? मेरे पतिदेव कहींसे एक नौकर लिवाकर लाये हैं,

वह ऐसा खोटा है कि बहुत-सा भोजन करनेपर भी उसका पेट नहीं भरता है। इसलिये मुझे अधिक आटा पीसना पड़ता है, उसीसे मेरा शरीर अति दुर्बल हो गया है। देखो, बहन! मैंने जो यह बात तुमसे कही है, उसे तुम किसी दूसरेसे मत कहना। इसे अपने मनमें ही रखना। यदि कहीं उसने सुन लिया तो सबेरे ही चला जायगा। वे तो अन्तर्यामी थे, उन्होंने सुन लिया और तुरंत उठकर चले गये।

अन्तर्यामीके चले जानेके बाद तीन दिन बीत जानेपर भी श्रीत्रिलोचनजीने अन्न-जल नहीं लिया। वे दु:खी होकर स्त्रीसे कहने लगे—हाय! अब ऐसा चतुर सेवक मुझे कहाँ मिलेगा? तू तो बड़ी अभागिनी है, ऐसी बात क्यों कही? वह सन्त-सेवाका बड़ा प्रेमी था। किस उपायसे अब उसे लाऊँ? जब श्रीत्रिलोचनजी इस प्रकार अपने मनमें पछताने लगे। तब आकाशवाणी हुई कि तुम अन्न-प्रसाद पाओ और जल पियो। सन्तोंके प्रति जो तुम्हारी प्रीतिकी रीति है, वह मुझे अति प्रिय लगी; इसीसे तुम्हारा सेवक बनकर सन्तसेवा की। मैं तुम्हारे अधीन तुम्हारा दास हूँ और सदा तुम्हारे घरमें ही लीन रहता हूँ। यदि तुम कहो तो पहलेकी तरह मैं तुम्हारे यहाँ आकर रहूँ और सदा सेवा करूँ।

आकाशवाणी सुनकर श्रीत्रिलोचनजीने जब रहस्य जाना तो उन्हें और अधिक कष्ट हुआ, मैंने भगवान्‌को अपना दास करके माना। प्रभु मेरे घरमें आये, इतने दिन रहे, पर मैं ऐसा मूढ़ था कि उनको नहीं जान सका। अब वे किसी प्रकार आ जायँ तो मैं दौड़कर उनके पैरोंमें लिपट जाऊँ। इस प्रकार त्रिलोचनजी अन्तर्यामीके ध्यानमें सदा मगन रहने लगे।

श्रीप्रियादासजीने इस वृत्तान्तका वर्णन निम्न कवित्तोंमें किया है—

एक दिन गई ही परोसिनके भक्तबधू पूछि लई बात अहो काहेको मलीन है।
बोली मुसुकाय वे टहलुवा लिवाय ल्याये क्योंहू न अघाय खोट पीसि तनछीन है॥
काहू सौं न कहो यह गहौ मन मांझ एरी तेरी सौं सुनैगो जोपै जात रहे भीन है।
सुनि लई यही नेकु गये उठि हुती टेक दुखहूं अनेक जैसे जल बिन मीन है॥ १८४॥
बीते दिन तीन अन्नजल करि हीन भये ऐसो सो प्रवीन अहो फेरि कहाँ पाइये।
बड़ी तू अभागी बात काहे को कहन लागी रागी साधु सेवा मैं जु कैसे करि ल्याइये॥
भई नभबानी तुम खावो पीवो पानी यह मैं ही मति ठानी मोकौं प्रीति रीति भाइये।
मैं तौ हौं अधीन तेरे घर ही में रहौं लीन जो पै कहौ सदा सेवा करिबे को आइये॥ १८५॥
कीने हरिदास मैं तो दास हू न भयौं नेकु बड़ो उपहास मुख जग में दिखाइयै।
कहैं जन भक्त कहा भक्ति हम करी कहौ, अहो अज्ञताई रीति मन में न आइयै॥
उनकी तो बात बनि आवै सब उनही सों गुन ही कौं लेत मेरे औगुन छिपाइयै।
आये घर मांझ तऊ मूढ़ मैं न जानि सक्यों आवैं अब क्यों हूं धाय पांय लपटाइयै॥ १८६॥

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी

लगभग पाँच सौ साल पहलेकी बात है, संवत् १५३५ वि० में दक्षिण भारतसे एक तैलंग ब्राह्मण लक्ष्मणभट्ट तीर्थयात्राके लिये उत्तर भारतका भ्रमण कर रहे थे। वैशाख मास था, वे उस समय अपनी पत्नी इल्लम्मागारुके सहित काशीमें थे। अचानक सुना गया कि काशीपर यवनोंका आक्रमण होनेवाला है; अत: वे दक्षिणकी ओर चल पड़े। रास्तेमें चम्पारण्य नामक वनमें इल्लम्माने पुत्र-रत्नको जन्म दिया। वैशाख कृष्ण एकादशी थी, माताने महानदीके निर्जन तटपर नवजात बालकको छोड़ दिया। पर माताकी ममताने करवट ली। लक्ष्मण और इल्लम्मा बालकको लेकर काशी लौट आये, हनुमानघाटपर रहने लगे। बालक अद्भुत प्रतिभा और सौन्दर्यसे सम्पन्न होनेके

कारण सबका प्रियपात्र था। बाल्यावस्थामें लोगोंने उसे 'बालसरस्वती वाक्पति' कहना आरम्भ किया। विष्णुचित्, तिरुम्मल और माधव यतीन्द्रकी शिक्षासे बाल्यावस्थामें ही वल्लभ समस्त वैष्णव-शास्त्रोंमें पारंगत हो गये, उनमें भगवद्भक्तिका उदय होने लगा; तुलसीमाला, एकादशी, विष्णुव्रत और भगवदाराधनमें उनका समय बीतने लगा; तेरह सालकी ही अवस्थामें वे वेद, वेदांग, पुराण, धर्मशास्त्र आदिमें पूर्ण निष्णात हो गये।

धीरे-धीरे उनकी कीर्ति फैलने लगी, लोग उनकी भगवद्भक्तिकी सराहना करने लगे। श्रीवल्लभाचार्यके चरित्र-विकासपर विष्णुस्वामी-सम्प्रदायके भक्ति-सिद्धान्तोंका अधिक मात्रामें प्रभाव पड़ा था। उन्होंने पुष्टिमार्गकी संस्थापना की तथा प्रेमलक्षणा भक्तिपर विशेष जोर दिया। पुष्टि भगवदनुग्रह या कृपाका प्रतीक है। उन्होंने वात्सल्यरससे ओतप्रोत भक्ति-पद्धतिकी सीख दी। भगवान्‌के यश-लीला-गानको वे अपने पुष्टिमार्गका श्रेय मानते थे।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस पुष्टिमार्गका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

हिये में स्वरूप सेवा करि अनुराग भरे ढरे और जीवनि की जीवनि को दीजिये।
सोई लै प्रकास घर-घर में विलास कियो अति ही हुलास फल नैननि को लीजिये॥
चातुरी अवधि नेकु आतुरी न होत किहूँ चहूँ दिसि नाना राग भोग सुख कीजिये।
बल्लभजू नाम लियो पृथु अभिराम रीति गोकुल में धाम जानि सुन मन रीझिये॥ १८७॥

श्रीवल्लभके जीवनका अधिकांश समय व्रजमें बीता, वे अड़ैलसे व्रज आये। अड़ैलसे व्रज आते समय उन्होंने गऊघाटपर महाकवि सूरदासको दीक्षित किया, दो या तीन दिनों बाद उसी यात्रामें विश्रामघाटपर कृष्णदास अधिकारीको पुष्टिमार्गमें सम्मिलितकर ब्रह्म-सम्बन्ध दिया। कुम्भनदास भी उनके शिष्य हुए। गोवर्धनमें एक मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीनाथजीकी मूर्ति प्रतिष्ठित की। उनके चौरासी शिष्योंमें प्रमुख सूर, कुम्भन, कृष्णदास और परमानन्द श्रीनाथजीकी विधिवत् सेवा और कीर्तन आदि करने लगे। उन्होंने वैष्णवोंको गुरुतत्त्व सुनाया, लीला-भेद बताया।

एक बार एक सीधे-साधे सन्त दर्शन करनेके लिये गोकुलको गये। वहाँ जाकर गोष्ठमें गायोंके झुण्डका, गोपालका तथा मन्दिरोंमें बालकृष्णकी सेवा-पूजा और उत्सवोंका दर्शन करके प्रेममें मग्न हो गये। फिर उन सन्तने एक छोंकरके पेड़पर अपना ठाकुर-बटुवा लटका दिया और जाकर श्रीवल्लभाचार्यजीके दर्शन किये जिससे उन्हें बड़ा भारी सुख हुआ। फिर आकर देखा तो ठाकुर-बटुवा नहीं था। तब वे सन्त फिर श्रीवल्लभाचार्यजीके निकट गये और बटुवा न मिलनेकी बात सुनायी। सन्तको चिन्तित एवं उदास देखकर आचार्यने कहा कि वहीं जाकर देखिये। सन्तने आकर देखा तो छोंकरके पेड़पर अनेकों बटुवे लटके हैं। उनका होश-हवास उड़ गया, फिर आचार्यके पास आकर बोले—प्रभो! वहाँ तो अनेक बटुवे हैं। इन्होंने कहा—आप अपना बटुवा पहचान लीजिये, आप तो नित्य सेवा-पूजा करते हैं, फिर भी अपने ठाकुरजीको नहीं पहचान सकते हैं।

इस घटनासे वे सन्त समझ गये कि यह सब श्रीवल्लभाचार्यजीका ही प्रभाव है, उनकी आँखें खुल गयीं। अपने ठाकुरको पहचाननेकी अभिलाषा करने लगे। उन्होंने आचार्यसे प्रार्थना की कि मुझे वह उपाय बता दीजिये, जिससे मैं अपने सेव्य प्रभुके रूपको प्राप्त कर सकूँ। आचार्यने कहा कि हृदयसे प्रेम करो, भाव-भक्तिपूर्वक सेवा किया करो; क्योंकि यह प्रेममार्ग अतिविचित्र और सुन्दर है। आप वहीं छोंकरके वृक्षपर जाकर देखो। इस बार आकर उन्होंने देखा तो केवल अपने ही ठाकुरजी दिखायी पड़े, तब तो ये अति आनन्दित हुए। उन्होंने ठाकुरजीको हृदयसे लगा लिया। उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। आचार्यकी कृपासे उन्होंने भक्तिके स्वरूपको जान लिया।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें करते हुए कहते हैं—

गोकुलके देखिबे कौं गयौ एक साधु सूधो गोकुल मगन भयो रीति कछु न्यारिये।
छोंकरके वृक्षपर बटुवा झुलाय दियो कियो जाय दरशन सुख भयो भारिये॥
देखै आइ नाहीं प्रभु फेरि आप पास आयो चिंता सो मलीन देखि कही जा निहारिये।
वैसेई सरूप कई गई सुधि बोल्यो आनि लीजिये पिछानि कह्यो सेवा नित धारिये॥ १८८॥
खुलि गईं आंखैं अभिलाखैं पहिचानि कीजै दीजै जू बताइ मोहिं पाउँ निजरूप है।
कही जावो वाही ठौर देखो प्रेम लेखौ हिये लिये भाव सेवा करौ मारग अनूप है॥
देखिकै मगन भयो लयो उर धारि हरि नैन भरि आये जान्यो भक्तिको स्वरूप है।
निसि दिन लग्यौ पग्यौ जग्यौ भाग पूरन हो पूरन चमत्कार कृपा अनुरूप है॥ १८९॥

श्रीवल्लभाचार्य महान् भक्त होनेके साथ ही दर्शनशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्रपर बड़ा सुन्दर 'अणुभाष्य' लिखा है और श्रीभागवतके दशम स्कन्ध तथा कुछ अन्य स्कन्धोंपर सुबोधिनी टीका लिखी है। श्रीमद्भागवतको वे प्रस्थानत्रयीके अन्तर्गत मानते थे। उनके परमधाम पधारनेके विषयमें एक घटना प्रसिद्ध है। ये अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें अड़ैलसे लौटकर प्रयाग होते हुए काशी आ गये थे। एक दिन हनुमानघाटपर गंगास्नान करने गये। जहाँपर खड़े होकर आप स्नान कर रहे थे, वहाँसे एक उज्ज्वल ज्योति-शिखा उठी और आप सदेह ऊपर उठने लगे और लोगोंके देखते-ही-देखते आकाशमें लीन हो गये। इस प्रकार वि० सं० १५८७ आषाढ़ शुक्ला ३ को ५२ वर्षकी अवस्थामें आपने अलौकिक रीतिसे इहलीला संवरण करके गोलोकको प्रयाण किया।

कलियुगमें प्रेमकी प्रधानता प्रकट करनेवाले भक्त

भक्तदास इक भूप श्रवन सीता हर कीनो।
मार मार करि खड़्ग बाजि सागर मैं दीनो॥
नरसिंह को अनुकरन होइ हिरनाकुस मार्‌यो।
वहै भयो दसरत्थ राम बिछुरत तन छार्‌यो॥
कृष्नदास बाँधे सुने तिहि छन दीयो प्रान।
संत साखि जानैं सबै प्रगट प्रेम कलिजुग प्रधान॥ ४९॥

सभी लोग जानते हैं और सन्तजन इस बातके साक्षी हैं कि कलियुगमें केवल प्रेमसे ही भगवान् प्रकट होते हैं, अतः प्रेम ही प्रधान है। भक्तोंका दास कुलशेखर नामका एक राजा था। उसने रामायणकी कथामें रावणद्वारा श्रीसीताजीका हरण सुना। सुनते ही उसे आवेश आ गया और वह तुरन्त हाथमें तलवार लेकर घोड़ेपर चढ़कर 'मारो-मारो' चिल्लाता हुआ दौड़ा और घोड़ेको समुद्रमें कुदा दिया। दूसरे एक प्रेमी भक्तने नृसिंहलीलाके अनुकरणमें नृसिंह बनकर हिरण्यकशिपु बने हुए व्यक्तिको सचमुच मार डाला। पुनः रामलीलामें उसी भक्तने दशरथ बनकर श्रीरामजीके वियोगमें अपने शरीरका त्याग कर दिया। श्रीरतिवन्तीबाईने श्रीभागवतकी कथामें सुना कि माता यशोदाने रस्सीसे श्रीकृष्णको बाँध दिया। सुनते ही अपने प्राण त्याग दिये। इन भक्तिचरित्रोंसे कलियुगमें प्रेमकी प्रधानता प्रकट एवं सिद्ध हुई॥ ४९॥

इन भगवत्प्रेमी भक्तोंका पावन चरित्र संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीकुलशेखरजी

श्रीकुलशेखरजी कोल्लिनगर (केरल)-के राजा थे। ये भगवान्‌की कौस्तुभमणिके अवतार माने जाते हैं। राजा होनेपर भी उनकी विषयोंमें तनिक भी प्रीति नहीं थी। वे सदा भगवद्भावमें लीन रहने लगे। उनका सारा समय सत्संग, कीर्तन, भजन, ध्यान और भगवान्‌के अलौकिक चरित्रोंके श्रवणमें ही व्यतीत होता। उनके इष्टदेव श्रीराम थे और वे दास्यभावसे उनकी उपासना करते थे।

एक दिन वे बड़े प्रेमके साथ श्रीरामायणकी कथा सुन रहे थे। प्रसंग यह था कि भगवान् श्रीराम सीताजीकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको नियुक्तकर स्वयं अकेले खर-दूषणकी विपुल सेनासे युद्ध करनेके लिये उनके सामने जा रहे हैं। पण्डितजी कह रहे थे—

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धो भविष्यति॥

अर्थात् धर्मात्मा श्रीराम अकेले चौदह हजार राक्षसोंसे युद्ध करने जा रहे हैं, इस युद्धका परिणाम क्या होगा?

कुलशेखरजी कथा सुननेमें इतने तन्मय हो रहे थे कि उन्हें यह बात भूल गयी कि यहाँ रामायणकी कथा हो रही है। उन्होंने समझा कि 'भगवान् वास्तवमें खर-दूषणकी सेनाके साथ अकेले युद्ध करने जा रहे हैं।' यह बात उन्हें कैसे सह्य होती, वे तुरंत कथामेंसे उठ खड़े हुए। उन्होंने उसी समय शंख बजाकर अपनी सारी सेना एकत्र कर ली और सेनानायकको आज्ञा दी कि 'चलो, हमलोग श्रीरामकी सहायताके लिये राक्षसोंसे युद्ध करने चलें।' ज्यों ही वे वहाँसे जानेके लिये तैयार हुए, उन्होंने पण्डितजीके मुँहसे सुना कि 'श्रीरामने अकेले ही खर-दूषणसहित सारी राक्षससेनाका संहार कर दिया।' तब कुलशेखरको शान्ति मिली और उन्होंने सेनाको लौट जानेका आदेश दिया।

श्रीप्रियादासजी कुलशेखरके इस भक्तिभावका अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

सन्त साखि जानै कलिकाल में प्रगट प्रेम बड़ोई असन्त जाके भक्ति में अभाव है।
हुतो एक भूप राम रूप ततपर महा राम ही की लीला गुन सुनै करि भाव है॥
विप्र सो सुनावै सीता चोरी को न गावै हियो खरो भरि आवै वह जानत सुभाव है।
पर्‍यो द्विज दुखी निज सुवन पठाइ दियो जानै न सुनायौ भरमायौ कियो घाव है॥ १९०॥
मार-मार करि खड्‌ग निकासि लियौ दियौ घोरौ सागर मैं सो आवेस आयो है।
मारौं याहि काल दुष्ट रावन बिहाल करौं पांवन को देखौं सीता भाव दृग छायो है॥
जानकी रवन दोऊ दरशन दियो आनि बोले बिन प्रान कियौ नीच फल पायो है।
सुनि सुख भयौ गयौ शोक हृदै दारुन जो रूप को निहारि नयो फेरिकै जिवायो है॥ १९१॥

श्रीकुलशेखरजी कई वर्षोंतक श्रीरंगक्षेत्रमें रहे। उन्होंने वहाँ रहकर 'मुकुन्दमाला' नामक संस्कृतका एक बहुत सुन्दर स्तोत्र-ग्रन्थ रचा। इसके बाद ये तिरुपतिमें रहने लगे और वहाँ रहकर इन्होंने बड़े सुन्दर भक्तिरससे भरे हुए पदोंकी रचना की। इन्होंने मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या आदि कई उत्तरके तीर्थोंकी भी यात्रा की थी और श्रीकृष्ण तथा श्रीरामकी लीलाओंपर भी अनेक पद रचे।

श्रीलीलानुकरणजी एवं श्रीरतिवन्तीजी

एक बार जगन्नाथधाममें नृसिंहलीला हुई, उसमें एक प्रेमी भक्तने नृसिंहका वेश धारणकर लीलाका अनुकरण किया और आवेशमें आकर उन्होंने हिरण्यकशिपुको सचमुच ही मार डाला। कुछ लोग कहने लगे कि इसने द्वेषवश मारकर बदला चुकाया है तो कुछ लोग कहते थे कि इसने आवेशमें आकर मारा है। अन्तमें परीक्षा करनेके लिये लोगोंने कहा कि इन्हें रामलीलामें दशरथ बनाओ, तब पता लग जायगा।

रामलीलाकी तैयारी हुई। इन्हें दशरथ बनाया गया। श्रीरामजीके वन चले जानेपर उनके वियोगमें व्याकुल होकर विलाप करते-करते इन्होंने अपना शरीर त्यागकर भावको पूरा कर दिया।

श्रीरतिवन्ती नामकी एक बाई थी। वह बड़ी भक्ता थी। उसने बालकृष्णके स्वरूपमें अपनी बुद्धि लगा दी। नित्यप्रति वात्सल्यभावसे उपासना करती और कथा श्रवण करती थी। किसी कारणवश एक दिन वह कथामें नहीं गयी। अपने पुत्रको कथा सुननेके लिये भेज दिया। कथा सुनकर आनेपर पुत्रसे पूछा कि आज कौन-सी कथा हुई? पुत्रने कहा—आज तो माता यशोदाने बालकृष्णकी कमरमें रस्सी बाँधकर उसे ऊखलसे बाँध दिया, यह कथा हुई है। नवनीतसे भी कोमल कलेवरमें कड़ी रस्सी अति कष्टदायक हुई होगी, अतः बन्धन-प्रसंग सुनते ही बाईजीकी और ही दशा हो गयी। बालकृष्णके कष्टका अनुभव करके उन्होंने अपनी प्रीतिको सच्ची करके दिखा दिया और अपने शरीरको मानो न्यौछावर कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीरतिवन्तीजीके इस भगवत्प्रेमका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नीलाचन धाम तहाँ लीला अनुकर्न भयो नरसिंह रूप धरि साँचे मारि डार्‌यो है।
कोऊ कहैं द्वेष कोउ कहत आवेस तो पै करो दशरथ कियो भाव पूरो पार्‌यो है॥
हुती एक बाई कृष्णरूप सों लगाई मति कथा में न आई सुत सुनी कह्यो धार्‌यो है।
बाँधे जसुमति सुनि औरै भई गति करि दई साँची रति तन तज्यो मन वार्‌यो है॥ १९२॥

भक्तिसे भगवान्‌को वशमें करनेवाले भक्त

हौं कहा कहौं बनाइ बात सबही जग जानै।
करतैं दौना भयो स्याम सौरभ मन मानै॥
छपन भोग तैं पहिल खीच करमा कौ भावै।
सिलपिल्ले के कहत कुँअरि पै हरि चलि आवै॥
भक्तन हित सुत बिष दियो भूपनारि प्रभु राखि पति।
परसाद अवग्या जानि के पानि तज्यो एकै नृपति॥ ५०॥

श्रीनाभाजी कहते हैं कि जगन्नाथपुरीके एक राजाने अपने दाहिने हाथसे प्रसादका अपमान हुआ जानकर उसे त्याग दिया अर्थात् कटवा डाला। इस बातको मैं अपनी ओरसे बनाकर क्या कहूँ? इसे तो सारा संसार जानता है कि उस भक्त राजाके कटे हुए हाथसे दौनाका वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसके पुष्प एवं पत्रोंकी सुगन्ध श्यामसुन्दरको अत्यन्त प्रिय लगती है। श्रीजगन्नाथजीको छप्पन राजभोगसे पहले श्रीकर्माबाईकी खिचड़ी अति ही स्वादिष्ट लगती है, अतः अबतक नित्य उसका भोग लगता है। 'हे सिलपिल्ले प्रभो!'—ऐसा कहते ही दोनों कन्याओंके पास भगवान् चले आये। दो राजरानियोंने भक्तोंके लिये अपने-अपने पुत्रोंको विष दिया। प्रभुने उन रानियोंकी लज्जा रखी, उनके पुत्रोंको जीवित किया॥ ५०॥

इन भगवन्निष्ठ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

भगवत्प्रसादनिष्ठ राजा

श्रीजगन्नाथपुरीके राजाकी भगवत्प्रसादमें बड़ी ही निष्ठा थी, परंतु एक दिन राजा चौपड़ खेल रहा था, इसी बीच श्रीजगन्नाथजीके पण्डाजी प्रसाद लेकर आये। राजाके दाहिने हाथमें पासा था। अतः उसने बायें हाथसे प्रसादको छूकर उसे स्वीकार किया। इस प्रकार प्रसादका अपमान जानकर पण्डाजी रुष्ट हो गये। प्रसादको राजमहलमें न पहुँचाकर उसे वापस ले गये। चौपड़ खेलकर राजा उठे और अपने महलमें गये। वहाँ उन्होंने

नयी बात सुनी कि मेरे अपराधके कारण अब मेरे पास प्रसाद कभी नहीं आयेगा। राजाने अपना अपराध स्वीकारकर अन्न-जल त्याग दिया। उसने मनमें विचारा कि जिस दाहिने हाथने प्रसादका अपमान किया है, उसे मैं अभी काट डालूँगा, यह मेरी सच्ची प्रतिज्ञा है। ब्राह्मणोंकी सम्मति लेना उचित समझकर राजाने उन्हें बुलाकर पूछा कि यदि कोई भगवान्‌के प्रसादका अपमान करे तो चाहे वह कोई अपना प्रिय अंग ही क्यों न हो, उसका त्याग करना उचित है या नहीं। ब्राह्मणोंने उत्तर दिया कि राजन्! अपराधीका तो सर्वथा त्याग ही उचित है।

राजाने अपने मनमें हाथ कटाना निश्चित कर लिया, परंतु मेरे हाथको अब कौन काटे? यह सोचकर मौन और अत्यन्त खिन्न हो गया। राजाको उदास देखकर मन्त्रीने उदासीका कारण पूछा। राजाने कहा—नित्य रातके समय एक प्रेत आता है और वह मुझे दिखायी भी देता है। कमरेकी खिड़कीमें हाथ डालकर वह बड़ा शोर करता है। उसीके भयसे मैं दु:खी हूँ। मन्त्रीने कहा—आज मैं आपके पलँगके पास सोऊँगा और आप अपनेको दूसरी जगह छिपाकर रखिये, जब वह प्रेत झरोखेमें हाथ डालकर शोर मचायेगा, तभी मैं उसका हाथ काट दूँगा। सुनकर राजाने कहा—बहुत अच्छा! ऐसा ही करो। रात होनेपर मन्त्रीजीके पहरा देते समय राजाने अपने पलँगसे उठकर झरोखेमें हाथ डालकर शोर मचाया। मन्त्रीने उसे प्रेतका हाथ जानकर तलवारसे काट डाला।

राजाका हाथ कटा देखकर मन्त्रीजी अति लज्जित हुए और पछताते हुए कहने लगे कि मैं बड़ा मूर्ख हूँ, मैंने यह क्या कर डाला? राजाने कहा—तुम निर्दोष हो, मैं ही प्रेत था; क्योंकि मैंने प्रभुसे बिगाड़ किया था। राजाकी ऐसी प्रसादनिष्ठा देखकर अपने पण्डोंसे श्रीजगन्नाथजीने कहा कि अभी-अभी मेरा प्रसाद ले जाकर राजाको दो और उसके कटे हुए हाथको मेरे बागमें लगा दो। भगवान्‌के आज्ञानुसार पण्डे लोग प्रसादको लेकर दौड़े, उन्हें आते देखकर राजा आगे आकर मिले। दोनों हाथोंको फैलाकर प्रसाद लेते समय राजाका कटा हुआ हाथ पूरा निकल आया। जैसा था, वैसा ही हो गया। राजाने प्रसादको मस्तक और हृदयसे लगाया। भगवत्कृपाका अनुभव करके बड़ा भारी सुख हुआ। पण्डे लोग राजाका कटा हुआ वह हाथ ले आये। उसे बागमें लगा दिया गया। उससे दौनाके वृक्ष हो गये। उसके पत्र-पुष्प नित्य ही जगन्नाथजीके श्रीअंगपर चढ़ते हैं। उनकी सुगन्ध भगवान्‌को बहुत प्रिय लगती है।

श्रीप्रियादासजी पुरीनरेशकी इस प्रसादनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

प्रसादकी अवज्ञा तै तज्यो नृप कर एक करिकै विवेक सुनौं जैसे बात भई है।
खेलै भूप चौपरि कौं आयौ प्रभु भुक्त शेष दाहिने मैं पासे बाएँ छुयौ मति गई है॥
लै गये रिसायकैं फिराय महा दुखपाय उठ्यो नरदेव गृह गयो सुनी नई है।
लियो अनसन हाथ तजौं याही छन तब सांचौ मेरो पन बोलि विप्र पूछि लई है॥ १९३॥
काटै हाथ कौन मेरो? रह्यो गहि मौन यातैं पूछत सचिव कथा विथा सो विचारियै।
आवै एक प्रेत मो दिखाई नित देत निशि डारिकैं झरोखा कर शोर करै भारियै॥
सोऊँ ढिग आइ रहौं आपुकौं छिपाइ जब डारै पानि आनि तबही सुकाटि डारियै।
कही नृप भलै चौकी देत मैं घुमायो भूप डार्‍यो उठि आइ छेद न्यारो कियो वारियै॥ १९४॥
देखिकैं लजानौ कहा कियौं मैं अजानौ नृप कही प्रेत मानौं यही हरि सों बिगारियै।
कही जगन्नाथदेव लै प्रसाद जावौं उहाँ ल्यावो हाथ बोवो बाग सोई उर धारियै॥
चले तहाँ धाइ भूप आगे मिल्यो आइ हाथ निकस्यो लगाइ हियैं भयो सुख भारियै।
ल्याये कर फूल ताके भये फूल दौना के जु नितहीं चढ़त अंग गन्ध हरि प्यारियै॥ १९५॥

श्रीकर्माबाई

श्रीकर्माजी नामकी एक भगवद्भक्त देवी श्रीपुरुषोत्तमपुरीमें रहती थीं। इन्हें वात्सल्यभक्ति अत्यन्त प्रिय थी। ये प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रातःकाल स्नानादि किये बिना ही खिचड़ी तैयार करतीं और भगवान्‌को अर्पित करतीं। प्रेमके वशमें रहनेवाले श्रीजगन्नाथजी भी प्रतिदिन सुघर-सलोने बालकके वेशमें आकर श्रीकर्माजीकी गोदमें बैठकर खिचड़ी खा जाते। श्रीकर्माजी सदैव चिन्तित रहा करती थीं कि बच्चेके भोजनमें कभी भी विलम्ब न हो जाय। इसी कारण वे किसी भी विधि-विधानके पचड़ेमें न पड़कर अत्यन्त प्रेमसे सबेरे ही खिचड़ी तैयार कर लेतीं।

एक दिनकी बात है। श्रीकर्माजीके पास एक साधु आये। उन्होंने अपवित्रताके साथ खिचड़ी तैयार करके भगवान्‌को अर्पण करते देखा। घबराकर उन्होंने श्रीकर्माजीको पवित्रताके लिये स्नानादिकी विधियाँ बता दीं। भक्तिमती श्रीकर्माजीने दूसरे दिन वैसा ही किया। पर इस प्रकार खिचड़ी तैयार करते उन्हें देर हो गयी। उस समय उनका हृदय रो उठा कि मेरा प्यारा श्यामसुन्दर भूखसे छटपटा रहा होगा।

श्रीकर्माजीने दुःखी मनसे श्यामसुन्दरको खिचड़ी खिलायी। इसी समय मन्दिरमें अनेकानेक घृतमय पक्वान्न निवेदित करनेके लिये पुजारीने प्रभुका आवाहन किया। प्रभु जूँठे मुँह ही वहाँ चले गये।

पुजारी चकित हो गया। उसने देखा उस दिन भगवान्‌के मुखारविन्दमें खिचड़ी लगी है। पुजारी भी भक्त था। उसका हृदय क्रन्दन करने लगा। उसने अत्यन्त कातर होकर प्रभुसे असली बात जाननेकी प्रार्थना की। भगवान्‌ने कहा, 'नित्यप्रति प्रातःकाल मैं कर्माबाईके पास खिचड़ी खाने जाता हूँ। उनकी खिचड़ी मुझे बड़ी मधुर और प्रिय लगती है। पर आज एक साधुने जाकर उन्हें स्नानादिकी विधियाँ बता दीं; इसलिये खिचड़ी बननेमें देर हो गयी, जिससे मुझे क्षुधाका कष्ट तो हुआ ही, शीघ्रतामें जूँठे मुँह आ जाना पड़ा।'

भगवान्‌के आज्ञानुसार पुजारीने उस साधुको प्रभुकी सारी बातें सुना दीं। साधु घबराया हुआ श्रीकर्माजीके पास जाकर बोला—'आप पूर्वकी ही तरह प्रतिदिन सबेरे ही खिचड़ी बनाकर प्रभुको निवेदन कर दिया करें। आपके लिये किसी नियमकी आवश्यकता नहीं है।'

श्रीकर्माजी पुनः उसी तरह प्रतिदिन सबेरे भगवान्‌को खिचड़ी खिलाने लगीं।

श्रीकर्माजी परमात्माके पवित्र और आनन्दमय धाममें चली गयीं, पर उनके प्रेमकी गाथा आज भी विद्यमान है। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें आज भी प्रतिदिन प्रातःकाल खिचड़ीका भोग लगाया जाता है।

श्रीप्रियादासजी श्रीकर्माबाईकी इस प्रेममयी भक्तिका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

हुती एक बाई ताको 'करमा' सुनाम जानि बिना रीति भाँति भोग खिचरी लगावहीं।
जगन्नाथ देव आपु भोजन करत नीकैं जिते लगै भोग तामैं यह अति भावहीं॥
गयो तहाँ साधु मानि बड़ो अपराध करै भरै बहु स्वांस सदाचार लै सिखावहीं।
भई यों अबार देखैं खोलि कैं किवार जोपै जूठन लगी है मुख धोये बिनु आवहीं॥ १९६॥
पूछी प्रभु भयो कहा कहिये प्रगट खोलि बोलिहू न आवै हमें देखि नयी रीति है।
करमा सुनाम एक खिचरी खवावै मोहिं मैं हूँ नित पाऊँ जाइ जानि साँची प्रीति है॥
गयौ मेरो सन्त रीति भाँतिसों सिखाइ आयो मत मो अनन्त बिनु जाने यों अनीति है।
कही वही साधुसों जु साधि आवौ वही बात जाइकै सिखाई हिय आई बड़ी भीति है॥ १९७॥

भवसागरसे पार करानेवाले भगवद्भक्त

सोझा सींव अधार धीर हरिनाम त्रिलोचन।
आसाधर द्योराजनीर सधना दुखमोचन॥
कासीस्वर अवधूत कृष्न किंकर कटहरिया।
सोभू ऊदाराम, नाम डूँगर ब्रतधरिया॥
पदम पदारथ रामदास बिमलानंद अमृत श्रए।
भव प्रबाह निस्तार हित अवलंबन ये जन भए॥ ९६॥

आवागमनरूप संसारके प्रवाहमें पड़े हुए जीवोंके उद्धारके लिये ये भगवद्भक्त अवलम्बस्वरूप हुए। श्रीसोझाजी, श्रीसींवाजी, धैर्यवान् श्रीअधारजी, श्रीहरिनाभजी, श्रीत्रिलोचनजी, श्रीआसाधरजी, श्रीद्यौराजनीरजी, श्रीसदनजी—ये सब भक्तजीवोंको संसार-दुःखसे छुड़ानेवाले हुए। अवधूत काशीश्वरजी, श्रीकृष्णकिंकरजी, श्रीकटहरियाजी, श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी, श्रीऊदारामजी, श्रीडूँगरजी—ये श्रीहरिनामका व्रत धारण करनेवाले हुए। श्रीपद्मजी, श्रीपदारथजी, श्रीरामदासजी, श्रीविमलानन्दजी—ये भक्त श्रीहरिभक्तिरसामृतकी वर्षा करनेवाले हुए॥ ९६॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंके विषयमें विवरण इस प्रकार है—

सदन कसाई

प्राचीन समयमें सदन नामक कसाई जातिके एक भक्त हो गये हैं। यद्यपि ये जातिसे कसाई थे, फिर भी इनका हृदय दयासे पूर्ण था। आजीविकाके लिये और कोई उपाय न होनेसे दूसरोंके यहाँसे मांस लाकर बेचा करते थे, स्वयं अपने हाथसे पशु-वध नहीं करते थे। इस काममें भी इनका मन लगता नहीं था, पर मन मारकर जाति-व्यवसाय होनेसे करते थे। सदनका मन तो श्रीहरिके चरणोंमें रम गया था। रात-दिन वे केवल 'हरि-हरि' करते रहते थे।

भगवान् अपने भक्तसे दूर नहीं रहा करते। सदनके घरमें वे शालग्रामरूपसे विराजमान थे। सदनको इसका पता नहीं था। वे तो शालग्रामको पत्थरका एक बाट समझते थे और उनसे मांस तौला करते थे। एक दिन एक साधु सदनकी दूकानके सामनेसे जा रहे थे। दृष्टि पड़ते ही वे शालग्रामजीको पहचान गये। मांस-विक्रेता कसाईके यहाँ अपवित्र स्थलमें शालग्रामजीको देखकर साधुको बड़ा क्लेश हुआ। सदनसे माँगकर वे शालग्रामको ले गये। सदनने भी प्रसन्नतापूर्वक साधुको अपना वह चमकीला बाट दे दिया।

साधु बाबा कुटियापर पहुँचे। उन्होंने विधिपूर्वक शालग्रामजीकी पूजा की; परंतु भगवान्‌को उससे प्रसन्नता न हुई। रातमें उन साधुको स्वप्नमें भगवान्‌ने कहा—'तुम मुझे यहाँ क्यों ले आये? मुझे तो अपने भक्त सदनके घरमें ही बड़ा सुख मिलता था। जब वह मांस तौलनेके लिये मुझे उठाता था, तब उसके शीतल स्पर्शसे मुझे अत्यन्त आनन्द मिलता था। मुझे सदनके बिना एक क्षण कल नहीं पड़ती।'

साधु महाराज जगे। उन्होंने शालग्रामजीको उठाया और सदनके घर जाकर उसे दे आये। साथ ही उसको भगवत्कृपाका महत्त्व भी बता आये। सदनको जब पता लगा कि उनका यह बटखरा तो भगवान् शालग्राम हैं, तब उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अपने व्यवसायसे घृणा हो गयी। वे शालग्रामजीको लेकर पुरुषोत्तमक्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीको चल पड़े।

श्रीप्रियादासजीने सदनके प्रति भगवान्‌की इस भक्तवत्सलताका इस प्रकार वर्णन किया है—

सदना कसाई ताकी नीकी कस आई जैसे बारा बानी सोनेकी कसौटी कस आई है।
जीवको न बध करैं ऐपै कुलाचार ढरैं बेंचैं मांस लाय प्रीति हरिसों लगाई है॥
गंडकीकौ सुत बिन जाने तासों तोल्यौ करैं भरै दृग साधु आनि पूजै पै न भाई है।
कही निसि सुपने मैं वाही ठौर मोकों देवौ सुनौ गुनगान रीझौं हियेकी सचाई है॥ ३९४॥

लै कै आयो साधु मैं तो बड़ो अपराध कियौ कियौ अभिषेक सेवा करी पै न भाई है।
ये तौ प्रभु रीझे तोपै जोई चाहौ सोई करौ गरो भरि आयौ सुनि मति बिसराई है॥
वेई हरि उर धारि डारि दियो कुलाचार चले जगन्नाथ देव चाह उपजाई है।
मिल्यौ एक संग संग जात वे सुगात सब तब आप दूर दूर रहैं जानि पाई है॥ ३९५॥

मार्गमें सन्ध्या-समय सदनजी एक गाँवमें एक गृहस्थके घर ठहरे। उस घरमें स्त्री-पुरुष दो ही व्यक्ति थे। स्त्रीका आचरण अच्छा नहीं था। वह अपने घर ठहरे हुए इस स्वस्थ, सुन्दर, सबल पुरुषपर मोहित हो गयी। आधी रातके समय सदनजीके पास आकर वह अनेक प्रकारकी अशिष्ट चेष्टाएँ करने लगी। यह देख वे हाथ जोड़कर बोले—'तुम तो मेरी माता हो! अपने बच्चेकी परीक्षा मत लो, मा! मुझे तुम आशीर्वाद दो।'

उस स्त्रीने समझा कि मेरे पतिके भयसे ही यह मेरी बात नहीं मानता। वह गयी और तलवार लेकर सोते हुए अपने पतिका सिर उसने काट दिया और कहने लगी—'प्यारे! अब डरो मत। मैंने अपने पतिका सिर काट डाला है। अब तुम मुझे स्वीकार करो।'

सदन भयसे काँप उठे। स्त्रीने अनुनय-विनय करके जब देख लिया कि उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं हो सकती, तब द्वारपर आकर छाती पीट-पीटकर रोने लगी। लोग उसका रुदन सुनकर एकत्र हो गये। उसने कहा—'इस यात्रीने मेरे पतिको मार डाला है और यह मेरे साथ बलात्कार करना चाहता था।' लोगोंने सदनको खूब भला-बुरा कहा, कुछने मारा भी; पर सदनने कोई सफाई नहीं दी। मामला न्यायाधीशके पास गया। सदन तो अपने प्रभुकी लीला देख रहे थे, अतः अपराध न करनेपर भी अपराध स्वीकार कर लिया। न्यायाधीशकी आज्ञासे उनके दोनों हाथ काट लिये गये।

सदनके हाथ कट गये, रुधिरकी धारा चलने लगी; उन्होंने इसे अपने प्रभुकी कृपा ही माना। उनके मनमें भगवान्‌के प्रति तनिक भी रोष नहीं आया। भगवान्‌के सच्चे भक्त इस प्रकार निरपराध कष्ट पानेपर भी अपने स्वामीकी दया ही मानते हैं। भगवन्नामका कीर्तन करते हुए सदन जगन्नाथपुरीको चल पड़े। उधर पुरीमें प्रभुने पुजारीको स्वप्नमें आदेश दिया—'मेरा भक्त सदन मेरे पास आ रहा है। उसके हाथ कट गये हैं। पालकी लेकर जाओ और उसे आदरपूर्वक ले आओ।' पुजारी पालकी लिवाकर गये और आग्रहपूर्वक सदनको उसमें बैठाकर ले आये। सदनने जैसे ही श्रीजगन्नाथजीको दण्डवत् करके कीर्तनके लिये भुजाएँ उठायीं, उनके दोनों हाथ पूर्ववत् ठीक हो गये।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आयौ मग गाँव भिक्षा लेन इक ठांव गयौ नयो रूप देखि कोऊ तिया रीझि परी है।
बैठो याही ठौर करो भोजन निहोरि कह्यौ रह्यौ निसि सोय आई मेरी मति हरी है॥
लेवो मोको संग करौ काटौ तौ न होय रंग बूझी और काटी पति ग्रीव पै न डरी है।
कही अब पागो मोसों नातो कौन तोसों मोसों सोर करि उठी इन मार्‍यो भीर करी है॥ ३९६॥
हाकिम पकरि पूछै कहैं हँसि मार्‍यो हम, डार्‍यौ सोच भारी कही हाथ काटि डारियै।
कट्यो कर चले हरिरंग मांझ झिले मानी जानी कछु चूक मेरी यहै उर धारियै॥
जगन्नाथदेव आगे पालकी पठाई लेन, सधनासो भक्त कहां? चढ़ैं न विचारियै।
चढ़ि आये प्रभु पास सुपनोसो मिट्‌यौ त्रास बोले दै कसौटी हूँ पै भक्ति विसतारियै॥ ३९७॥

प्रभुकी कृपासे हाथ ठीक तो हुए, पर मनमें शंका बनी ही रही कि वे क्यों काटे गये? रातमें स्वप्नमें भगवान्‌ने सदनजीको बताया—'तुम पूर्वजन्ममें काशीमें सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण थे। एक दिन एक गाय कसाईके घेरेसे भागी जा रही थी। उसने तुम्हें पुकारा। तुमने कसाईको जानते हुए भी गायके गलेमें दोनों हाथ डालकर उसे भागनेसे रोक लिया। वही गाय वह स्त्री थी और कसाई उसका पति था। पूर्वजन्मका बदला

लेनेके लिये उसने उसका गला काटा। तुमने भयातुरा गायको दोनों हाथोंसे पकड़कर कसाईको सौंपा था, इस पापसे तुम्हारे हाथ काटे गये। इस दण्डसे तुम्हारे पापका नाश हो गया।'

सदनने भगवान्की असीम कृपाका परिचय पाया। वे भगवत्प्रेममें विह्वल हो गये। बहुत कालतक नाम-कीर्तन, गुण-गान तथा भगवान्के ध्यानमें तल्लीन रहते हुए उन्होंने पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास किया और अन्तमें श्रीजगन्नाथजीके चरणोंमें देह त्यागकर वे परम-धाम पधारे।

श्रीगुसाईं काशीश्वरजी

गुसाईं श्रीकाशीश्वरजी अवधूत संन्यासी थे। आपको श्रीनीलाचल (श्रीजगन्नाथपुरी)-का वास अच्छा लगा, अतः अनुरागपूर्वक वहीं बस गये। कालान्तरमें महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यजीके आदेशानुसार आप श्रीवृन्दावन चले आये। श्रीवृन्दावनका दर्शन करके आपके हृदयकी अभिलाषा पूरी हो गयी। यहाँ आपको रसिकेन्द्रचूड़ामणि श्रीराधा गोविन्दचन्द्रजीकी सेवाका अधिकार प्राप्त हुआ।

श्रीप्रियादासजीने गुसाईं काशीश्वरजीकी भाव-दशाका वर्णन इस प्रकार किया है—

श्रीगुसाईं काशीश्वर आगे अवधूत बर करि प्रीति नीलाचल रहे लाग्यो नीको है।
महाप्रभु कृष्ण चैतन्यजूकी आज्ञा पाय आये वृन्दावन देखि भायौ भयौ हीको है॥
सेवा अधिकार पायौ रसिक गोविन्दचन्द चाहत मुखारविन्द जीवनि जो जीको है।
नित ही लड़ावैं भाव सागर बढ़ावैं कौन पारावार पावैं सुनै लागै जग फीको है॥ ३९८॥

श्रीसोझाजी

श्रीसोझाजी-दम्पती भगवद्भक्त गृहस्थ थे। धीरे-धीरे जगत्की असारता, सांसारिक सुखोंकी असत्यता और श्रीहरिभजनकी सत्यताका सम्यक् बोध हो जानेपर आपके मनमें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। आपने अपनी धर्मपत्नीके समक्ष अपने गृहत्यागका प्रस्ताव रखा तो उस साध्वीने न केवल सहर्ष प्रस्तावका समर्थन किया, बल्कि स्वयं भी साथ चलनेको तैयार हो गयीं। इसपर आपने कहा कि यदि तुम्हारे हृदयसे समस्त सांसारिक आसक्तियाँ समाप्त हो गयी हों तो तुम भी अवश्य चल सकती हो। अर्धरात्रिके समय ये दोनों घर छोड़कर चल दिये। आपकी तो प्रभुकृपापर अनन्य निष्ठा थी, इसलिये साथ कुछ नहीं लिया, परंतु आपकी पत्नी अपने दस माहके शिशुके प्रति वात्सल्यभावको न त्याग सकी और उसको भी अपनी गोदमें लेते आयी। रातभर पैदल चलनेके उपरान्त प्रातःकालके उजालेमें आपने जब पत्नीकी गोदमें शिशुको देखा तो बहुत नाराज हुए और बोले—'अभी तुम्हारे मनमें संसारके प्रति बहुत राग है, यदि तुम मेरे साथ चलना चाहती हो तो इस शिशुको यहीं छोड़ दो।' पत्नीने बड़े ही करुण स्वरमें कहा—'नाथ! यहाँ इसका लालन-पालन कौन करेगा?' आपने पृथ्वीपर रेंगते हुए जीव-जन्तुओंको दिखाकर कहा—'जो इनका पालन करता है, वही इस बालकका भी पालन करेगा।' आपकी आज्ञाका पालन करते हुए आपकी पत्नीने बालकको वहीं छोड़ दिया और दोनों लोग श्रीद्वारकापुरीकी यात्रापर चल दिये।

बारह वर्ष बाद अचानक एक दिन आपकी पत्नीको अपने उस दुधमुँहे शिशुकी याद आयी, जिसे वे आपके कहनेपर रास्तेमें ही छोड़कर चली आयी थीं। उन्होंने इस बातको आपसे कहा। प्रभुकृपासे आप तो सब जानते ही थे, फिर भी पत्नीको भगवत्कृपाके दर्शन करानेके लिये उन्हें लेकर अपने देश वापस लौटे। वहाँ वे एक बागमें रुके और मालीसे पूछा—'यहाँका राजा कौन है?' मालीने बताया—'यहाँके राजाको कोई संतान नहीं थी; अतः उन्होंने भक्त सोझाजीके पुत्रको गोद ले लिया था, जिसे उसके माता-पिता जंगलमें छोड़ गये थे, अब वही लड़का यहाँका राजा है।' सोझाजीकी पत्नी इस भगवत्कृपासे गद्गद हो गयीं, उन्हें विश्वास हो गया कि जो अनन्य भावसे प्रभुकी शरणमें जाते हैं, उनके योग-क्षेमका वहन स्वयं श्रीभगवान् करते हैं।

श्रीसींवाजी

श्रीसींवाजी भगवद्भक्त सद्गृहस्थ थे। आपकी

सन्तसेवामें बड़ी निष्ठा थी, इससे समाजमें आपका सम्मान भी बहुत था। आपकी यह प्रतिष्ठा अनेक लोगोंकी ईर्ष्याका कारण बनी। उन लोगोंने राजासे आपकी शिकायत कर दी। अविवेकी राजाने भी बिना कोई विचार किये आपको कारागारमें डाल दिया। आपकी सन्त प्रकृति थी, अतः आपके लिये सुख-दुःख, मान-अपमान सब समान ही थे; परंतु आपको इस बातका विशेष क्लेश था कि अब मेरी सन्तसेवा छूट गयी है। एक दिन एक सन्तमण्डली आपके घरपर आयी, जब आपको इस बातका पता चला तो आपको सन्तसेवा न कर पानेका बहुत दुःख हुआ। सर्वसमर्थ प्रभुसे अपने भक्तकी सच्ची तड़पन और उसकी मानसिक पीड़ा देखी न गयी। उसी समय चमत्कार हुआ और आपकी हथकड़ी-बेड़ी टूटकर जमीनपर गिर पड़ी, जेलके फाटक भी अपने-आप खुल गये। आप सन्तोंके पास पहुँच गये और भावपूर्वक उनकी सेवा की। राजाको जब यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो वह नंगे पैर भागकर आया और आपके चरणोंमें गिरकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा। आपके मनमें कोई विकार भाव तो था ही नहीं, अतः तुरंत ही क्षमा कर दिया। इस प्रकार श्रीसींवाजी गृहस्थमें रहते हुए भी आदर्श सन्त थे।

श्रीअधारजी

श्रीअधारजी बड़े उच्च कोटिके सन्त थे। भगवान् श्रीहरिके नाममें आपकी बड़ी निष्ठा थी। आपने श्रीहरि नामको ही अपना आधार बना लिया और उसीके बलपर असंख्य जनोंको भवसागरसे पार किया। श्रीहरि नामको आधार बना लेनेके कारण आपका नाम श्रीअधारजी पड़ गया।

श्रीहरिनाभजी

श्रीहरिनाभजी भगवत्कृपाप्राप्त सन्त थे। आपका जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ था और आपकी सन्त-सेवामें बड़ी ही निष्ठा थी। एक बार संन्यासियोंकी एक बड़ी मण्डली आपके गाँवमें आयी, गाँववालोंने उन्हें आपके यहाँ भेज दिया। संयोगसे उस दिन आपके यहाँ तनिक भी सीधा (कच्चा अन्न) नहीं था और न ही घरमें रुपया-पैसा या आभूषण ही था, जिसे देकर दूकानसे सौदा आ सकता। ऐसेमें आपने अपनी विवाहयोग्य कन्याको एक सगोत्री ब्राह्मणके यहाँ गिरवी रख दिया कि पैसेकी व्यवस्था होनेपर छुड़ा लेंगे। इस प्रकार पैसोंकी व्यवस्था करके आप सीधा-सामान लाये और सन्त-सेवा की। कुछ समय बाद जब आपके पास पैसे इकट्ठे हो गये तो आपने ब्राह्मणके पैसे लौटा दिये, परंतु फिर भी वह कन्याको वापस करनेमें आनाकानी करता रहा। आपकी सन्त-सेवाके प्रति निष्ठा और ब्राह्मणकी कुटिलताने सन्तोंके परम आराध्य भगवान् श्रीहरिको उद्वेलित कर दिया। वे स्वयं चुपचाप कन्याको आपके यहाँ पहुँचा आये। अब वह ब्राह्मण आपसे झगड़ा-तकरार करने लगा। इसपर भगवान्‌ने रात्रिमें स्वप्नमें उससे कहा कि कन्याको मैंने उसके पिताके घर पहुँचाया है, यदि तुम इसके लिये तकरार करोगे तो मैं तुम्हारा सर्वनाश कर दूँगा। अब ब्राह्मणको अपनी गलती और आपपर भगवत्कृपाका बोध हुआ। वह दूसरे दिन प्रातःकाल ही आकर आपके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करने लगा। आपके मनमें उसके प्रति तनिक भी क्रोध नहीं था, अतः उसे क्षमा तो कर ही दिया, साथ ही उसे भी सन्त-सेवी बना दिया।

श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी

श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी महाराजका जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीकृष्णदत्त और माताका नाम श्रीराधादेवी था। श्रीकृष्णदत्त एवं राधादेवीको जब दीर्घकालतक संतानकी प्राप्ति नहीं हुई तो एक सन्तकी प्रेरणासे दोनों निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिदेव व्यासजीके पास गये। उन्होंने आपलोगोंको गो-सेवा करनेकी आज्ञा दी। अब आपलोग गायोंको चराते, उनकी सार-सँभाल करते और हर प्रकारकी सेवा करते। इस प्रकार सेवा करते-करते गोपाष्टमीका दिन आया। आप दोनों लोग गोशालामें गये, वहाँ देखा तो चारों ओर प्रकाश फैला था और उस प्रकाशपुंजके मध्यमें एक सुन्दर शिशु लेटा था। उसे देखते ही दम्पतीका वात्सल्य भाव जाग्रत् हो गया और राधादेवीने उसे अपनी गोदमें उठा लिया। इस प्रकार स्वयं प्रकट होनेके कारण

शिशुका नाम स्वभूराम पड़ा। आठ वर्षकी अवस्थामें बालक स्वभूरामको उनके माता-पिता श्रीहरिदेव व्यासजीके पास ले गये और उनका यज्ञोपवीत कराकर वैष्णव दीक्षा दिलायी, तत्पश्चात् सब लोग पुनः घर आ गये। श्रीस्वभूरामजी घर आ तो गये, पर उनका मन घरमें न लगता। एक दिन उन्होंने अपने माता-पितासे संन्यास लेनेकी बात कही और उनसे आज्ञा एवं आशीर्वाद माँगा। इसपर आपके माता-पिता वात्सल्यस्नेहवश बिलखने लगे और रोते हुए बोले—'बेटा! हम वृद्धोंके तुम्हीं एकमात्र प्राणाधार हो, यदि तुम भी वैराग्य-धारण कर लोगे तो हम लोग किसके आधारपर जीवन धारण करेंगे?' माता-पिताकी इस परेशानीको देखकर आपने कहा कि यदि मेरे दो भाई और हो जायँ तो क्या आप लोग मुझे विरक्त हो जानेकी आज्ञा दे देंगे? यह सुनकर माता-पिता हँस पड़े; क्योंकि तबतक उनकी पर्याप्त अवस्था हो चुकी थी। परंतु आपकी वाणी सत्य सिद्ध हुई। कुछ दिनों बाद भगवत्कृपासे सन्तदास और माधवदास नामक दो भाइयोंका जन्म हुआ। उनके कुछ बड़े हो जानेपर आपने पुनः माता-पितासे संन्यासकी अनुमति माँगी और मौन स्वीकृति प्राप्तकर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीकी शरणमें चले गये। आपने श्रीगुरुदेवजीसे विरक्त दीक्षा ली और भजन-साधन करने लगे। आपने अनेक अलौकिक कार्य किये और वैष्णव धर्मकी ध्वजा फहरायी।

श्रीऊदारामजी

श्रीऊदारामजीका जन्म वैश्यकुलमें हुआ था। आप परम भगवद्भक्त और सन्तसेवी थे। आपकी पत्नी भी परम भागवती और पतिपरायणा थीं। एक पुत्रके जन्मके बाद आप दम्पतीने निश्चय किया कि अब पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये सन्तान हो गयी है, अतः शेष समय भगवद्भजन और सन्तसेवामें ही बिताना चाहिये। यह निश्चयकर पति-पत्नी भगवद्भजन और साधु-सेवामें रत हो गये। आपकी सन्तसेवामें निष्ठा और ख्यातिसे जाति-बिरादरीके लोग आपसे ईर्ष्या करने लगे। उन लोगोंने राजाके पास झूठी शिकायत कर दी कि ऊदारामके पास बहुत धन है, परंतु यह राज्यकर नहीं देता। अविवेकी राजाने भी बिना कोई विचार किये सिपाहियोंको श्रीऊदारामजीको गिरफ्तारकर लानेके लिये भेज दिया, परंतु सिपाही जब आपके घरके पास पहुँचे तो सबके सब अन्धे हो गये। यह समाचार जब राजाको पता चला तो उसे अपनी भूल ज्ञात हुई। उसने तत्काल आकर आपके चरणोंमें प्रणिपात किया और आपके उपदेशोंसे प्रभावित होकर भगवद्भजन और साधु-सेवाका व्रत ले लिया। इसी प्रकार आपके चरित्रसे प्रेरणा लेकर अनेक भगवद्विमुख जन वैष्णव बन गये।

श्रीडूँगरजी

भक्त श्रीडूँगरजी जातिसे पटेल क्षत्रिय थे। सन्तसेवामें आपकी बड़ी ही निष्ठा थी, परंतु आपके पिताको यह सब व्यर्थ लगता था। अतः आप पितासे छिपाकर सन्तोंको खिलाने-पिलानेमें धन खर्च कर दिया करते थे। इस प्रकार आपने जब बहुत-सा धन व्यय कर दिया तो यह बात आपके पिताजीको भी मालूम हुई और क्रुद्ध होकर उन्होंने आपको घरसे निकाल दिया। यद्यपि अब आपके पास अर्थाभाव हो गया था, फिर भी आपकी सन्तसेवा बदस्तूर जारी रही। यहाँतक कि आपने अपनी पत्नीके आभूषणतक बेंचकर उससे सन्तोंकी सेवा की।

श्रीपदारथजी

श्रीपदारथजी महाराज बड़े ही उच्चकोटि के गृहस्थ सन्त थे। सन्तोंमें ही नहीं, अपितु सन्तवेषमें भी आपकी बड़ी निष्ठा थी। एक बार एक ठग किसी सन्तसेवी वणिक्के यहाँ सन्तवेषमें रहने लगा, थोड़े ही दिनमें वह वणिक्-परिवारका विश्वासपात्र बन गया। एक दिन मौका पाकर वह वणिक्का सारा माल-मत्ता लेकर चम्पत हो गया। वणिक्-पत्नीने जब देखा कि तिजोरी खुली है और सारी धन-सम्पत्ति गायब है, तो वह चीख-चीखकर रोने-चिल्लाने लगी। उसका रोना-चिल्लाना सुनकर राजकर्मचारियोंने ठगका पीछा किया। जब ठगको अपने बचनेका कोई उपाय न सूझा तो वह आपके ही घरमें घुस आया। उसे राजकर्मचारियोंके

भयसे भयभीत देखकर आपको कुछ दालमें तो काला लगा, पर सन्तवेषके प्रति निष्ठा होनेके कारण उसे अपने घरमें छिपा लिया और राजकर्मचारियोंके वापस चले जानेके बाद उससे सारी घटना सच-सच बतानेको कहा। समस्त वस्तुस्थितिसे अवगत होनेपर आपने वणिक्‌का सारा धन उसके घर भिजवा दिया और ठगको भगवान्‌का चरणामृत एवं प्रसाद दिया, जिससे उसकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। इसी प्रकार आपने अनेक कुमार्गगामियोंको भगवद्भक्ति-पथका पथिक बना दिया।

श्रीविमलानन्दजी

श्रीविमलानन्दजी महाराज बड़े ही सिद्ध महापुरुष थे। नामके अनुरूप ही आपका हृदय बड़ा ही निर्मल था और आपके सम्पर्कमें आनेवाले प्राणी भी मनकी दुर्वासनाओंसे मुक्त हो जाया करते थे।

सच्चे सन्त

जतीराम रावल्य स्याम खोजी सँतसीहा।
दल्हा पद्म मनोरत्थ राँक द्यौगू जप जीहा॥
जाड़ा चाचा गुरू सवाई चाँदा नापा।
पुरुषोत्तम सों साच चतुर कीता मन कौ जिहि मेट्यो आपा॥
मति सुंदर धीधांगश्रम संसार नाच नाहिन नचे।
करुना छाया भक्ति फल ए कलिजुग पादप रचे॥ ९७॥

श्रीभगवान्‌ने इन भक्तोंको वृक्षरूप रचा। इन सन्तरूपी वृक्षोंमें इनकी करुणा ही छाया है और इनकी भक्ति ही फल है। इनके ये नाम हैं—श्रीजतीरामजी, श्रीरावल्यजी, श्रीस्यामजी, श्रीखोजीजी, सन्त श्रीसीहाजी, श्रीदल्हाजी, श्रीपद्मजी, श्रीमनोरथजी, श्रीराँका-बाँकाजी, श्रीद्यौगूजी, जो जिह्वासे निरन्तर भगवन्नाम जप किया करते थे। श्रीजाड़ाजी, श्रीचाचा गुरुजी, श्रीसवाईजी, श्रीचाँदाजी, श्रीनापाजी, भगवान् पुरुषोत्तमके सच्चे भक्त श्रीपुरुषोत्तमजी, श्रीचतुरजी, श्रीकीताजी, जिन्होंने अपने मनका अहं सर्वथा मिटा डाला था—इन सभी भक्तोंकी बुद्धि बड़ी सुन्दर थी। ये संसाररूपी रंगमंचपर श्रमरूपी धीङ्-धाङ् आदि मृदंगके तालपर नहीं नचे॥ ९७॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंके पावन चरित्र इस प्रकार वर्णित है—

श्रीखोजीजी

श्रीखोजीजी मारवाड़-राज्यान्तर्गत पालड़ी गाँवके निवासी थे। आप जन्मजात वैराग्यवान् और भगवदनुरागी होनेके कारण बचपनसे ही गृहकार्यमें उदासीन और भगवद्भजन तथा साधुसंगमें रमे रहते थे। इससे आपके भाइयोंकी आपसे नहीं पटती थी और वे लोग आपको निकम्मा ही मानते थे। एक बार आपके गाँवमें एक सन्तमण्डली आयी हुई थी, आप रात-दिन सन्तों की सन्निधिमें रहकर कथावार्ता और सत्संगमें लगे रहते थे। इसी बीच दुर्भाग्यसे एक दिन अचानक आपके पिताका स्वर्गवास हो गया। जब सारे औध्र्वदैहिक कार्य सम्पन्न हो गये तो भाइयोंने आपसे कहा कि पिताजीके अस्थिकलशको गंगाजीमें प्रवाहित कर आओ, जिससे तुम भी पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाओ। इसपर आपने कहा—वैष्णवजन भगवन्नामका जहाँ उच्चारण करते हैं, वहाँ गंगाजीसहित सारे तीर्थ स्वयं प्रकट हो जाते हैं। जब भाइयोंने जबरदस्ती भेजा तो आपने सन्तोंको साथ लिया और भगवन्नामकीर्तन करते हुए अस्थिकलश लेकर गंगाजीको चल दिये। मार्गमें आपको स्वर्णकलश लिये कुछ दिव्य नारियाँ दिखायी दीं। जब आप उनके समीपसे गुजरने लगे तो वे पूछने लगीं—'भक्तवर! आप कहाँ जा रहे हैं?' आपने कहा—'मैं पिताजीके अस्थिकलशको श्रीगंगाजीमें प्रवाहित करने जा रहा हूँ।' उन दिव्य नारियोंने कहा—'हम गंगा-यमुना आदि

नदियाँ ही हैं, आप अपने पिताजीके अस्थिकलशका यहीं विसर्जन कर दीजिये और स्वयं स्नानकर घर चले जाइये।' आपने ऐसा ही किया और भाइयोंकी प्रतीतिके लिये एक कलश जल भी लेते गये।

श्रीखोजीजीके श्रीगुरुदेव भगवच्चिन्तनमें परम प्रवीण थे। उन्होंने अपने शरीरका अन्तिम समय जानकर अपनी मुक्तिके प्रमाणके लिये एक घण्टा बाँध दिया और सभी शिष्य-सेवकोंसे कह दिया कि हम जब श्रीप्रभुकी प्राप्ति कर लेंगे तो यह घण्टा अपने-आप बज उठेगा। यही मेरी मुक्तिका प्रमाण जानना। परंतु आश्चर्य यह हुआ कि उन्होंने शरीरका त्याग तो कर दिया, परन्तु घण्टा नहीं बजा। तब शिष्य-सेवकोंको बड़ी चिन्ता हुई। श्रीगुरुदेवजीके शरीर-त्यागके समय श्रीखोजीजी स्थानपर नहीं थे। ये बादमें आये जब इनको समस्त वृत्तान्त विदित हुआ तो जहाँ श्रीगुरुजीने लेटकर शरीर छोड़ा था, श्रीखोजीजीने भी वहीं पौढ़कर ऊपर देखा तो इन्हें एक पका हुआ आम दिखायी पड़ा। इन्होंने उस आमको तोड़कर उसके दो टुकड़े कर दिये। उसमेंसे एक छोटा-सा जन्तु (कीड़ा) निकला और वह जन्तु सबके देखते-देखते अदृश्य हो गया, घण्टा अपने-आप बज उठा।

हुआ यूँ कि श्रीखोजीजीके गुरुदेव तो प्रथम ही प्रभुको प्राप्त कर चुके थे, यह सर्व प्रसिद्ध है। परंतु बादमें शरीर-त्यागके समय अच्छा पका हुआ फल देखकर, भगवान्‌के भोग योग्य विचारकर उनके मनमें यह नवीन अभिलाषा उत्पन्न हुई कि इसका तो भगवान्‌को भोग लगना चाहिये। भक्तकी उस इच्छाको भक्तवश्य भगवान्‌ने सफल किया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार करते हैं—

खोजीजू के गुरु हरि भावना प्रवीन महा देह अन्त समैं बांधि घण्टासो प्रमानियै।
पावैं प्रभु जब तब बाजि उठै जानौ यही पाये पै न बाजो बड़ी चिन्ता मन आनियै॥
तन त्याग बेर नहीं हुते फेरि पाछे आये वाही ठौर पौढ़ि देख्यौ आँब पक्यौ मानियै।
तोरि ताके टूक किये छोटौ एक जन्तु मध्य गयौ सो बिलाय बाजि उठो जग जानियै॥ ३९९॥
शिष्यकी तौ योग्यताई नीके मन आई अजू गुरुकी प्रबल ऐपै नेकु घट क्यों भई।
सुनौ याकी बात मन बात वति गति कही सही लै दिखाई और कथा अति रसमई॥
ये तौ प्रभु पाय चुके प्रथम प्रसिद्ध पाछे आछो फल देखि हरि जोग उपजी नई।
इच्छा सो सफल श्याम भक्तवश करी वही रही पूर पच्छ सब बिथा उरकी गई॥ ४००॥

श्रीराँका-बाँकाजी

भक्त श्रीराँकाजी पति थे और भक्तिमती श्रीबाँकाजी उनकी पत्नी थीं। ये दोनों भागवत पति-पत्नी पंढरपुरमें निवास करते थे। इन दोनोंके हृदयमें सिवा भगवान्‌के और कुछ भी चाह नहीं थी। इनकी रीति-रहनी कुछ विलक्षण ही थी। जंगलसे लकड़ियाँ बीनकर लाते और उन्हींको बेचकर अपनी नित्य नवीन जीविका करते थे। एक बार भक्तवर श्रीनामदेवजीने भगवान् श्रीकृष्णसे विनती की कि भक्त राँका-बाँकाका गरीबीका दुःख दूर कर दीजिये। भगवान्‌ने कहा—'मैंने बहुत उपायोंसे इन्हें देना चाहा, परंतु ये लेते ही नहीं, यदि नहीं मानो तो मेरे संग चलो, मैं इनकी निष्कामता दिखलाऊँ।' फिर तो भगवान्‌ने मार्गमें एक स्वर्णमुहरोंसे भरी थैली डाल दी और स्वयं तथा श्रीनामदेवजी दोनों जंगलमें छिप गये।

इतनेमें श्रीराँका-बाँकाजी दोनों उसी मार्गसे आये। आगे-आगे पति श्रीराँकाजी थे और पीछे-पीछे उनकी पत्नी श्रीबाँकाजी थीं। एकाएक श्रीराँकाजीने मार्गमें पड़ी हुई मुहरोंसे भरी हुई थैली देखी। देखकर विचार किया कि मेरी पत्नी स्त्री जाति है, वैसे यद्यपि निष्काम है फिर भी कभी-कभी दृष्टिपथमें आनेपर लौकिक वस्तुओंमें भी मन चलायमान हो जाता है। अतः उन्होंने शीघ्रतापूर्वक उस थैलीपर धूल डाल दी। श्रीबाँकाजीने पतिसे पूछा—'अजी, आपने यहाँ पृथ्वीपर झुककर क्या किया है?' तब श्रीराँकाजीने सत्य बात बता दी। तब श्रीबाँकाजीने कहा—'अभी आपके मनमें धनका ज्ञान बना ही है?'

यह सुनकर श्रीराँकाजी बोले—'लोग मुझे राँका और तुमको बाँका कहते हैं, सो सत्य ही मैं राँका अर्थात् रंक ही हूँ और तुम बाँका अर्थात् श्रेष्ठ मुझसे बढ़कर हो। यह बात मैंने आज देख ली।' इनकी ये बातें सुनकर भगवान् श्रीनामदेवजीसे बोले—देखो, हमारी बात सत्य हुई। ये दोनों धनके प्रति कितने निस्पृह हैं।

श्रीप्रियादासजीने राँका-बाँका-दम्पतीकी निस्पृहताका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

राँका पति बाँका तिया बसै पुर पंढरमें उरमें न चाह नेकु रीति कछु न्यारियै।
लकरीन बीनि करि जीविका नवीन करैं धरैं हरि रूप हिये ताही सों जियारियै॥
विनती करत नामदेव कृष्णदेव जू सों कीजै दुःख दूर कही मेरी मति हारियै।
चलो लै दिखाऊँ तब तेरे मन भाऊँ रहे बन छिपि दोऊ थैली मग मांझ डारियै॥ ४०१॥
आये दोऊ तिया पति पाछे बधू आगे स्वामी औचक ही मग मांझ सम्पति निहारियै।
जानी यों जुबति जाति कभूँ मन चलि जात याते बेगि संभ्रम सों धूरि वापै डारियै॥
पूछी अजू कहा कियौ भूमिमें निहुरि तुम कही वही बात बोली धनहूं विचारियै।
कहैं मोसों रांका ऐपै बांका आज देखी तुही सुनि प्रभु बोले बात सांची है हमारियै॥ ४०२॥

भगवान्की जीत हुई, श्रीनामदेवजी हार गये। फिर भगवान्ने एक और बात कही कि 'यदि तुम्हारे मनमें विशेष परिताप है कि श्रीराँका-बाँकाजीकी सहायता करनी ही चाहिये तो चलो इनके लिये लकड़ी बटोरें।' फिर श्रीभगवान् और श्रीनामदेवजीने लकड़ियाँ बटोरीं। तदुपरान्त श्रीराँका और बाँकाजी लकड़ी बीनने आये तो जहाँ-तहाँ लकड़ियोंका ढेर देखा तो विचार किया कि हमसे पहले ही कोई बटोर गया है। फिर तो इनका मन ऐसा भयभीत हुआ कि दो लकड़ियाँ भी एक जगह होतीं तो उन्हें हाथसे नहीं छूते। तब तो भगवान् श्यामसुन्दरने प्रकट होकर दर्शन दिया। श्रीराँका-बाँकाजी श्रीठाकुरजीको घर लिवा लाये। भगवान्के संग श्रीनामदेवजीको देखकर श्रीराँकाजीने झुँझलाकर कहा—'अरे मूड़फोरा! श्रीप्रभुको इस प्रकार वन-वन भटकाया जाता है?' भगवान्ने राँकाजीसे कुछ माँगनेका अनुरोध किया। तब वे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि 'मुझे आपकी कृपाके सिवा और कुछ नहीं चाहिये।' तब श्रीनामदेवजीने हाथ-जोड़कर इनसे कहा कि 'अच्छा और कुछ नहीं तो प्रभुका रुख रखते हुए प्रभुका एक प्रसादी वस्त्र ही शरीरपर धारण कर लीजिये।' यद्यपि इतनेसे भी श्रीराँका-बाँकाजीको लगा कि मेरे सिरपर भारी बोझ पड़ गया, परंतु उन्होंने भक्त और भगवान्की रुचि रखनेके लिये वस्त्रमात्र स्वीकार कर लिया।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

नामदेव हारे हरिदेव कही और बात जो पै दाह गात चलो लकरी सकेरियै।
आयै दोऊ बीनिबेको देखी इक ठौरी ढेरी द्वै हूँ मिली पावैं तऊ हाथ नाहिं छेरियै॥
तब तौ प्रगट श्याम ल्याये यों लिवाय घर देखि मूंड फोरौ कह्यौ ऐसे प्रभु फेरियै।
विनती करत करजोरि अंग पट धारौ भारौ बोझ पर्‍यौ लियौ चीरमात्र हेरियै॥ ४०३॥

श्रीयतीरामजी

श्रीयतीरामजी महाराज श्रीरामानन्दी वैष्णव सम्प्रदायके प्रवर्तक श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक श्रीसुखानन्दाचार्यजीके शिष्य थे। आप श्रीभगवान्के नाम-गुणगानमें मग्न रहा करते थे, सदा भाव-जगत्में रहनेके कारण सामान्यजनोंको आप उन्मत्तकी तरह प्रतीत होते थे।

एक बारकी बात है, किसी बादशाहकी सवारी कहीं जा रही थी; साथमें बड़ा लाव-लश्कर भी था। उन लोगोंको किसी एक ऐसे आदमीकी आवश्यकता थी, जो सामानके एक बड़े गट्ठरको सिरपर लादकर चले। आप अपनी मस्तीमें घूमते हुए उधर जा निकले। फिर क्या था, बादशाहके यवन सिपाहियोंने इन्हें ही पकड़कर इनके सिरपर गट्ठर रखवा दिया। कुछ तो इनकी

भावावस्था और कुछ गट्ठर भी भारी था, अतः एक जगह आप लड़खड़ा गये और गट्ठर गिर पड़ा। अब तो वे दुष्ट सिपाही इन्हें मारने लगे। आप तो क्रोध-शोक आदि विकारोंसे मुक्त थे, परंतु अपने भक्तकी ऐसी अवमानना और सिपाहियोंकी दुष्टता सर्वशक्तिमान् भगवान्‌से न सही गयी। अचानक असंख्य गिरगिट वहाँ प्रकट हो गये और यवन सिपाहियोंको काटने लगे। वे जिधर भी भागते उधर ही गिरगिट प्रकट होकर उन्हें काटने लगते। सिपाहियोंकी यह दुर्दशा देखकर बादशाह समझ गया कि यह हिन्दू फकीर सिद्ध महापुरुष है। फिर तो वह रथसे उतरकर तुरंत आपके चरणोंमें गिर पड़ा और क्षमा माँगने लगा। इसपर आपने कहा—भाई! मैं आपसे नाराज ही कहाँ हूँ, जो क्षमा कर दूँ! जो आपपर नाराज है और दण्ड दे रहा है, उससे क्षमा माँगो।

श्रीरामरावलजी

श्रीरामरावलजी महाराज भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। आप सदा एकान्त स्थानमें बैठे भगवच्चिन्तनमें मग्न रहा करते थे। आपका समाजमें सम्मान भी बहुत था। यह देखकर एक ऐंद्रजालिक (जादूगर)-को आपसे ईर्ष्या हो गयी, वह आपको भगानेके लिये नाना प्रकारके उपद्रव करने लगा। परंतु भला माया जिसकी दासी है, उसके भक्तको क्षुद्र बाजीगरकी ये कपट चालें क्या भयभीत कर पातीं! अन्तमें उसे इस बातका भान हो गया कि ये पहुँचे सन्त और सिद्ध महापुरुष हैं, अतः इनके शरणागत होकर शिष्य हो गया। इसी प्रकार आपने भगवत्पथसे भटके अनेक प्राणियोंको अपने आचरणसे सही राह दिखायी।

श्रीसीहाजी

भक्त श्रीसीहाजी बड़े ही नामनिष्ठ सन्त थे और सदा नाम-संकीर्तन करते रहते थे। आपका संकीर्तन इतना रसमय होता था कि स्वयं भगवान् भी विभिन्न वेश बनाकर उसमें आनन्द लेने पहुँच जाया करते थे। आप स्वयं तो कीर्तन करते ही थे, गाँवके बालकोंको भी बुलाकर कीर्तन कराते थे। बालकोंको कीर्तनके अन्तमें आप प्रसाद दिया करते थे, अतः वे भी खुशी-खुशी पर्याप्त संख्यामें आ जाया करते थे। एक बार ऐसा संयोग बना कि तीन दिनतक आपके पास बाँटनेके लिये प्रसाद ही न रहा। इससे आपको बड़ी चिन्ता हुई, साथ ही दुःख भी हुआ। आपको इस प्रकार चिन्तित देख चौथे दिन भगवान् स्वयं बालक बनकर आये और सबको उनकी इच्छाके अनुसार इच्छाभर लड्डू वितरित किये और फिर रात्रिमें आपसे स्वप्नमें कहा कि अब आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, प्रसाद न रहनेपर मैं स्वयं वेश बदलकर प्रसाद बाँटा करूँगा, आप बस कीर्तन कराइये। अब भगवान् प्रतिदिन वेश बदलकर आपके कीर्तनमें सम्मिलित होने लगे।

श्रीदलहासिंहजी

राजस्थानमें एक ग्राम है, खीचीबाड़ा। श्रीदलहासिंहजी वहींके निवासी थे। जातिसे यद्यपि आप क्षत्रिय थे, फिर भी आपकी वृत्ति अहिंसक थी और आपने सन्तसेवाका व्रत ले लिया था। सन्त-सेवामें आपके घरकी स्थिति ऐसी हो गयी कि पेट पालना भी मुश्किल हो गया। इसी बीच एक रिश्तेदारीसे भात भरनेका निमन्त्रण आ गया। अब तो आपका दिनका चैन और रातकी नींद गायब हो गयी। आपकी ऐसी स्थिति देखकर नरसीका भात भरनेवाले भक्तवत्सल भगवान्‌को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने स्वप्नमें आपसे कहा कि तुम्हारे घरके पासमें ही एक टीला है, उसमें अथाह सम्पत्ति भरी पड़ी है, उसे खोद लो और खूब सन्त-सेवा करो तथा भात भरो। फिर तो भगवान्‌का संकेत समझकर आपने वैसा ही किया। टीलेमेंसे अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई, जिससे आपने जीवनभर सन्तसेवा की।

श्रीपद्मजी

श्रीपद्मजी भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त थे। आपके पास भगवान् विष्णुकी एक सुवर्ण-प्रतिमा थी, जिसकी वे आराधना करते थे। एक बारकी बात है, आप सुवर्ण-प्रतिमाको एकान्तमें रख उसकी सेवा-पूजा कर रहे थे; सहसा एक चोरकी कुदृष्टि उसपर पड़ गयी। उसने सुनसान एकान्त स्थान देखकर वह सुवर्ण-प्रतिमा और उसपर चढ़े आभूषण भी छीन लिये और भाग चला।

अब तो आपके प्राण विकल हो उठे, अत्यन्त आर्त होकर आप भगवान्‌को पुकारने लगे। भक्तवत्सल भगवान्‌से भक्तका यह दु:ख देखा न गया। उन्होंने कुछ ऐसी लीला की कि उस चोरका जूता उसके पैरसे निकलकर उसके सिरपर पड़ने लगा। इस संकटसे बचनेके लिये वह इधर-उधर बहुत दौड़ा पर जिधर जाता, उधर ही उसपर जूता पड़ता। अन्तमें वह गिरता-पड़ता आपके पास आया और प्रतिमा तथा सभी आभूषण वापसकर चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगी। मूर्ति पाते ही आप ऐसे प्रसन्न हो गये, मानो मृतशरीरमें पुन: प्राण प्रविष्ट हो जायँ। आपने उस दुष्ट चोरको तुरंत ही क्षमा कर दिया। आपके क्षमा करते ही चोरपर जूते पड़ने अपने-आप बन्द हो गये। ऐसे परम कारुणिक और सन्तहृदय भक्त थे श्रीपद्मजी!

श्रीमनोरथजी

श्रीमनोरथजी जातिके ब्राह्मण थे और बड़े ही सन्तसेवी गृहस्थ भक्त थे। आपके एक कन्या थी। सयानी होनेपर आपने उसका विवाह एक भक्त ब्राह्मणसे तय किया, परंतु उसके गरीब होनेसे कन्याकी माता और उसका मामा वहाँ विवाह नहीं करना चाहते थे। वे दोनों उसका एक धनी ब्राह्मणसे विवाह करना चाहते थे, परंतु वह अभक्त था, इसलिये आपको पसन्द नहीं था। उधर वह अभक्त ब्राह्मण दुष्ट और लम्पट भी था, उसने ठीक विवाहके दिन बलपूर्वक कन्याका अपहरण कर लिया। इससे आपको बहुत दु:ख हुआ कि मेरी कन्या ऐसे अभक्त और भगवद्विमुख दुष्ट व्यक्तिके साथ कैसे गुजारा करेगी? यह सोचकर आप अपने आराध्यदेवकी मूर्तिके पास जाकर बिलख-बिलखकर रोने लगे। भक्तवत्सल भगवान्‌से अपने भक्तका यह दु:ख न देखा गया। उन्होंने तुरंत उस अभक्तके घरसे कन्याको लाकर आपके सम्मुख उपस्थित कर दिया। आपने तुरंत उस कन्याका भक्त ब्राह्मणके साथ विवाह कर दिया। इस अद्भुत चमत्कारको देखकर सब लोग बहुत प्रभावित हुए। आपके विपक्षी भी आपके शरणागत हो गये और भक्त-भगवत्सेवामें लग गये।

श्रीद्यौगूजी

श्रीद्यौगूजी बड़े ही सन्तसेवी गृहस्थ भक्त थे। आप सन्तसेवाके लिये विविध प्रकारके उद्योग करके बड़े परिश्रमसे धनोपार्जन करते थे, अत: लोग आपको उद्योगीजी कहते थे। जनसाधारणमें वही नाम बिगड़कर द्यौगूजी हो गया। आप बड़े ही सरल स्वभावके व्यक्ति थे। गृहस्थ होते हुए भी सांसारिकतासे दूर, केवल भगवद्भजन और सन्तसेवासे ही प्रयोजन रखते थे।

श्रीचाचागुरु

श्रीचाचागुरुका वास्तविक नाम 'क्षेमदास' था। आप सभी सन्तोंको चाचागुरु कहते थे, अत: आपका नाम श्रीचाचागुरु हो गया। आप बड़े ही सन्तसेवी सद्‌गृहस्थ थे। आपके भक्तिभाव और सरल स्वभावके कारण आपके गाँववासियोंकी आपपर बड़ी श्रद्धा थी। जब आपके यहाँ सन्त लोग आते तो आपके गाँववाले भी उनके लिये यथाशक्ति सीधा-सामान दे जाते थे और सम्यक् रूपसे सन्तसेवा होती थी। इस प्रकार यह क्रम बहुत दिनोंतक चलता रहा, परंतु जब आपके यहाँ रोज ही सन्तमण्डली आने लगी तो गाँववाले भी परेशान होकर कहने लगे कि अब तो आपके यहाँ रोज ही सन्तमण्डली आती है, हम बाल-बच्चेवाले लोग हैं, कहाँतक सहयोग करें। गाँववालोंकी इस प्रकारकी बात सुनकर आपको बड़ी निराशा हुई; क्योंकि आपके भी घरमें कुछ शेष नहीं बचा था। आपको चिन्तामें देखकर भगवान्‌की दिव्य वाणी हुई कि तुम्हारे पास जो धरोहरके रूपमें दूसरेका रजतपात्र रखा है, उसीको बेंचकर सन्तसेवा करो, कोई समस्या आयेगी तो मैं सँभाल लूँगा। आपने तुरंत उस रजतपात्रको बेंच दिया, जिससे पर्याप्त धनकी प्राप्ति हो गयी और उससे आप सन्तसेवा करने लगे।

श्रीसवाईसिंहजी

श्रीसवाईसिंहजी बड़े ही सन्तसेवी और परोपकारी स्वभावके क्षत्रिय राजपूत थे। एक बार एक भक्त-दम्पती वन-मार्गसे कहीं जा रहे थे, उनके पास धन-सम्पत्ति देखकर लुटेरोंने उन्हें लूट लिया। उन भक्त-दम्पतीने पासके गाँवमें जाकर गुहार लगायी। गाँवके अन्य लोगोंको तो लुटेरोंका नाम सुनते ही साँप सूँघ गया, परंतु

सवाईसिंहजीसे भक्तोंका यह कष्ट न देखा गया। उन्होंने तुरंत अपने अस्त्र-शस्त्र लिये और घोड़ेपर सवार होकर अकेले ही लुटेरोंके पीछे सरपट दौड़ चले और ललकारकर कहा कि धन-सम्पत्ति छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा; सन्तोंको दुःख देनेवाला कभी सुखी नहीं रह सकता। अब तो वे आपपर चारों ओरसे प्रहार करने लगे। आपके प्राण संकटमें पड़ गये, परंतु तभी भगवत्कृपाका चमत्कार हुआ। लुटेरोंके अस्त्र-शस्त्र इनके शरीरका स्पर्श करते ही खण्ड-खण्ड हो गये। लुटेरोंको यह देखकर लगा कि हमने किसी भक्तको लूट लिया है, इसीलिये हमपर भगवान्का ही कोप हो गया है। तब वे लोग आपसे रक्षाकी प्रार्थना करते हुए शरणागत हो गये। उन लुटेरोंने न केवल सारा धन वापस कर दिया, बल्कि लूट-डकैतीका काम भी छोड़ दिया और सभी भगवद्भक्त हो गये।

श्रीचाँदाजी

श्रीचाँदाजीका स्थितिकाल विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दी है, आप भगवान्के परम अनुरागी और वीर प्रकृतिके सन्त थे। उस समय देशमें यवनोंका राज्य था। वे लोग हिन्दुओंको पददलित करनेके लिये उनके आस्थाके केन्द्र मठ-मन्दिरोंको नष्ट कर देते थे। एक बार यवनसेना मठ-मन्दिरोंको ध्वस्त करती हुई बढ़ रही थी, उसने चन्द्रसेनपर आक्रमण कर दिया। तब आपने धर्मरक्षार्थ बहुत-से वीरोंको एकत्र किया और बड़ी वीरताके साथ यवनोंसे युद्ध किया। आपके प्रबल प्रहारोंसे यवनसेनाके पैर उखड़ गये और वह परास्त होकर तितर-बितर हो गयी। इसके बाद आपने जोधपुरके गढ़में प्रवेशकर उसे सुरक्षित किया। वैशाख कृ० १०, सं० १६२१ वि० की बात है, रामपोलसे निकलते हुए आपको यवनसेनाने घेर लिया और चारों ओरसे अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहार होने लगे। आपने अपने इष्टदेवका स्मरणकर ऐसा युद्ध किया कि एक भी यवन जीवित न बचा। इस प्रकार श्रीचाँदाजी शास्त्र और शस्त्र दोनोंसे धर्मरक्षा करनेवाले वीरव्रती भक्त थे।

श्रीनापाजी

श्रीनापाजी बड़े ही सन्तसेवी भगवद्भक्त गृहस्थ थे। आपका जन्म खोसाके निकट एक ग्राममें हुआ था और आप जातिसे माली थे। आपके यहाँ सदैव सन्तोंकी मण्डलियाँ आती ही रहती थीं और कथा-कीर्तन एवं सत्संग होता रहता था। प्रभुकृपासे कभी किसी प्रकारकी कमी नहीं होती थी।

श्रीनापाजी गृहस्थ थे, आजीविकाके लिये आप खेती करते थे। आपका ज्यादातर समय सन्तसेवामें ही बीतता था, अतः खेत सूखने लगे। आप-जैसे भक्तका दुःख भगवान्को भी बर्दाश्त नहीं हुआ और वे आपके पुत्रका रूप धारणकर आये और बोले—'पिताजी! आपको अब रात्रिमें खेतोंकी सिंचाई करनेकी आवश्यकता नहीं है, अब आप निश्चिन्त रहिये और मैं दिनमें ही खेतोंकी सिंचाई और खेतीका काम कर दिया करूँगा। आप प्रसन्नतापूर्वक सन्तसेवा कीजिये।' पुत्रकी इस कर्तव्यनिष्ठा और सन्तसेवाके प्रति आदर-भाव देखकर आपको बड़ी प्रसन्नता हुई और आप निश्चिन्त होकर सन्तसेवा करने लगे।

एक दिन आपने देखा कि पुत्र घरपर सो रहा है, आपने सोचा थका होगा, इसलिये आराम कर रहा है और यही सोचकर स्वयं खेतपर चले गये। वहाँ देखा तो पुत्र खेतोंकी सिंचाई कर रहा था, आपको बड़ा आश्चर्य हुआ। चुपचाप घर लौट आये और यहाँ देखा तो पुत्र सो रहा था। अब तो आप समझ गये कि मेरे पुत्रका वेश धारणकर स्वयं परमपिता परमात्मा ही मेरे खेतोंकी देखभाल कर रहे हैं। अब तो आप तुरंत ही वापस अपने खेतोंपर पहुँचे और पुत्ररूपधारी भगवान्का हाथ पकड़कर कहने लगे—'प्रभो! मैं आपको पहचान गया, आप मेरे पुत्र नहीं स्वयं श्रीभगवान् हैं।' पुत्ररूपधारी भगवान्ने कहा—'अरे पिताजी! आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो आपका पुत्र ही हूँ।' परंतु जब आप नहीं माने तो विवश होकर भगवान्को प्रकट होना पड़ा। आपने कहा—'प्रभो! आपको यह सब करनेकी क्या जरूरत थी?' प्रभुने कहा—'नापाजी! आप नित्य प्रति हमारी और हमारे भक्तोंकी सेवा करते हैं, यदि हमने थोड़ी-सी आपकी सहायता कर ही दी तो क्या हो

गया? अरे! मैं तो आपद्वारा की गयी सेवाका ब्याज भी नहीं चुका पाया हूँ।' भक्तवत्सल प्रभुकी बातें सुनकर आपके प्रेमाश्रु छलछला आये और हृदय परमानन्दसे गद्‌गद हो उठा।

श्रीकीताजी

श्रीकीताजी महाराजका जन्म जंगलमें आखेट करनेवाली जातिमें हुआ था, परंतु पूर्वजन्मके संस्कारवश आपकी चित्तवृत्ति भगवत्स्वरूपमें लगी रहती थी। साथ ही आपकी सन्तसेवामें बड़ी प्रीति थी, यहाँतक कि आप सन्तसेवाके लिये भगवद्भक्तिसे विमुख जनोंको जंगलमें लूट भी लिया करते थे और उससे सन्तसेवा करते थे।

परोपकारी भक्त

लछिमन लफरा लडू संत जोधापुर त्यागी।
सूरज कुंभनदास बिमानी खेम बिरागी॥
भावन बिरही भरत नफर हरिकेस लटेरा।
हरिदास अजोध्या चक्रपानि (दियो) सरजू तट डेरा॥
तिलोक पुखरदी बिज्जुली उद्धव बनचर बंसजे।
पर अर्थ परायन भक्त ये कामधेनु कलिजुग्ग के॥ ९८॥

ये भक्तजन इस कलियुगमें भी बड़े ही परोपकारी तथा आश्रितजनोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये कामधेनुके समान हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीलक्ष्मणजी, श्रीलफराजी, श्रीलड्डूजी, जोधपुरके त्यागी श्रीसन्तजी, श्रीसूरजजी, श्रीकुम्भनदासजी, श्रीविमानीजी, श्रीखेम वैरागीजी, श्रीभावनजी, श्रीविरही भरतजी, श्रीनफरजी, श्रीहरिकेशजी लटेरा, श्रीहरिदासजी, श्रीअयोध्या-सरयू-तटवासी श्रीचक्रपाणिजी, श्रीतिलोक सुनारजी, श्रीपुखरदीजी, श्रीबिज्जुलीजी, वनचर (श्रीहनुमान्) वंशमें उत्पन्न श्रीउद्धवजी॥ ९८॥

इन परोपकारी भक्तोंमेंसे कुछ भक्तोंके चरित्र इस प्रकार हैं—

श्रीलड्डूजी

श्रीलड्डूजी महाराज बड़े ही परोपकारी एवं भगवद्भक्त वैष्णव सन्त थे। दूसरेके दु:खोंको दूर करना आपका सहज स्वभाव था। आपके समयमें बंगाल प्रान्तके एक गाँवमें प्राय: भगवद्विमुख नास्तिक लोग ही रहते थे। इन्हें हिंसा करनेमें लेशमात्रका भी पाप-भय नहीं था; यहाँतक कि पशुबलि क्या, मानवबलि देनेमें भी उनको हिचक नहीं होती थी।

कहते हैं कि जिस समय आप उन विमुखोंके देश पहुँचे, उस समय वहाँके राजाने देवीको बलि देनेके लिये किसी मनुष्यको पकड़ लानेके लिये अपने कर्मचारियोंको भेजा था। राजकर्मचारी एक गरीब ब्राह्मणके बालकको पकड़कर ले जा रहे थे। उसके माता-पिता करुण क्रन्दन कर रहे थे। उसी समय आप वहाँ पहुँच गये। दीन ब्राह्मण-दम्पती आपकी शरणमें आये और पुत्रकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। ब्राह्मणकी करुण प्रार्थना, ब्राह्मणीके क्रन्दन और बालककी दीनता देखकर आपका सन्त हृदय द्रवित हो उठा। आपने ब्राह्मण बालकको मुक्त करा दिया और उसकी जगहपर स्वयं बलिदान होनेके लिये तैयार हो गये। राजकर्मचारी आपको पकड़कर देवीके सम्मुख ले गये। देवी भक्तको बलिके लिये आया देखकर अत्यन्त कुपित हुईं और उन्होंने उन राजकर्मचारियोंका ही वध कर डाला।

इस घटनाका भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

लड्डू नाम भक्त जाय निकसे विमुख देश लेसहूँ न सन्तभाव जानै पाप पागे हैं।
देवी कों प्रसन्न करैं मानुस को मारि धरैं लै गये पकरि तहां मारिबे कों लागे हैं॥
प्रतिमाको फारि बिकरारि रूपधारि आई लै कै तरवार मूंड काटे भीजे बागे हैं।
आगे नृत्य करै, दृग भरै साधु पांव धरै ऐसे रखवारे जानि जन अनुरागे हैं॥ ४०४॥

श्रीसन्तजी

भक्त श्रीसन्तजीका साधु-सेवामें बड़ा प्रेम था। इन्होंने गाँव-गाँवसे भिक्षा लाकर सन्त-सेवा करनेका नियम ले रखा था। एक बार ये किसी गाँवमें भिक्षा लेने गये थे। इसी बीच घरपर सन्तोंकी जमात आ गयी। सन्तोंने इनकी पत्नीसे पूछा कि 'सन्तजी कहाँ हैं?' तो पत्नीने प्रमादपूर्वक कहा कि 'वे चूल्हेमें गये।' पत्नीकी वाणी सुनकर सन्त जान गये कि इसका साधु-सन्तोंमें भाव नहीं है, अतः वहाँसे चल दिये। संयोगसे मार्गमें श्रीसन्तजी मिल गये। सन्तोंने पूछा—'आप कहाँ रहे?' उस समय सन्तजीके हृदयमें साक्षात् भगवान् ही बैठकर बोले—'हमारी पत्नीने जो कहा है, वह सत्य कहा है। सचमुच मेरे मनमें चूल्हेकी आँचका ही ध्यान हो रहा था।' फिर श्रीसन्तजी सन्तोंको पुनः घर लौटा लाये और भगवत्प्रसाद पवाकर उन्हें आनन्दमें मग्न कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सदा साधुसेवा अनुराग रंग पागि रह्यौ गह्यौ नेम भिक्षा व्रत गांव गांव जाय कै।
आये घर संत पूछैं तिया सों यों संत कहां? 'संत चूल्हे मांझ' कही ऐसे अलसाय कै॥
बानी सुनि जानी, चले मग सुखदानी मिले कही कित हुते? सो बखानी उर आय कै।
बोली वह सांच, वही आंच ही कौ ध्यान मेरे आनिगृह फेरि किये मगन जिंवाय कै॥ ४०५॥

श्रीतिलोकजी सुनार

श्रीतिलोकभक्तजी पूर्व देशके रहनेवाले थे और जातिके सोनार थे। इन्होंने हृदयमें भक्तिसार—सन्त-सेवाका व्रत धारण कर रखा था। एक बार वहाँके राजाकी लड़कीका विवाह था। उसने इन्हें एक जोड़ा पायजेब बनानेके लिये सोना दिया, परंतु इनके यहाँ तो नित्यप्रति अनेकों सन्त-महात्मा आया करते थे, उनकी सेवासे इन्हें किंचिन्मात्र भी अवकाश नहीं मिलता था, अतः आभूषण नहीं बना पाये। जब विवाहके दो दिन ही रह गये और आभूषण बनकर नहीं आया तो राजाको क्रोध हुआ और सिपाहियोंको आदेश दिया कि तिलोक सुनारको पकड़ लाओ। सिपाहियोंने तुरंत ही इन्हें पकड़कर लाकर राजाके सम्मुख कर दिया। राजाने इन्हें डाँटकर कहा कि 'तुम बड़े धूर्त हो। समयपर आभूषण बनाकर लानेको कहकर भी नहीं लाये।' इन्होंने कहा—'महाराज! अब थोड़ा काम शेष रह गया है, अभी आपकी पुत्रीके विवाहके दो दिन शेष हैं। यदि मैं ठीक समयपर न लाऊँ तो आप मुझे मरवा डालना'।

राजाकी कन्याके विवाहका दिन भी आ गया, परंतु इन्होंने आभूषण बनानेके लिये जो सोना आया था, उसे हाथसे स्पर्श भी नहीं किया। फिर इन्होंने सोचा कि समयपर आभूषण न मिलनेसे अब राजा मुझे जरूर मार डालेगा, अतः डरके मारे जंगलमें जाकर छिप गये। यथासमय राजाके चार-पाँच कर्मचारी आभूषण लेनेके लिये श्रीतिलोकजीके घर आये। भक्तके ऊपर संकट आया जानकर भगवान्ने श्रीतिलोक भक्तका रूप धारणकर अपने संकल्पमात्रसे आभूषण बनाया और उसे लेकर राजाके पास पहुँचे। वहाँ जाकर राजाको पायजेबका जोड़ा दिया। राजाने उसे हाथमें ले लिया। आभूषणको देखते ही राजाके नेत्र ऐसे लुभाये कि देखनेसे तृप्त ही नहीं होते थे। राजा श्रीतिलोकजीपर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उनकी पहलेकी सब भूल-चूक माफ कर दी और उन्हें बहुत-सा धन पुरस्कारमें दिया। श्रीतिलोकरूपधारी भगवान् मुरारी इस प्रकार धन लेकर श्रीतिलोक भक्तके घर आकर विराजमान हुए।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

पूरबमें ओकसो तिलोक हो सुनार जाति पायो भक्तिसार साधुसेवा उर धारियै।
भूपके विवाह सुता जोरौ एक जेहरिकौ गढ़िबेकौ दियौ कह्यौ नीके कै सँवारियै॥
आवत अनन्त सन्त औसर न पावै किहूँ रहे दिन दोय भूप रोष यों संभारियै।
ल्यावो रे पकरि, ल्याये, छाड़िये मकर, कही नेकु रह्यो काम आवै नातो मारि डारियै॥ ४०६॥

आयो वही दिन कर छुयौ हूं न इन नृप करै प्रान बिन बन मांझ छिप्यौ जायकै।
आये नर चारि पांच जानी प्रभु आँच गढ़ि लियौ सो दिखायौ सांच चले भक्तभायकै॥
भूपको सलाम कियो जेहरिकौ जोरौ दियौ लियो कर देखि नैन छोड़ैं न अघायकै।
भई रीझि भारी सब चूक मेटि डारी धन पायो लै मुरारी ऐसे बैठे घर आयकै॥ ४०७॥

श्रीतिलोकरूपधारी भगवान्ने दूसरे दिन प्रात:काल ही महान् उत्सव किया। उसमें अत्यन्त रसमय, परम स्वादिष्ट अनेकों प्रकारके व्यंजन बने थे। साधु-ब्राह्मणोंने खूब पाया। फिर भगवान् एक सन्तका स्वरूप धारणकर झोलीभर सीथ—प्रसाद लिये हुए वहाँ गये, जहाँ श्रीतिलोक भक्त छिपे बैठे थे। श्रीतिलोकजीको प्रसाद देकर सन्त रूपधारी भगवान्ने कहा—'श्रीतिलोक भक्तके घर गया था। उन्होंने ही खूब प्रसाद पवाया और झोली भी भर दी।' श्रीतिलोक भक्तने पूछा—कौन तिलोक? भगवान्ने कहा—'जिसके समान त्रैलोक्यमें दूसरा कोई नहीं है।' फिर भगवान्ने पूरा विवरण बताया। सन्तरूपधारी भगवान्के वचन सुनकर श्रीतिलोकजीके मनको शान्ति मिली। फिर भगवत्प्रेममें मग्न श्रीतिलोकजी रात्रिके समय घर आये। घरपर साधु-सन्तोंकी चहल-पहल तथा घरको धन-धान्यसे भरा हुआ देखकर श्रीतिलोकजीका श्रीप्रभुके श्रीचरणोंकी ओर और भी अधिक झुकाव हो गया। वे समझ गये कि श्रीप्रभुने मेरे ऊपर महान् कृपा की है, निश्चय ही मेरे किसी महान् भाग्यका उदय हुआ है।

श्रीप्रियादासजी श्रीतिलोकजीपर भगवान्की इस कृपाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

भोरही महोछौ कियौ, जोई मांगे सोई दियौ नाना पकवान रसखान स्वाद लागे हैं।
सन्तकौ सरूप धरि लै प्रसाद गोद 'भरि गये तहां' पावै जू तिलोक गृह पागे हैं॥
कौनसो तिलोक? अरे दूसरो तिलोक मैं न बैन सुनि चैन भयो आये निसि रागे हैं।
चहल पहल धन भर्‍यौ घर देखि ढर्‍यौ प्रभुपद कंज जानौ मेरे भाग जागे हैं॥ ४०८॥

श्रीलक्ष्मणजी

परम सन्तसेवी श्रीलक्ष्मणजी सन्तोंके रहनेके लिये निवास-स्थान बनवा रहे थे, छतका पटाव हो गया था, परंतु वह अभी परिपक्व नहीं हुआ था कि छतकी आधारभूता एक बल्ली टूट गयी। लोगोंको बड़ी चिन्ता हुई कि अब तो छत गिर जायगी अथवा नीचेको धँस जायगी। अब तो इसे फिरसे बनवाना पड़ेगा आदि। श्रीलक्ष्मणजीने सबको समझाया कि आप लोग चिन्ता नहीं करें, श्रीहरिकृपासे कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। सचमुच प्रात:काल जब सबने देखा तो बल्लीमें टूटनेका निशान भी नहीं था, छत ज्यों-की-त्यों दुरुस्त थी! सब लोग भगवान्की इस प्रत्यक्ष कृपापर आश्चर्य करने लगे। ऐसे अनन्य निष्ठावान् और सन्तसेवी भक्त थे श्रीलक्ष्मणजी!

श्रीलफराजी (श्रीलफरा गोपालदेवाचार्यजी)

आप निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीस्वामी हरिव्यास-देवाचार्यजीके कृपापात्र थे। आप स्वभावसे बड़े विरक्त एवं अलमस्त थे। एक बार श्रीगुरुदेवजीने आपको एक आश्रमकी देख-रेखका भार सौंपा। यद्यपि इस कार्यमें आपकी अभिरुचि बिलकुल नहीं थी, फिर भी श्रीगुरुदेवजीसे संकोचवश आप इनकार नहीं कर सके। अत: कुछ दिन तक तो आपने जैसे-तैसे आश्रमका कार्य सँभाला, फिर दस दिनके लिये तीर्थयात्राका बहाना बनाकर श्रीगुरुदेवजीसे आज्ञा लेकर आप आश्रमसे निकले तो फिर लौटकर आश्रमपर गये ही नहीं। श्रीगुरुजीने कुछ दिनतक तो इनकी प्रतीक्षा की, परंतु ये जब नहीं आये तो उन्होंने प्रसंग चलनेपर इन्हें 'लफरा' कहा। वही नाम पड़ गया।

श्रीकुम्भनदासजी

श्रीकुम्भनदास परम भगवद्भक्त, आदर्श गृहस्थ और महान् विरक्त थे। वे नि:स्पृह, त्यागी और महासन्तोषी व्यक्ति थे। उनके चरित्रकी विशिष्ट अलौकिकता यह थी कि भगवान् साक्षात् प्रकट होकर उनके साथ सखाभावकी

क्रीड़ाएँ करते थे।

कुम्भनदासका जन्म गोवर्धनके सन्निकट जमुनावतो ग्राममें संवत् १५२५ वि० में चैत्र कृष्ण एकादशीको हुआ था। वे गोरवा क्षत्रिय थे। उनके पिता एक साधारण श्रेणीके व्यक्ति थे। खेती करके जीविका चलाते थे। कुम्भनदासने भी पैतृक वृत्तिमें ही आस्था रखी और किसानीका जीवन ही उन्हें अच्छा लगा।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी उनके दीक्षा-गुरु थे। संवत् १५५० वि० में आचार्यकी गोवर्धन-यात्राके समय उन्होंने ब्रह्मसम्बन्ध लिया था।

श्रीनाथजीके शृंगारसम्बन्धी पदोंकी रचनामें उनकी विशेष अभिरुचि थी। महाप्रभु वल्लभाचार्यके लीला-प्रवेशके बाद कुम्भनदास गोसाईं विट्ठलनाथके संरक्षणमें रहकर भगवान्‌का लीला-गान करने लगे। विट्ठलनाथजी महाराजकी उनपर बड़ी कृपा थी। वे मन-ही-मन उनके निर्लोभ-जीवनकी सराहना किया करते थे। संवत् १६०२ वि० में अष्टछापके कवियोंमें उनकी गणना हुई।

श्रीखेमदासजी

प्राणिमात्रका क्षेम-कुशल चाहते हुए श्रीखेमदासजी बड़े भावसे सन्तसेवा करते थे। एक बार सन्तोंके आनेपर एक वैश्यके यहाँसे सीधा-सामान लेकर आ रहे थे तो मार्गमें एक ब्राह्मणने व्यंग्य किया—'माला पहन लिये तिलक लगा लिये, बस, बाबाजी बन गये। कुछ करना न धरना, फोकटका माल खाते हैं और मटरगश्ती करते हैं। अरे, सच्चे साधु तो ये बैल हैं। इन्हें जो दो, जितना दो, उतना ही खाते हैं और खूब हल खींचते हैं, भार ढोते हैं।' श्रीखेमदासजीने मुसकुराकर कहा—'तुम ठीक कहते हो। देखो, तुम्हारा एक बैल चोरी चला गया है, यदि मैं उसके बदले तुम्हारे हलमें चलूँ तब तो तुम मुझे सच्चा साधु मानोगे।' उसने कहा—'हाँ, यदि आप भी बैलका-सा परोपकार करें तो मैं मान लूँगा कि आप भी सच्चे सन्त हैं।' श्रीखेमदासजी सन्तोंकी व्यवस्था करके उस ब्राह्मणके हलमें जुतकर बैलके साथ हल खींचने लगे। भगवान्‌से भक्तका यह महाश्रम देखा नहीं गया। तुरंत प्रभु-प्रेरणासे उस ब्राह्मणका चोरी गया बैल वहाँ आकर खड़ा हो गया, तब श्रीखेमदासजीने ब्राह्मणको क्षमादान देते हुए सन्त-सेवाका उपदेश दिया। ब्राह्मण भी भक्त हो गया।

श्रीहरिदासजी

श्रीहरिदासजी श्रीअयोध्याधाममें निवास करते थे। आप भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। श्रीहरि-इच्छासे जो कुछ भी अपने-आप सहज रूपसे प्राप्त हो जाता, उसीसे सन्त-सेवा करते थे। एकबार सन्तोंकी बहुत बड़ी जमात इनके स्थानपर आयी। कुटीमें एक छटाँक भी सीधा-सामान नहीं था। ये बड़े चिन्तित हुए। तब इनकी चिन्ता दूर करनेके लिये प्रभुने अपने श्रीचरणकमलसे पाँच मुहरें प्रकट कर दीं। प्रभुकी ऐसी कृपा देख आप बड़े प्रसन्न हुए। उन्हीं मुहरोंसे उन्होंने खूब सन्तोंकी सेवा की।

श्रीउद्धवजी

अनन्य श्रीरामभक्त श्रीउद्धवजी स्वयं श्रीहरि और हरिजन—दोनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहते ही थे, दूसरोंको भी यही उपदेश देते थे। इनके उपदेशसे प्रभावित होकर एक राजाने सन्तसेवाका व्रत लिया था। वेषमात्रमें उसकी अपार निष्ठा हो गयी थी। एक दुष्ट राजाकी इस निष्ठाका अनुचित लाभ उठाकर महलमें रहने लगा। एक दिन मौका देखकर वह रात्रिके समय राजमहलकी एक युवतीको ले भागा। इससे राजाको बड़ा रोष हुआ। उसने श्रीउद्धवजीको उपालम्भ दिया कि आपके कहनेसे मैंने सन्त-सेवा प्रारम्भ की थी और देखिये ये सन्तवेषधारी ऐसे-ऐसे घृणित कार्य करते हैं। श्रीउद्धवजीने राजाको धैर्य बँधाया। निष्ठापर दृढ़ रहनेके लिये जोर दिया और उस युवतीका आकर्षण किया। श्रीहरि-कृपासे वह युवती आकाश-मार्गसे राजमहलमें आ गयी। तब तो राजाकी सन्तसेवामें और भी दृढ़ निष्ठा हो गयी तथा श्रीउद्धवजीके प्रति भी उसकी श्रद्धा बढ़ गयी।

श्रीबीठलदासजी

आदि अंत निर्बाह भक्त पद रज ब्रतधारी।
रह्यो जगत सों ऐंड़ तुच्छ जानै संसारी॥
प्रभुता पति की पधति प्रगट कुल दीप प्रकासी।
महत सभा मैं मान जगत जानै रैदासी॥
पद पढ़त भई परलोक गति गुरु गोबिंद जुग फल दिया।
बिठलदास हरि भक्ति के दुहूँ हाथ लाडू लिया॥ १७७॥

श्रीबीठलदासजीने भगवद्भक्तिके दोनों फलों (लोकमें सन्तसेवा परलोकमें प्रभुसेवा)-को प्राप्त किया। आपने आदिसे अन्ततक अर्थात् जीवनभर भक्तोंकी चरणरजको प्रतिज्ञापूर्वक सिरपर धारण किया अर्थात् सब प्रकारसे सन्तोंकी सप्रेम सेवा की। अहंकारी धनिकों और विमुखोंको आपने तुच्छ जाना, कभी उनकी खुशामद नहीं की। सर्वदा भगवद् बलपर उनसे ऐंठकर ही चलते थे। आप प्रभुताके पतिकी पद्धतिमें (अर्थात् श्रीसम्प्रदायमें श्रीरैदासजीकी प्रणालीसे सन्तसेवा करके) अपने कुलके दीपक हुए। सभी जानते थे कि आप रैदासवंशी हैं, परंतु बड़ी-बड़ी सभाओंमें बड़े-बड़े महापुरुष आपका सम्मान करते थे। भगवल्लीलापदोंको पढ़ते-पढ़ते आपने शरीर छोड़ा और भगवद्धामको प्राप्त किया। आपपर प्रसन्न होकर श्रीगुरु और गोविन्द दोनोंने दो फल दिये, अतः आपके दोनों हाथोंमें हरिभक्तिके लड्डू रहे॥ १७७॥

भगवद्भक्तोंके भक्त

क्वाहब श्रीरँग सुमति सदानंद सर्बसु त्यागी।
स्यामदास लघुलंब अननि लाखै अनुरागी॥
मारू मुदित कल्यान परसबंसी नारायन।
चेता ग्वाल गुपाल सँकर लीला पारायन॥
सन्त सेय कारज किया तोषत स्याम सुजान कों।
भगवंत रचे भारी भगत भक्तनि के सनमान कों॥ १७८॥

भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेके लिये भगवान्ने इन सन्तोंको प्रकट किया। इन सन्तोंने भक्तोंकी सेवाके द्वारा भगवान्को प्रसन्न किया। श्रीक्वाहबजी, सुन्दर मतिवाले श्रीरंगजी, सन्तसेवाके लिये सर्वस्वका त्याग करनेवाले श्रीसदानन्दजी, लघुलम्ब (बौने) श्रीश्यामदासजी, अनन्य भक्त श्रीलाखाजी, मारु रागके प्रवीण गायक श्रीकल्याणजी, परसवंशमें उत्पन्न श्रीनारायणजी, श्रीचेताजी, श्रीग्वालजी, श्रीगोपालजी और भगवान्की लीलाओंके प्रेमी श्रीशंकरजी—इन भक्तोंने सन्तसेवा रूप महान् कार्य किया। उससे सुजान श्यामसुन्दर सन्तुष्ट हुए॥ १७८॥

भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेवाले इन भक्तोंमेंसे कुछका चरित इस प्रकार है—

श्रीसदानन्दजी

आप बड़े प्रेमसे सन्त-सेवा करते थे। आप सर्वस्व त्यागकर भी सन्तोंको सन्तुष्ट करना अपना कर्तव्य समझते थे। एक बार एक सन्त इनके पास आकर बोले—मैं बड़ा अभागी हूँ। मेरे पास रहनेके लिये घर नहीं है। जो था वह भी छिन गया। खाने-पहननेके लिये

अन्न-वस्त्र नहीं है, अतः मेरे रहने और खाने-पीनेका प्रबन्ध कर दीजिये। श्रीसदानन्दजीने कहा—आप अपने कुटुम्बके साथ आज ही मेरे स्थानमें आ जाइये, रहिये, खाइये। मैं अपने लिये वनमें एक झोपड़ी बना लूँगा। ऐसा कहकर अपना सर्वस्व उसे सौंपकर स्वयं वनमें जाकर रहने लगे। भगवान्ने अपने एक धनी भक्तको स्वप्नादेश दिया कि 'मेरा प्रिय भक्त सदानन्द वनमें रह रहा है। एक आश्रम बनवाकर उसमें उसे रखो।' उसने आश्रम बनवाकर इन्हें रखा और खर्चेके लिये सीमित सीधा-सामान भी देने लगा, पर इनके यहाँ सन्तोंकी भीड़ अधिक होती। कभी-कभी सामानकी कमी पड़ने लगी। एक दिन आप उस स्थानको छोड़कर कहीं चले गये। इनके जाते ही साधुओंकी बड़ी जमात आ गयी। तब भगवान् सदानन्दजीका रूप धारण करके आये और उन्होंने सभी सन्तोंकी खूब सेवा की तथा आश्रमको अन्न-धनसे भर दिया। फिर वैश्य भक्तका रूप बनाकर श्रीसदानन्दजीके पास आये और बोले—अरे! आप यहाँ कैसे आ गये? अभी तो आप सन्तोंकी पंगत करा रहे थे। मैंने देखा है, आपके आश्रममें ऋद्धि-सिद्धिके भण्डार भरे हैं। पंगत करके सन्तोंने वरदान दिया है कि सदानन्द! तुम्हारे यहाँ सदा ही आनन्द रहेगा। कभी किसी वस्तुकी कमी न होगी। यह सुनकर आप आये और मन-ही-मन अपने आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपाकी अनुभूति की।

श्रीनारायणदासजी

आपकी सन्त-सेवामें बड़ी प्रीति थी। एकबार एक राजा आश्रमके समीप हरे वृक्षोंको कटवा रहा था। श्रीनारायणदासजीने मना किया, पर वह नहीं माना। राजकर्मचारी पेड़ काटने लगे। तब आप पेड़के समीप खड़े हो गये और बोले कि मैं पेड़को नहीं काटने दूँगा। पेड़ काटना जीवहत्याके समान है। राजकर्मचारियोंको क्रोध आ गया। एकने श्रीनारायणदासजीपर जैसे ही प्रहार किया, वैसे ही स्वयं चिल्लाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और छटपटाने लगा। इस समाचारको सुनकर राजा भी वहीं आ गया। प्रहार करनेवालेको चोट लगी। सन्त जीवकी रक्षा कर रहे थे, अतः उन्हें चोट नहीं लगी। इस चमत्कारसे प्रभावित होकर राजाने श्रीनारायणदासजीका विशेष सत्कार किया और इनके उपदेशोंको स्वीकार किया। केवल प्राणियोंके प्रति ही नहीं, वृक्षोंके प्रति भी इनके मनमें करुणा थी।

श्रीशंकरजी

सन्तसेवी श्रीशंकरजी एकबार अपने गाँवसे बाहर दूसरे गाँवमें गये हुए थे। वहाँपर आपने किसी सेठके द्वारपर कई साधुओंको देखा। निकट जाकर दण्डवत् प्रणाम करनेके बाद पूछनेपर मालूम हुआ कि सन्तजन गेहूँका आटा और कुछ घी भगवान्के भोगके लिये माँग रहे हैं और वह सेठ बेझड़के आटेकी पर्ची दे रहा है। श्रीशंकरजीने उससे कहा कि—तेरी गाँठसे क्या जा रहा है? पर्ची तुम्हें बनानी है। सामान पंचायती मिलना है। गेहूँका ही आटा और थोड़ा घी दे दो। सन्त-सेवा हो जायगी, इसमें तुम्हारी क्या हानि होगी? यह सुनकर सेठने क्रुद्ध होकर कहा—'यदि आप ऐसे बड़े सन्तसेवी हैं तो इन्हें ले जाइये और मनमाना भोजन कराइये।' इसपर आपने सन्तोंसे विनती करके कहा—भगवन्! आप लोग मेरे यहाँ चलिये। अश्रद्धालुका अन्न लेना उचित नहीं है। आपके पास आवश्यक सीधा-सामान न था। इसलिये घरका कुछ सामान बेचकर आपने गेहूँका आटा और घी आदि लाकर सन्तोंको दिया। सन्तोंने भोग लगाया, पाया। आपकी इस सेवा-निष्ठापर प्रसन्न होकर भगवान् एक वैश्यका रूप धारण करके आये और एक पात्रमें भरकर मुहरें देते हुए बोले कि—हमें प्रभुकी आज्ञा हुई है, अतः हम यह धन सन्त-सेवाके निमित्त देते हैं, आप स्वीकार करें। ऐसा कहकर वे तुरंत अन्तर्धान हो गये। तब आपने जाना कि ये तो स्वयं प्रभु ही थे। कृपा करके आये और सन्त-सेवाका उपदेश दे गये।

श्रीलाखाजी

ये गुनीर गाँव हँसुवा फतेहपुरके निवासी अध्वर्यु ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम श्रीपरमानन्द था। गुनीर गाँव गंगाजीके तटपर बसा हुआ है, वहीं झोंपड़ी बनाकर

श्रीलाखादासजी रहते थे। इनका गंगा-स्नान करनेका नित्य-नियम था। दैवयोगसे एकबार गंगाजी कुटीसे दूर हट गयीं। उस समय ये पूर्ण वृद्ध हो चुके थे, फिर भी नित्य स्नान करने जाते थे। ग्रीष्मसे तप्त रेती और उसपर नंगे पैर धीरे-धीरे चलना, उनकी कठिन तपश्चर्या थी। आने-जानेमें असमर्थ होकर एक दिन इन्होंने प्रार्थना की—'मातः गङ्गे! अब आप अपने पूर्वस्थानपर पधारें, यदि नहीं चलेंगी तो मैं भी कुटियापर नहीं जाऊँगा।' गंगाकी धारासे आवाज आयी—'तुम चलो, मैं आ रही हूँ।' यह सुनकर प्रसन्नचित्त आप कुटीपर आये। पीछेसे गंगाजीकी धारा भी कुटीके निकट आ गयी। इस घटनाको देखकर दर्शक चकित हो गये। इनका सुयश चारों ओर फैल गया।

श्रीलाखादासजीने अपने ग्रन्थमें गुरु-परम्पराका उल्लेख किया है और अपनेको श्रीवर्द्धमान एवं गंगलभट्टाचार्यकी परम्पराका अनुवर्ती लिखा है। कई स्थानोंपर हरिनारायण आदि शब्दोंके साथ गुरु शब्दोंको जोड़कर हरि-गुरुनिष्ठाका परिचय दिया है। इन्हें श्रीरूपनारायणजीसे सम्प्रदायकी शिक्षा और श्रीहरिव्यास-देवाचार्यजीसे दीक्षा प्राप्त हुई थी।

श्रीहरीदासजी

सरनागत कों सिबिर दान दाधीच टेक बलि।
परम धरम प्रहलाद सीस जगदेव देन कलि॥
बीकावत बानैत भक्त पन धर्म धुरंधर।
तूँवर कुल दीपक्क संत सेवा नित अनुसर॥
पार्थ पीठ आचरज कौन सकल जगत में जस लियो।
तिलक दाम परकास कों हरीदास हरि निर्मयो॥ १७९॥

तिलक-कण्ठीधारी वैष्णवोंकी सेवाके वास्ते ही भगवान्‌ने इस पृथ्वीपर श्रीहरीदासजीको प्रकट किया। शरणागतकी रक्षा करनेमें आप राजा शिविके समान थे। दान देनेमें श्रीदधीचि ऋषिके समान, प्रतिज्ञाको निभानेमें राजा बलिके समान, वैष्णव धर्मका पालन करनेमें श्रीप्रह्लादजीके समान और रीझकर सिर देनेमें श्रीजगदेवजीके समान थे। श्रीबीकाजीके वंशमें प्रसिद्ध शूरवीर थे। भक्तोचित प्रण और धर्मका पालन करनेमें अतिश्रेष्ठ थे। तूँवर क्षत्रिय कुलके दीपक और नित्य सन्तसेवामें तत्पर रहनेवाले थे। अर्जुन और परीक्षित्‌के वंशमें उत्पन्न श्रीहरीदासजीमें ऐसे गुणोंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अपनी दृढ़ भक्तिके कारण आपने सारे संसारमें सुयश प्राप्त किया॥ १७९॥

श्रीहरीदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीप्रह्लादजी, श्रीशिविजी, श्रीदधीचिजी और श्रीबलिजी—इन भगवद्भक्तोंके गुण श्रीमद्भागवतमें वर्णन किये गये हैं। श्रीहरीदासजीमें ये सभी गुण एक स्थानपर ही दिखलायी पड़ते हैं। टीकाकार श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि मूल छप्पयमें श्रीनाभाजीने रीझनेमें श्रीहरीदासजीको श्रीजगदेवजीके समान कहा है, परंतु कलियुगके भक्त श्रीजगदेवजीके रीझनेके प्रसंगको प्रायः सब लोग नहीं जानते हैं। मैंने उसे किसी सन्तसे जैसा सुना है, वैसा यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ। उत्तम रूप और गुणोंसे युक्त एक नटी थी। वह साक्षात् शक्ति कालीदेवीका स्वरूप ही थी। जब वह गाती थी, तो सुननेवालोंको सुननेकी बड़ी भारी चटपटी लग जाती थी और उसकी मधुर-मुसकान देखकर वे मोहित हो जाते थे। रिझवार राजा श्रीजगदेवजीने एक बार उस नटीका अद्‌भुत नृत्य देखा और मधुर गानको सुना तो वह उसपर रीझ गया। जब उसने पुरस्कार देनेका विचार किया तो कोई भी वस्तु उसके योग्य न दिखायी पड़ी। अन्तमें उसने नटीसे कहा—मैंने अपना सिर तुम्हें दिया, जब चाहो, तब इसे ले सकती हो। अब यह मेरा नहीं है, तुम्हारा है।

श्रीजगदेवजीके द्वारा दिये गये मस्तकदानको स्वीकारकर उस नटीने कहा—'मैंने भी अपना दाहिना हाथ आपको दिया। अब इस हाथको फैलाकर न तो किसीसे कुछ माँगूँगी और न लूँगी।' कुछ दिनोंके बाद किसी एक राजाने सुना कि उस नटीने राजा जगदेवसे ऐसा कुछ इनाम पाया है कि उसके बदले अपना दाहिना हाथ उन्हें दे दिया। अब मैं उस नटीको अधिक इनाम देकर जगदेवके इनामको तुच्छ कर दूँ। इस विचारसे उस राजाने नटीको नृत्य करनेके लिये अपने दरबारमें बुलाया। नटीने अपना नृत्य-गान प्रस्तुत किया, तब उस राजाने प्रसन्न होकर नटीको कुछ इनाम देना चाहा। नटीने लेनेके लिये अपना बायाँ हाथ फैलाया। इसपर राजाने रुष्ट होकर कहा—'हमारा इतना अपमान।' नटीने कहा—'मैं अपना दाहिना हाथ राजा जगदेवजीको दे चुकी हूँ, अतः दाहिने हाथमें किसीसे कुछ नहीं ले सकती हूँ।' उस राजाने पूछा—'राजा जगदेवजीसे ऐसी कौन-सी अलभ्य वस्तु मिली है ? तुम उस वस्तुको मुझे दिखा दो और उससे दसगुनी वस्तु मुझसे ले लो।' नटीने कहा—दूसरा कोई वैसी वस्तु नहीं दे सकता है।

उस राजाको नटीने बहुत समझाया, परंतु वह नहीं माना। उसे जिद सवार हो गयी। उसने बार-बार उस वस्तुको लाकर दिखानेका हठ किया। तब नटी बारह वर्ष बाद परम बड़भागी राजा जगदेवके पास गयी और बोली—'राजन्! मेरी वस्तु मुझे दीजिये।' राजाने सिर काटकर नटीको दे दिया। नटीने धड़को न जलानेका आदेश देकर सुरक्षित रखवा दिया और उस पुरस्कारको थालमें ढककर उस राजाके पास ले आयी और दिखाकर बोली—'इसे देख लीजिये और इससे दसगुनी या बराबर ही दीजिये।' सिरको देखते ही वह राजा मूर्च्छित हो गया और पृथ्वीपर गिर पड़ा। अनेक उपचारोंसे उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब उसने कहा—'मैंने तो यह समझा था कि धन मिला होगा, अतः उससे दसगुना देनेको कहा, किन्तु यहाँ धनकी बात नहीं रही। अब मैं क्या करूँ और क्या दूँ, मेरे वशकी बात नहीं है।' नटीने कहा—'ऐसे अमूल्य पुरस्कारके बदले ही मैंने अपना दाहिना हाथ राजा जगदेवको दिया है।' राजा लज्जित हो गया, इसके पश्चात् नटीने आकर राजा जगदेवके धड़से उनका सिर जोड़ दिया और जिस पदपर रीझकर उन्होंने अपना सिर दिया था, उसी पदको गाया। तानके साथ आलापको सुनकर राजा जगदेव जीवित हो गये।

राजा जगदेवजीकी रिझवार निष्ठाका वृत्तान्त एक बड़े (यवन) राजाकी लड़कीने सुना तो वह उनमें आसक्त हो गयी और उसने अपने पितासे कहा कि 'मेरा विवाह आप राजा जगदेवजीके साथ कर दीजिये।' उसने जगदेवजीको बुलाकर अनेक प्रकारसे समझा-बुझाकर स्पष्ट कहा कि 'आप मेरी पुत्रीके साथ विवाह कर लीजिये।' श्रीजगदेवजीने स्वीकार नहीं किया। राजाने पुनः-पुनः आग्रह किया, परंतु इन्होंने हर बार मना ही किया। तब उस राजाने जगदेवजीको मार डालनेकी आज्ञा दी। बधिक लोग मारनेके लिये ले जा रहे थे, राजकन्याने देखा तो वह बोली कि 'इनको मत मारो, मेरा इनमें अनुराग है। इन्हें मेरे सामने लाओ।' सामने लाये जानेपर राजकन्याने इनको अपनी ओर देखनेके लिये बाध्य किया। परंतु श्रीजगदेवजीने राजकन्याकी ओर नहीं देखा, तो रुष्ट होकर उसने भी इन्हें मार डालनेकी अनुमति देकर कहा कि 'इनके सिरको काटकर मेरे पास ले आओ।' बधिकोंने ऐसा ही किया। राजकन्या अपने सामने कटे सिरको रखकर जब उसकी ओर देखने लगी तो वह सिर राजपुत्रीके सामनेसे घूम गया। इस धर्मनिष्ठापर सभी लोग रीझ गये।

श्रीप्रियादासजीने राजा जगदेवसे सम्बन्धित इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रहलाद आदि भक्त गाए गुण भागवत सब इक ठौर आये देखे 'हरिदास' मैं।
रीझि 'जगदेव' सो यों कहिकै बखान कियौ, जानत न कोऊ सुनौ कर्‌यौ लै प्रकास मैं॥
रहै एक नटी सक्तिरूप गुण जटी गावै लागै चटपटी मोह पावै मृदु हांस मैं।
राजा रिझवार करै देवे को विचार, पै न पावै सार काटै सीस राख्यौ तेरे पास मैं॥ ६०४॥

दियौ कर दाहिनौ मैं, यासों नहीं जाचौं कहूँ, सुनि एक राजा भेद भाव सों बुलाई है।
नृत्य करि गाई रीझि 'लेवौ कही' आई 'देहु' ओड़्यो बायों हाथ, रिस भरिकै सुनाई है॥
'इतौ अपमान', 'पानि दक्षिन लै दियौ अहो 'नृप जगदेवजू कों' 'ऐसी कहा पाई है'।
'तासों दसगुनी लीजै, मोको सो दिखाय दीजै', 'दई नहीं जाय काहू, मोहिये सुहाई है॥ ६०५॥
कितौ समझावै 'ल्यावौ' कहै, यहै जक लागी, गई बड़भागी पास वस्तु मेरी दीजियै।
काटि दियो सीस, तन रहै ईश शक्ति लखो, ल्याई बकसीस थार ढाँपि देखि लीजियै॥
खोलिकै दिखायो, नृप मूरछा गिरायो तन, धन की न बात अब याकौ कहा कीजियै।
मैं जु दीनौ हाथ जानि आनि ग्रीव जोरि दई लई वही रीझि पद तान सुनि जीजियै॥ ६०६॥
सुनी जगदेव रीति, प्रीति नृपराज सुता पिता सों बखानि कही वाही कौ लै दीजियै।
तब तौ बुलाये समुझाये बहु भाँति खोलि बचन सुनाये अजू बेटी मेरी लीजियै'॥
नट्यौ सतबार जब कही 'डारों मारि', चले मारिबे को, बोली वह 'मारौ मत भीजियै।
'दृष्टि सों न देखै' कही 'ल्यावौ काटि मूंड़', लाए चाहै सीस आँखिन को, गयौ फिरि रीझियै॥ ६०७॥

टीकाकार श्रीप्रियादासजी बताते हैं कि श्रीजगदेवजीकी रिझवार-निष्ठाका विस्तारसे वर्णन किया गया। अब श्रीहरीदासजीने जैसी साधु-सेवा की, उसको सुनिये। राजा होकर इनकी साधु-सेवामें ऐसी निष्ठा थी कि वे सन्तोंसे परदा या किसी प्रकारका कपट नहीं करते थे। बिना रोक-टोकके साधुओंका महलोंमें आना-जाना होता था। ऐसी विलक्षण एवं दृढ़-निष्ठा देखकर भगवान्‌ने इनकी परीक्षा ली। परीक्षार्थ एक अल्पवयस्क सन्तका रूप धारण करके आये और इनके यहाँ निवास करने लगे। उनके प्रति श्रीहरीदासजीका भगवन्मय वात्सल्य भाव था। वे बालक-बालिकाओंके साथ खेलते रहते। एक दिन ग्रीष्म-ऋतुमें बालक-बालिका छतपर सोये हुए थे, वे कुछ ओढ़े नहीं थे। श्रीहरीदासजी दातौन करनेके लिये छतपर चढ़कर गये। गहरी नींदमें सन्त-भगवन्तको बेसुध सोये देखकर इन्होंने अपनी चादर ओढ़ा दी। शयनके दर्शनकर आप नीचे उतरे तो हृदयमें प्रभुका ध्यानकर उसमें मग्न हो गये।

प्रात:काल होनेपर बालक भगवान् और राजाकी कन्या दोनों जगे। विलम्बसे जगनेके कारण घबड़ाये। विचार करने लगे कि हम चादर ओढ़कर नहीं सोये फिर यह किसकी चादर है, कौन ओढ़ा गया? बालिकाने पहचानकर कहा कि यह तो पिताजीकी है। भगवान् हरीदासजीकी परीक्षा ले रहे थे, अत: जैसे कुछ भूल हो गयी हो—ऐसी मुखमुद्रा बनाये, दृष्टिको नीचे किये हुए छतसे उतरकर (स्नानार्थ) चले। प्रभुकी ऐसी चेष्टा देखकर रास्तेमें मिलकर श्रीहरीदासजीने चरण पकड़ लिये और एकान्तमें विनती करते हुए कहा कि 'प्रभो! आप जो भी लीला करें, सो उचित है। परीक्षार्थ ऐसी लीला न करें, जिससे नास्तिक दुष्टजन सन्तोंकी निन्दा करें। मुझे अपनी निन्दासे भय नहीं है, वह तो मुझे सुख देनेवाली है, परंतु सन्त-निन्दासे हमें भय है।'

श्रीहरीदासजीने सन्त भगवान्‌से पुन: कहा कि महाराज! इस प्रकार आपको चेतावनी देनेसे मेरी भक्तिमें कलंक लगता है। आप चाहे जैसे अपने भक्तकी परीक्षा लें, मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिये, परंतु मैंने इस शंकाके कारण आपसे कुछ कहा कि कहीं कोई साधु-सन्तका अपमान न करे। किसी साधुमें किसी प्रकारकी कमी है, यह सुनना मुझे अच्छा नहीं लगता। सन्त भगवान्‌ने फिर परीक्षार्थ ऐसा भाव दिखाया कि जैसे लज्जित हो रहे हों। सन्त भगवान्‌ने कहा—मैं अब कहीं अन्यत्र जाकर भजन करना चाहता हूँ। हरीदासने चरण पकड़ लिये और अपने सच्चे सद्भावसे सन्तरूपधारी भगवान्‌को प्रसन्न कर लिया। तब भगवान् अपने रूपसे प्रकट हो गये और प्रसन्न होकर उन्हें अपना स्वरूप प्रदान किया। फिर बोले—मैं तुम्हारी सन्त-सेवा-निष्ठासे प्रसन्न हूँ, जो चाहो सो वरदान माँग लो। श्रीहरीदासजीने कहा—'हे प्रभो! आप उसी बालक सन्तरूपसे मेरे घरमें रहिये। साथ-साथ सेवा-भजन करनेका सुख दीजिये।'

'एवमस्तु' कहकर भगवान् पुनः उसी बालक सन्तरूपमें आ गये। सन्तोंमें इनकी ऐसी श्रद्धा थी कि भगवान् सन्त रूप धारणकर इनके यहाँ रहे। आपके छोटे भाई श्रीगोविन्ददासजी थे, जिन्हें सन्त-भगवन्तके ही आगे बंसी बजानेकी प्रतिज्ञा थी। बादशाहके कहनेपर भी बंसी नहीं बजायी।

श्रीप्रियादासजीने आपके इस पावन चरित्रका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

निष्ठा रिझवार रीति कीनी विस्तार यह सुनौ साधु सेवा हरीदास जू ने करी है।
परदा न सन्त सों है देत हैं अनन्त सुख रह्यौ सुख जानि भक्त सुता चित धरी है॥
दोऊ मिलि सोवैं रितु ग्रीषम की छात पर, गात पर गात सोये सुधि नहीं परी है।
दातुन के करिबे को चढ़े निसि सेस आप चादर उढ़ाय नीचे आए ध्यान हरी है॥ ६०८॥
जागि परे दोऊ, अरबरे देखि चादर कों पेखि पहिचानी सुता पिता ही की जानी है।
सन्त दृग नये चले बैठे मग पग लये गये लै एकान्त में यों विनती बखानी है॥
नेकु सावधान ह्वैकै कीजिये निसङ्क काज, दुष्टराज छिद्र पाय कहै कटु बानी है।
तुमको जु नाव धरै जरै सुनि हियौ मेरौ, डरैं निन्दा आपनी न होत सुखदानी है॥ ६०९॥
इतनी जतावनी में भक्ति कों कलङ्क लगै, ऐपै सङ्क वही, साधु घटती न भाइयै।
भई लाज भारी, विषैबास धोय डारी नीके, जीके दुख रासि चाहै कहूँ उठि जाइयै॥
निपट मगन किये नाना विधि सुख दिये, दिये पै न जान, मिलि लालन लड़ाइयै।
गोविन्द अनुज जाके बाँसुरी कौ साँचोपन मन मैं न ल्यायौ नृप इहि विधि गाइयै॥ ६१०॥

श्रीकृष्णदासजी

तान मान सुर ताल सुलय सुंदर सुठि सोहै।
सुधा अंग भ्रूभंग गान उपमा कों को है॥
रतना कर संगीत राग माला रँग रासी।
रिझये राधालाल भक्त पद रेनु उपासी॥
स्वर्नकार खरगू सुवन भक्त भजन पद दृढ़ लियो।
नंदकुँवर कृष्नदास कों निज पग तें नूपुर दियो॥ १८०॥

श्रीकृष्णदासजी महान् भक्त थे। एक बार नृत्य करते समय इनके पैरमेंसे नूपुर खुलकर गिर गया तो स्वयं नन्दनन्दनने अपने चरणोंमेंसे खोलकर एक नूपुर इनके पैरमें बाँध दिया। जिस समय ये स्वर-तालको सँभालकर सुन्दर लयके साथ गाते थे, उस समय श्रोताओंको बड़ा ही आनन्द आता था। नाचनेका सुन्दर ढंग, भौहोंके साथ अंगोंका संचालन और गायनमें इनके समान कोई भी नहीं दिखायी देता था। आप शास्त्रीय संगीतके विशेषज्ञ थे। आपने अपने भक्तियुक्त सद्गुणोंसे श्रीराधाकृष्णको रिझा लिया। भक्तोंकी चरणधूलिके उपासक, खरगू स्वर्णकारके सुपुत्र श्रीकृष्णदासजीने भक्तोंकी सेवाका दृढ़ नियम ले रखा था॥ १८०॥

श्रीकृष्णदासजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

भक्तवर श्रीकृष्णदासजी सुनार जातिके थे। इन्होंने परमानन्दके रूप युगल श्रीराधाकृष्णकी सेवाको अपनाया। आप नित्य-नियमसे प्रिया-प्रियतमकी सेवा करनेके पश्चात् उनके सामने आनन्दमग्न होकर नृत्य और गान करते थे। एक दिन आप नाचने-गानेमें ऐसे मग्न हो गये कि आपको अपने शरीरकी सुध नहीं रही। इसी बीच आपके

एक पैरका नूपुर खुलकर गिर गया। आप नृत्य-भावमें विभोर थे, अतः आप नूपुरको बाँध नहीं सके। नूपुर टूटकर गिर गया है, इसका आपको पता नहीं था। घुँघरूके बिना बजे तालकी गति बिगड़ गयी। नृत्य-गान और तानके रंगमें रँगे श्रीलालजीसे यह सहन नहीं हुआ, अतः उन्होंने अपने श्रीचरणमेंसे अपना दिव्य नूपुर खोलकर कृष्णदासजीके पैरमें बाँध दिया। अब तालपर घुँघरूका बजना सुनकर श्रीठाकुरजी बहुत ही प्रसन्न हुए। नृत्य-गानको समाप्तकर श्रीकृष्णदासजी जब स्वस्थ हुए तो उन्होंने देखा कि मेरे पैरका नूपुर अलग धरतीपर पड़ा है और उसकी जगह मेरे पैरमें दूसरा दिव्य नूपुर बँधा हुआ है। भगवान्‌की इस कृपालुताका अनुभव करके आपके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। दूसरे जिन-जिन लोगोंने जाना-सुना, उन्हें भी भगवद्भक्ति प्रिय लगी, वे भी भजन-कीर्तन करने लगे। श्रीकृष्णदासजीकी पवित्र कीर्ति संसारमें फैल गयी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कृष्णदास ये सुनार राधाकृष्ण सुखसार, लियौ सेवा पाछे नृत्य गान बिसतारियै।
ह्वै करि मगन काहू दिन तन सुधि भूली, एक पग नूपुर सो गिर्‌यौ न सँभारियै॥
लाल अति रंग भरे जानी जति भंग भई पांय निज खोलि आप बाँध्यौ सुख भारियै।
फेरि सुधि आई देखि धारा लै बहाई नैन कीरति यों छाई जग भक्ति लागी प्यारियै॥ ६११॥

परमधर्मपोषक संन्यासी भक्त

चितसुख टीकाकार भक्ति सर्बोपर राखी।
श्रीदामोदर तीर्थ राम अर्चन बिधि भाषी॥
चंद्रोदय हरिभक्ति नरसिंहारन्य जु कीनी।
माधौ मधुसूदन्न (सरस्वती) परमहँस कीरति लीनी॥
परबोधानंद रामभद्र जगदानँद कलिजुग्ग धनि।
परमधर्म प्रतिपोष कौं संन्यासी ये मुकुटमनि॥ १८१॥

श्रीचित्सुखानन्दजी सरस्वतीने श्रीभगवद्गीतापर चित्सुखी नामकी टीका लिखी, उसमें इन्होंने कर्म, ज्ञान आदिकी अपेक्षा हरिभक्तिको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। श्रीदामोदरतीर्थने रामार्चनविधिका वर्णन किया, उसमें भक्तिको महत्त्व दिया। श्रीनृसिंहारण्यजीने हरिभक्तिचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ लिखा। श्रीमधुसूदनजी सरस्वतीने भक्तिरसायन आदि ग्रन्थ लिखे। श्रीमाधवानन्दजी भी भगवद्भक्त हुए। श्रीमाधवानन्दजी और श्रीमधुसूदनजीसरस्वती ये दोनों सत्-असत्-विवेकी परमहंस प्रसिद्ध थे। श्रीप्रबोधानन्दजी, श्रीरामभद्रजी और श्रीजगदानन्दजी भी कलियुगमें भगवद्भक्तिकी आराधना करके धन्यवादके योग्य हुए। इन सभी संन्यासी महानुभावोंने परमधर्म श्रीहरिभक्तिका प्रतिपादन और समर्थन किया। अतः ये संन्यासियोंके मुकुटमणि कहे गये॥ १८१॥

इनमेंसे कुछ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीदामोदरतीर्थजी

ये भगवान् श्रीरामके परमभक्त थे। निरन्तर ध्यानमें मग्न रहा करते थे। एकबार आप ध्यानमग्न होकर श्रीसीताराम नामका जप कर रहे थे, उसी समय श्रीसीतारामजीने प्रकट होकर दर्शन दिया। आपके हृदयमें भक्तिका भाव और दृढ़ हो गया। परमानन्दमय प्रभुरूपमें आप मग्न हो गये। फिर आपके मनमें भाव आया कि यह दर्शन दूसरे भक्तोंको कैसे सुलभ हो। तब श्रीराघवेन्द्रने प्रेरणा की कि अर्चन-पद्धतिका वर्णन करो। उससे हमारा दर्शन सुलभ हो जायगा। आपके द्वारा लिखित

रामार्चन-विधिसे अर्चन करके लोगोंने श्रीसीतारामजीका दर्शन पाया। इस प्रकार ग्रन्थोंका निर्माणकर आपने भक्तिपथ प्रदर्शित किया।

श्रीनृसिंहारण्यजी

आपको भक्ति अत्यन्त प्रिय थी। आपने हरिभक्तिचन्द्रोदय नामक उत्तम ग्रन्थकी रचना की। उसमें जीवलोककी मुक्तिभूमिपर विवेकको राजा बताया। उसके शत्रु मोहसे विवेकका बड़ा-भारी युद्ध हुआ। शील, धर्म, सन्तोष और वैराग्य आदिको विवेकके सेनानी बताया। काम, क्रोध, लोभ और ममता आदिको मोहके सेनानी कहा। चिरकालतक भयंकर युद्धके पश्चात् मोह जीत गया और विवेककी सेना भाग खड़ी हुई। विवेककी एक श्रद्धा नामकी स्त्री थी। उसके गर्भमें प्रीति नामकी एक कन्या थी। उसी समय उसका जन्म हुआ और वह तत्क्षण बहुत बड़ी हो गयी। उसने ज्ञानरूपी खड्गको हाथमें लिया और सेनासहित मोहको मार भगाया। फिर विवेककी शक्ति जगी। उसके मरे सैनिक जी उठे। इस प्रकार भक्तिकी विजयका वर्णन करके आपने परमधर्मका पोषण किया।

श्रीरामभद्रजी

ये भगवान् श्रीरामके परमभक्त थे। चातुर्मास्य व्रतके लिये आप एक स्थानपर ठहरे। वहाँ आपके सदुपदेशोंको सुननेके लिये बहुत भीड़ एकत्र होती। वर्षा-ऋतुके बीत जानेपर आप वहाँसे चलनेके लिये तैयार हो गये। तब भगवान्ने स्वप्न दिया कि वर्षाके बाद शरद् ऋतुमें भी यहीं निवास करो और अपने उपदेशोंसे लोगोंमें भक्तिका प्रचार करो। आपने स्वप्नादेशका उल्लंघन कर दिया। उसे केवल अपने मनका विकार माना और प्रतिपदाको ही चल दिये। मार्गमें एक नदी मिली। आपने देखा कि पानी थोड़ा है, अत: पैदल ही उसे पार करनेके लिये उसमें घुसे। बीच धारमें पहुँचते ही जलकी बाढ़ आ गयी। तेज गहरी धारमें श्रीरामभद्रजी बहने और डूबने लगे। तब आपको भगवान् श्रीरामकी याद आयी, अपनी भूलपर पछताने लगे। शरीरका अन्तिम समय समझकर राम-नामका स्मरण करने लगे। तब श्रीरामने झट हाथ पकड़ लिया और बड़ी मधुर वाणीसे बोले—'तुमने मेरी आज्ञाको छोड़ा, अब मैं तुमको नदीके जलमें छोड़ रहा हूँ।' श्रीरामभद्रजीने कहा—'प्रभो! मैं अज्ञानी जीव, आपका शिशु अनुचित कर सकता हूँ, पर आप अपने स्वभावको नहीं छोड़ सकते हैं।' ऐसे दीनवचन सुनकर प्रभुने इन्हें नदीसे निकालकर तटपर खड़ा कर दिया और स्वयं आप फिर नदीमें कूद पड़े। भगवत्स्पर्श और दर्शनसे कृतार्थ हुए श्रीरामभद्रजीसे नहीं रहा गया, ये भी नदीमें कूद पड़े। हँसकर प्रभुने इन्हें फिर निकाला और अपने दर्शनोंसे इनके मनोरथको पूर्ण किया। प्रेममग्न होकर आप पुन: उसी स्थानपर आ गये। सुनकर लोगोंकी भीड़ उमड़ पड़ी। आपने स्वप्नादेश और भगवत्कृपाका वर्णन करके सभीके मनमें भक्तिभाव भर दिया।

श्रीजगदानन्दजी

श्रीजगदानन्दजी भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। आपकी जैसी भक्ति भगवान् श्रीरामके चरणोंमें थी, वैसी किसी विरले ही पुरुषमें होगी। आपमें वर्ण-आश्रम या विद्या आदिका अहंकार बिलकुल न था। वैष्णव सन्तको देखते ही उसके चरणोंमें सिर झुकाते, उसकी परिक्रमा करते और मधुर वाणीसे सत्कार करते हुए कहते कि 'आज मेरे धन्य भाग्य हैं, जो मुझे श्रीरामजीके प्यारे मिल गये।' भोजन-विश्रामादिके बाद उनसे प्रार्थना करते कि 'श्रीरामजीकी कोई कथा सुनाइये।' इस प्रकार सत्संगमें सर्वदा भगवत्कथाओंको कह-सुनकर परमधर्मका प्रचार-प्रसार करते। एक बार दो सन्त तीर्थयात्रा करते हुए काशीजीमें आये। वहाँ एक सन्त बीमार हो गये और उनका शरीर छूट गया। उसके वियोगमें दूसरा सन्त करुणक्रन्दन करने लगा। उसका विलाप सुनकर श्रीजगदानन्दजीसे नहीं रहा गया। निकट जाकर आपने उससे कहा—सन्तजी! आप विलाप न करें, ये मरे नहीं हैं। आपके साथ-साथ तीर्थयात्राको पूर्ण करके, अपने स्थानमें पहुँचकर आजसे एक माहके बाद शरीर त्यागकर वैकुण्ठको पधारेंगे। आपका स्पर्श पाकर सन्त उठ बैठे। दोनोंने आपको सिद्ध महापुरुष मानकर

दण्डवत्प्रणाम किया। इस प्रकार आपने अनेकोंके संकट काटकर उन्हें परमधर्मका उपदेश दिया।

श्रीमधुसूदनसरस्वती

ईसाकी लगभग सोलहवीं शताब्दीमें बंगालके फरीदपुर जिलेके कोटालपाड़ा ग्राममें प्रमोदन पुरन्दर नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उनके तृतीय पुत्र हुए कमलनयनजी। इन्होंने न्यायके अगाध विद्वान् गदाधरभट्टके साथ नवद्वीपके हरिराम तर्कवागीशसे न्यायशास्त्रका अध्ययन किया। काशी आकर दण्डीस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजीसे इन्होंने वेदान्तका अध्ययन किया और यहीं संन्यास ग्रहण किया। संन्यासका इनका नाम 'मधुसूदनसरस्वती' पड़ा।

स्वामी मधुसूदनसरस्वतीको शास्त्रार्थ करनेकी धुन थी। काशीके बड़े-बड़े विद्वानोंको ये अपनी प्रतिभाके बलसे हरा देते थे। परंतु जिसे श्रीकृष्ण अपनाना चाहते हों, उसे मायाका यह थोथा प्रलोभन-जाल कबतक उलझाये रख सकता है! एक दिन एक वृद्ध दिगम्बर परमहंसने उनसे कहा—स्वामीजी! सिद्धान्तकी बात करते समय तो आप अपनेको असंग, निर्लिप्त ब्रह्म कहते हैं, पर सच बताइये, क्या विद्वानोंको जीतकर आपके मनमें गर्व नहीं होता? यदि आप पराजित हो जायँ, तब भी क्या ऐसे ही प्रसन्न रह सकेंगे? यदि आपको घमण्ड होता है तो ब्राह्मणोंको दुःखी एवं अपमानित करनेका पाप भी होगा।' कोई दूसरा होता तो मधुसूदनसरस्वती उसे फटकार देते, परंतु उस संतके वचनोंसे वे लज्जित हो गये। उनका मुख मलिन हो गया। परमहंसने कहा— 'भैया! पुस्तकोंके इस थोथे पाण्डित्यमें कुछ रखा नहीं है। तुम श्रीकृष्णकी शरण लो। उपासना करके हृदयसे इस गर्वके मैलको दूर कर दो। सच्चा आनन्द तो तुम्हें आनन्दकन्द श्रीवृन्दावनचन्द्रके चरणोंमें ही मिलेगा।'

स्वामीजीने उन महात्माके चरण पकड़ लिये। दयालु संतने श्रीकृष्णमन्त्र देकर उपासना तथा ध्यानकी विधि बतायी और चले गये। मधुसूदनसरस्वतीने तीन महीनेतक उपासना की। जब उनको इस अवधिमें कुछ लाभ न जान पड़ा, तब काशी छोड़कर ये घूमने निकल पड़े। कपिलधाराके पास वही संत इन्हें फिर मिले। उन्होंने कहा—'स्वामीजी! लोग तो भगवत्प्राप्तिके लिये अनेक जन्मोंतक साधन, भजन, तप करते हैं और फिर भी बड़ी कठिनतासे उन्हें भगवान्के दर्शन हो पाते हैं, पर आप तो तीन ही महीनेमें घबरा गये।' अब अपनी भूलका स्वामीजीको पता लगा। ये गुरुदेवके चरणोंपर गिर पड़े। काशी लौटकर ये फिर भजनमें लग गये। प्रसन्न होकर श्रीश्यामसुन्दरने इन्हें दर्शन दिये।

अब तो इनका जीवन ही बदल गया था, अद्वैतसिद्धि, सिद्धान्तबिन्दु, वेदान्तकल्पलतिका, अद्वैत-रत्न-रक्षण, प्रस्थानभेदके लेखक इन प्रकाण्ड नैयायिक तथा वेदान्तके विद्वान्ने श्रीकृष्ण-प्रेमके वशीभूत होकर भक्तिरसायन, गीताकी गूढार्थदीपिका नामक व्याख्या और श्रीमद्भागवतकी व्याख्या लिखी।

श्रीप्रबोधानन्दजी

श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीजीका जन्म एक श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें हुआ। इनके पूर्वज आन्ध्रप्रदेशके निवासी श्रीसम्प्रदायी वैष्णव थे। श्रीरंगक्षेत्रसे प्रभावित होकर उसके निकट कावेरीतटपर बसे बेलंगुरी गाँवमें आकर सपरिवार निवास करने लगे। इनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम श्रीवेंकटभट्ट और मध्यम भ्राताका नाम श्रीत्रिमल्लभट्ट था। श्रीगौरांग महाप्रभु तीर्थयात्राके व्याजसे प्रेमभक्तिका वितरण करते हुए दक्षिणदेशमें पधारे। तब श्रीवेंकटभट्टने उन्हें अपने घरपर चातुर्मास्य बितानेके लिये आग्रहपूर्वक रखा। फिर भट्टपरिवार महाप्रभुजीके प्रेमसे प्रभावित होकर उनके पदाश्रित हो गया। श्रीप्रबोधानन्दजी बड़े रसिक एवं प्रेमानन्दमें विभोर रहनेवाले महान् सन्त और आनन्दकन्द श्रीगौरांग महाप्रभुके प्रिय सेवक थे। आपने श्रीवृन्दावनविहारिणी बिहारीजीकी नित्य नयी-नयी निकुंज-लीलाओंका अनुभव करके उनका अपने ग्रन्थोंमें वर्णन किया तथा प्रिया-प्रियतमकी अनुपम रूप-माधुरीके मधुर रसका पानकर उन्हें अपने नेत्रोंकी पुतली बना लिया। श्रीवृन्दावन-महिमामृत आदि ग्रन्थोंमें आपने श्रीवृन्दावनधामके वाससे मिलनेवाले दिव्यसुखको प्रकाशित किया। इस प्रकार व्रजरसके परमानन्दसागरको भावुकोंके

लिये सुलभ किया तथा भगवद्भक्तिविहीन कर्म-धर्मोंके आचरणको आपने त्याज्य बताया। आपके द्वारा वर्णित रससिद्धान्तको पढ़-पढ़कर एवं सुन-सुनकर करोड़ों भक्तोंने प्रेमरंग प्राप्त किया। श्रीवृन्दावनधामका वास आपको ऐसा प्रिय लगा कि आपने उसपर अपना तन-मन और धन सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीप्रबोधानन्दजीके इस वृन्दावन-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया—

श्रीप्रबोधानन्द, बड़े रसिक आनन्दकन्द, श्री 'चैतन्यचन्द' जू के पारषद प्यारे हैं।
राधाकृष्ण कुञ्ज केलि, निपट नवेलि कही, झेलि रसरूप, दोऊ किये दृग तारे हैं॥
वृन्दावन वास कौ हुलास लै प्रकास कियौ, दियौ सुख सिन्धु, कर्म धर्म सब टारे हैं।
ताहि सुनि सुनि कोटि कोटि जन रङ्ग पायौ, विपिन सुहायौ, बसे तन मन वारे हैं॥ ६१२॥

श्रीद्वारकादासजी

सरिता कूकस गाँव सलिल में ध्यान धर्‌यो मन।
राम चरन अनुराग सुदृढ़ जाकें साँचो पन॥
सुत कलत्र धन धाम ताहि सों सदा उदासी।
कठिन मोह को फंद तरकि तोरी कुल फाँसी॥
कील्ह कृपा बल भजन के ग्यान खड्ग माया हनी।
अष्टांग जोग तन त्यागियो द्वारकादास जानै दुनी॥ १८२॥

सन्त श्रीद्वारकादासजी 'कूकस' नामक गाँवके निकट बहनेवाली नदीके जलमें प्रवेश करके भजन-ध्यान करते थे। श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंमें आपका सुदृढ़ अनुराग था। आपने प्रतिज्ञापूर्वक भगवान्‌की उपासना की। आप स्त्री, पुत्र, घर और धनसे सदा विरक्त रहे। यद्यपि मोहका बन्धन कठिन होता है, परंतु आपने अपने विवेकसे उसे तोड़-फोड़ डाला। अपने गुरुदेव श्रीकील्हदेवाचार्यजीकी कृपा एवं भगवद्भजनके बलसे आपने ज्ञानरूपी तलवारसे अविद्या-मायाका नाशकर अष्टांगयोगकी विधिसे नदीमें शरीरको छोड़ा और साकेतधामको प्राप्त किया। इस बातको दुनिया जानती है॥ १८२॥

श्रीपूर्णजी

उदै अस्त परबत्त गहिर मधि सरिता भारी।
जोग जुगति बिस्वास तहाँ दृढ़ आसन धारी॥
ब्याघ्र सिंह गुंजै खरा मनहिं कछु संक न मानैं।
अर्ध न जातैं पौंन उलटि ऊरध कों आनैं॥
साखि सब्द निर्मल कहा कथिया पद निर्बान।
पूर्न प्रगट महिमा अनँत करिहै कौन बखान॥ १८३॥

श्रीपूर्णजीकी महिमा अपार है, कोई भी उसका वर्णन नहीं कर सकता है। आप उदयाचल और अस्ताचल—इन दो ऊँचे पर्वतके बीच बहनेवाली सबसे बड़ी (श्रेष्ठ) नदीके समीप पहाड़की गुफामें रहते थे। योगकी युक्तियोंका आश्रय

लेकर और प्रभुमें दृढ़ विश्वास करके समाधि लगाते थे। व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक पशु वहीं समीपमें खड़े गरजते रहते थे, परंतु आप उनसे जरा भी नहीं डरते थे। समाधिके समय आप अपान वायुको प्राणवायुके साथ ब्रह्माण्डको ले जाते थे, फिर उसे नीचेकी ओर नहीं आने देते थे। आपने उपदेशार्थ साक्षियोंकी, मोक्षपद प्रदान करनेवाले पदोंकी रचना की। इस प्रकार मोक्षपदको प्राप्त श्रीपूर्णजीकी महिमा प्रकट थी॥ १८३॥

श्रीपूर्णजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीपूर्णजी भगवत्कृपाप्राप्त श्रीरामभक्त सन्त थे। एक बार आपका शरीर अस्वस्थ हो गया। आपको औषधिके लिये औंगरा (एक जड़ी)-की आवश्यकता थी। इनके मनकी बात जानकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने एक ब्राह्मणका रूप धारण किया और औंगरा लाकर दिया। जिससे ये स्वस्थ हो गये। भगवत्कृपाका अनुभव करके आप प्रेम-विभोर हो गये। आप पूर्णतया अकाम और सभी प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित थे। एक बार एक यवन-बादशाहने आपके इन्द्रिय-संयमकी परीक्षा लेनी चाही, किंतु आप उसमें पूर्ण सफल रहे।

श्रीपूरनजीका नाम श्रीअग्रदेवजीके शिष्योंमें आया है। एक बार आप स्वर्णरेखा नदीके तटपर स्थित पीपलकी छायामें विराजे थे। भगवत्स्मरण करते हुए शान्त-एकान्तमें आपको निद्रा आ गयी। वृक्षकी खड़खड़ाहटसे आपकी नींद खुली तो आपने एक वानरको पीपलपर इधर-उधर कूदते देखा। उसी समय वानरके मुखसे **'दासोऽहं राघवेन्द्रस्य'** यह स्पष्ट सुनायी पड़ा। साक्षात् श्रीहनुमान्‌जी हैं, यह जानकर आपने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और हनुमदाज्ञासे उसे पवित्र स्थल जानकर आपने वहीं अपना निवासस्थान बनाया और वहाँ श्रीहनुमान्‌जीकी प्रतिमा स्थापित की। भगवन्नाम-जपके प्रभावसे आपमें सर्वसिद्धियाँ आ गयीं। सुख-शान्तिके निमित्त आनेवाले जनसमुदायके मनोरथ पूर्ण होने लगे।

श्रीलक्ष्मणभट्टजी

सदाचार मुनिबृत्ति भजन भागवत उजागर।
भक्तनि सों अति प्रीति भक्ति दसधा को आगर॥
संतोषी सुठि सील हृदय स्वारथ नहिं लेसी।
परम धर्म प्रतिपाल संत मारग उपदेसी॥
श्रीभागवत बखानि कै नीर छीर बिबरन कर्‌यौ।
श्रीरामानुज पद्धति प्रताप भट्ट लच्छिमन अनुसर्‌यौ॥ १८४॥

श्रीलक्ष्मणभट्टजीने श्रीरामानुज-सम्प्रदायकी पद्धतिके अनुसार भगवान्‌की सेवा-पूजाका अनुसरण किया। आप महान् सदाचारी, मुनियोंकी-सी वृत्ति स्वीकार करके जीवनमें धारण करके जीवन-यापन करनेवाले, भजन-परायण और यशस्वी भगवद्भक्त थे। भगवद्भक्तोंमें आपका बड़ा भारी स्नेह था। आपके हृदयमें दशधा भक्तिका निवास था। आप परम सन्तोषी, बड़े शीलवान् थे। नाममात्रका भी स्वार्थ आपमें नहीं था। जिससे भगवद्भक्ति दृढ़ हो, उस परम धर्मका पालन करनेवाले तथा सन्तोंका जो मार्ग है, उसके आप उपदेशक थे। श्रीमद्भागवतकी कथाएँ कहकर आपने सत् और असत्‌का उसी प्रकार विवेचन किया, जैसे हंस नीर और क्षीरका करता है। इस प्रकार श्रीभट्टजीने असत्‌को छोड़कर सत् अर्थात् भगवत्-शरणागतिको ग्रहण किया॥ १८४॥

श्रीलक्ष्मणभट्टजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीलक्ष्मणभट्टजी सन्त थे। आप श्रीमद्वल्लभाचार्यके पिता एवं श्रीरामानुज-सम्प्रदायमें दीक्षित थे। एक बार आपने एक भक्त शिष्यके यहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा कही, उसमें प्रचुर भेंट आयी। आपने ज्यों-की-त्यों

सम्पूर्ण भेंट सन्त-सेवाके निमित्त एक साधुको समर्पित कर दी। ये केवल उपकार-सन्तसंगकी भावनासे कथा कहते थे। एक बार राजाने आपको श्रीभागवत-कथाके लिये आमन्त्रित किया, उन्हीं तिथियोंमें किसी सन्तने कथाके लिये कहा। आप सन्तके यहाँ गये, राजाके यहाँ नहीं गये। ऐसे सन्त-प्रेमी और निर्लोभी थे आप!

स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारी

कृष्नदास कलि जीति न्यौति नाहर पल दीयो।
अतिथि धर्म प्रतिपाल प्रगट जस जग में लीयो॥
उदासीनता अवधि कनक कामिनि नहिं रातो।
राम चरन मकरंद रहत निसि दिन मदमातो॥
गलतें गलित अमित गुन सदाचार सुठि नीति।
दधीचि पाछें दूसरी (करी) कृष्णदास कलि जीति॥ १८५॥

महान् सिद्धसन्त पयहारी श्रीकृष्णदासजी जयपुरमें श्रीगलताजीकी गद्दीपर विराजते थे। आप अनन्त दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, बड़े सदाचारी और अच्छे नीतिज्ञ थे। श्रीदधीचिजीके बाद इस कलियुगमें उत्पन्न होकर कलिकालके विकारोंपर आपने विजय प्राप्त की। अतिथिके रूपमें प्राप्त सिंहको आपने न्यौता दिया और अपने शरीरमेंसे मांस काटकर उसे भोजनके लिये अर्पण किया। इस प्रकार विलक्षण रूपसे अतिथिधर्मका पालन करके आपने सुयश प्राप्त किया। आप वैराग्यकी तो सीमा ही थे और कभी भी धन और स्त्रियोंमें आसक्त नहीं हुए। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके परागमें आपका मन उसी प्रकार आनन्दित रहता था, जैसे पुष्परसको पाकर भ्रमर मतवाला हो जाता है॥ १८५॥

स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

एक बार पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराज अपनी गुफामें विराजमान थे, उसी समय द्वारपर एक सिंह आकर खड़ा हो गया। आपने विचार किया कि 'आज तो अतिथि-प्रभु पधारे हैं।' उनके भोजनके लिये आपने अपनी जाँघ काटकर मांस सामने रख दिया और प्रार्थना की—'प्रभो! भोजन कीजिये।' धर्मकी बहुत बड़ी महिमा है और उसका पालन करना बहुत ही कठिन है। इनकी सच्ची धर्मनिष्ठाको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे नहीं रहा गया, उन्होंने प्रकट होकर दर्शन दिया; क्योंकि आपका भाव बिलकुल सत्य था। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके जाँघका दुःख न जाने कहाँ चला गया। संसारमें लोग अतिथिको अन्न-जल देनेमें ही कष्टका अनुभव करते हैं, तब इस प्रकार अपने शरीरका दान कौन कर सकता है! आपके इस चरित्रको सुनकर लोगोंके मनमें महान् आश्चर्य होता है।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बैठे हैं गुफा में, देखि सिंह द्वार आय गयौ, लयौ यों बिचारि हो अतिथि आज आयौ है।
दई जाँघ काटि डारि, कीजियै अहार अजू, महिमा अपार धर्म कठिन बतायौ है॥
दियौ दरसन आय, साँच में रह्यो न जाय, निपट सचाई, दुख जान्यौ न बिलायौ है।
अन्न जल देबै ही कों झींखत जगत नर, करि कौन सकै जन मन भरमायौ है॥ ६१३॥

श्रीगदाधरदासजी

लाल बिहारी जपत रहत निसि बासर फूल्यौ।
सेवा सहज सनेह सदा आनँद रस झूल्यौ॥
भक्तनि सों अति प्रीति रीति सबही मन भाई।
आसय अधिक उदार रसन हरि कीरति गाई॥
हरि बिस्वास हिय आनि कै सपनेहुँ आन न आस की।
भली भाँति निबही भगति सदा गदाधरदास की॥ १८६॥

श्रीगदाधरदासजीकी भक्तिका सर्वदा निर्वाह हुआ, उसमें कभी भी कोई बाधा नहीं उपस्थित हुई। आप श्रीबिहारीलालजीके नामोंका जप करते हुए दिन-रात प्रफुल्लित ही रहते थे। भक्त-भगवन्तकी सेवामें आपका सहज स्नेह था। उसीके आनन्दमें सर्वदा झूमते रहते थे। भक्तमें आपका बड़ा भारी अनुराग था। आपकी सन्त-सेवाकी रीति सभीको अच्छी लगती थी। आप मन-बुद्धिसे परम उदार थे और जिह्वासे सदा भगवान्की कीर्तिका गान किया करते थे। हृदयमें केवल भगवान्का विश्वास और भरोसा रखकर आपने स्वप्नमें भी किसी दूसरेकी आशा नहीं रखी॥ १८६॥

श्रीगदाधरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगदाधरदासजी श्यामसुन्दरके प्रेममें ऐसे डूबे कि उनका घर, धन और परिवार सब कुछ छूट गया। परमविरक्त हो गये। कुछ दिन इधर-उधर घूम-फिरकर आप महाराष्ट्रमें ताप्ती नदीके तटपर बुरहानपुरको आये और उसीके निकट एक बागमें आसन लगाकर बैठ गये। लोगोंने आपसे बहुत अनुनय-विनय करके कहा—'प्रभो! गाँवमें चलकर किसी मन्दिरमें रहिये।' परंतु उनके कहनेसे आप गाँवमें नहीं गये। उसका कारण यह कि आपको एकान्तमें ही सुख था। भगवद्भजनको छोड़कर दूसरी किसी कामनासे आपका कोई प्रयोजन न था। एक बार कई दिनोंतक लगातार वर्षा होती रही, उससे आपका शरीर और वस्त्र भीग गये। इनके कष्टको देखकर प्यारे श्यामसुन्दरने अत्यन्त मीठे स्वरमें एक भक्त सेठसे कहा—तुम्हारे घरमें बहुत-सा धन भरा हुआ है, तुम श्रीगदाधरदासजीके लिये और उनके ठाकुरजीके लिये एक सुन्दर मन्दिर बनवाओ और उन्हें लाकर उस मन्दिरमें रखो।

भगवान्की आज्ञा पाकर उस सेठ भक्तने सुन्दर विशाल मन्दिर बनवाया और भगवान्की आज्ञाको सुनाकर (संत-सेवार्थ) बहुत आग्रह किया, तब बड़ी मुश्किलसे आप उस मन्दिरमें आये। आपने उस मन्दिरमें भगवान्के श्रीविग्रहकी स्थापना की और उनका नाम 'श्रीलालबिहारीजी' रखा। श्रीठाकुरजीके सुन्दर मधुर स्वरूपको देख-देखकर आप सर्वदा उसी आनन्दमें विभोर रहते। बड़े प्रेमके साथ आप सन्तोंकी सेवा करते, इनकी सेवासे सन्तजन बहुत प्रसन्न होते और सन्तोंको सुखी देखकर आप भी प्रसन्न रहते। सन्त-भगवन्तकी सेवाके लिये जो भी कुछ सामान आता था, आप उसे उसी दिन सेवामें लगा देते, बासी अन्न-धन दूसरे दिनके लिये नहीं रखते। एक बार रसोइयाने छिपाकर कुछ सामान रख रखा था। संयोगवश आश्रममें कई सन्त आ गये। तब श्रीगदाधरदासजीने अपने रसोइयासे कहा—कुछ सामान हो तो उसीसे रसोई बनाकर प्रेमपूर्वक इन साधु-सन्तोंको भोजन करा दो।

शिष्य रामदास और वेंकटदास रसोइयाने श्रीगदाधरदासजीसे कहा—'श्रीठाकुरजी भूखे न रहें, इसलिये मैंने भोगके लिये कुछ थोड़ी-सी सामग्री

बचाकर रखी है।' आपने कहा कि 'उसे निकालो और सन्तोंको खिला दो, प्रातःकाल कहीं-न-कहींसे कुछ और आयेगा।' रसोइयाने आपकी आज्ञाके अनुसार रसोई बनाकर सन्तोंको प्रसाद पवाया। श्रीगदाधरदासजीने भी सन्तोंका प्रसाद लिया और बहुत बड़े सुखका अनुभव किया। सन्त-सेवामें इनके प्रेमको देखकर उन सन्तोंने प्रसन्न होकर कहा कि 'आपके पवित्र सुयशको सारा संसार गायेगा।' सबेरा हुआ, पर कहींसे कुछ भोगके लिये सामान नहीं आया। तीन पहर बीत गये, श्रीठाकुरजी भूखे ही रहे, उन्हें भोग नहीं लगा। इससे रसोइयाको क्रोध हुआ, वह कहने लगा—'न जाने कब परमात्मा हमको ऐसे गुरुसे और इस दुःखसे छुड़ायेगा।' उसी समय किसी भक्त सेवकने आकर दो सौ रुपये श्रीगदाधरदासजीको भेंट किये। तब आप बोले—इन रुपयोंको इसके माथेपर पटक दो। देखें, यह कितना खाता है।

श्रीगदाधरदासजीकी इस बातको सुनकर वह सेठ डर गया, उसने सोचा कि शायद महाराजजी मेरे ऊपर रुष्ट हो गये हैं। पश्चात् श्रीगदाधरदासजीने समझाकर उसका समाधान किया। तब तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और भक्त-भगवन्तके भोगमें जितना सामान लगता, नित्य उसे देता। इस प्रकार वह सेवा करके सुख प्राप्त करने लगा। साधु-सेवामें उसकी श्रद्धा अब और बढ़ गयी। कुछ दिन बुरहानपुरमें रहनेके बाद आयुको थोड़ी जानकर श्रीगदाधरदासजी वहाँसे चलकर मथुराजी आ गये और वहीं रहकर परमानन्ददायिनी व्रजलीलाओंके मधुर रसका आस्वादन करने लगे। इस प्रकार आपने श्रीबिहारिणी-बिहारीजीकी तथा साधुओंकी प्रेमसे सेवा की। उनके श्रीचरणकमलोंमें अपने मनको भलीभाँति लगाया।

श्रीप्रियादासजी श्रीगदाधरदासजीके इस सन्तप्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बुरहानपुर ढिग बाग तामें बैठे आय करि अनुराग गृह त्याग पागे स्याम सों।
गाँव मैं न जात, लोग किते हाहा खात, सुख मानि लियौ गात, नहीं काम और काम सों॥
पर्‌यौ अति मेह, देह बसन भिजाय डारे, तब हरि प्यारे बोले स्वर अभिराम सों।
रहै एक साह भक्त कही जाय ल्यावौ उन्हैं मन्दिर करावौ तेरौ भर्‌यौ घर दाम सों॥ ६१४॥
नीठि नीठि ल्याये हरि बचन सुनाये जब, तब करवायौ ऊँचौ मन्दिर सँबारिकै।
प्रभु पधराये, नाम 'लाल' औ 'विहारी' स्याम अति अभिराम रूप रहत निहारिकै॥
करैं साधु सेवा जामें निपट प्रसन्न होत, बासी न रहत अन्न सोवैं पात्र झारिकै।
करत रसोई जोई राखी ही छिपाय सामा आये घर सन्त, आप कही ज्यांवौ प्यारिकै॥ ६१५॥
बोल्यौ प्रभु भूखे रहैं ताके लिये राख्यौ कछू भाष्यो तब आप काढ़ौ भोर और आवैगौ।
करिकै प्रसाद दियौ लियौ सुख पायौ सब सेवा रीति देखि कही जग जस गावैगौ॥
प्रात भये भूखे हरि गए तीन जाम ढरि रहे क्रोध भरि कहैं कबधौं छुटावैगौ।
आयौ कोऊ ताही समै दो सत रुपैया धरे बोले गुरु 'सीस लै कै मारौ' कितौ पावैगौ॥ ६१६॥
डर्‌यौ वह साह, मति मोपै कछू कोप कियौ कियौ समाधान सब बात समुझाई है।
तब तौ प्रसन्न भयौ अन्न लगै जितौ देत, सेवा सुख लेत, साधु रुचि उपजाई है॥
रहे कोऊ दिन, पुनि मधुपुरी बास लियो, पियौ ब्रजरस लीला अति सुखदाई है।
लाल लै लड़ाए सन्त नीके भुगताए गुन जाने जिते, गाये, मति सुन्दर लगाई है॥ ६१७॥

श्रीनारायणदासजी

भक्ति जोग जुत सुदृढ़ देह निज बल करि राखी।
हिएँ सरूपानंद लाल जस रसना भाषी॥
परिचय प्रचुर प्रताप जान मनि रहस सहायक।
श्रीनारायन प्रगट मनो लोगनि सुखदायक॥
नित सेवत सन्तनि सहित दाता उत्तर देस गति।
हरि भजन सींव स्वामी सरस श्रीनारायनदास अति॥ १८७॥

स्वामी श्रीनारायणदासजी भगवद्भजनकी सीमा थे और आपका हृदय अति सरस था। आपने भक्तियोगसे युक्त सुदृढ़ शरीरको अपनी भक्तिके प्रतापसे स्वस्थ एवं भक्तिमय आचरण करनेयोग्य रखा। हृदयमें श्रीगोपाललालके सुन्दर रूपके ध्यानका आनन्द लेते हुए आप जिह्वासे उनके सुयशका वर्णन करते रहते थे। भक्तिके प्रतापसे आपके द्वारा अनेक चमत्कार प्रकट हुए। सुजानशिरोमणि श्यामसुन्दर रहस्यमय ढंगसे आपकी सहायता करते थे। इसी तरह आप सबके सहायक थे। श्रेष्ठज्ञानी होनेके कारण आप रहस्यका बोध कराकर साधककी सहायता करते थे। विश्वका कल्याण करनेके लिये मानो स्वयं नारायण भगवान्ने ही अवतार लिया था। आप बड़े प्रेमके साथ सन्तोंकी सेवा करते थे। उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेशमें निवास करनेवालोंको आपने उपदेश देकर उन्हें सद्गति प्रदान की॥ १८७॥

श्रीनारायणदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

महात्मा श्रीनारायणदासजी पहले बदरिकाश्रममें निवास करते थे, फिर वहाँसे श्रीमथुरापुरीको चले आये। यहाँ पुरीका दर्शन करके आपको बड़ा भारी सुख मिला। आप श्रीकेशवदेवजीके द्वारपर रहने लगे। आपने मनमें विचार किया कि मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये जो लोग आते हैं, उन्हें भगवान्के दर्शनोंका आनन्द अच्छी प्रकारसे नहीं मिलता है, क्योंकि उनके मनमें जूतोंके चोरी चले जानेका भय बना रहता है, इसलिये मैं दर्शनार्थियोंके जूतोंकी रखवाली किया करूँ तो इन भक्तोंको भगवद्दर्शनका पूरा-पूरा आनन्द मिलेगा। ऐसा निश्चयकर आप जूतोंकी रखवाली करने लगे। इससे दर्शनार्थी और स्वयं आप भी आनन्दित हुए। दूसरे लोग आपके प्रभावको तथा आपकी सेवा-निष्ठाको नहीं जानते थे कि आपके हृदयमें सेवाका कैसा अपार भाव भरा है। एक बार एक दुष्ट आया और उसने एक बड़ी-सी पोटली आपके सिरपर रख दी और कहा कि इसे ले चलो। आप बिना किसी ननु-नचके पोटली लादकर उसके साथ चल दिये।

जब श्रीनारायणदासजी उस दुष्टकी पोटलीको सिरपर लिये जा रहे थे तो उसी समय रास्तेमें एक कोई बड़े प्रतिष्ठित सज्जन मिल गये और उन्होंने श्रीनारायणदासजीको पहचान लिया। फिर बड़े अनुरागमें भरकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और उस दुष्टको बड़े जोरसे डाँटा-फटकारा। तब उस महादुष्टने भी आपकी महिमाको जाना और उसने भी इनके चरण पकड़ लिये। उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। उसका देहाभिमान छूट गया और वह पछताकर कहने लगा कि मुझसे बड़ी भारी भूल हुई। श्रीनारायणदासजीने उसे समझाते हुए कहा—'तुम्हारा काम हो रहा है, तुम अपने मनमें किसी बातकी चिन्ता मत करो।' यह सुनकर वह रोने लगा, उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उसने प्रार्थना करते हुए श्रीनारायणदासजीसे कहा कि 'अब मैं घरका मुख नहीं देखूँगा। मुझे अपनी शरणमें रखिये।' उसके दैन्य-भावसे प्रसन्न होकर आपने उसे भगवद्भक्तिका उपदेश दिया। उसे भी मालूम हो गया कि

भक्ति-जगत् कैसा होता है। साधु-सन्तोंमें क्या विशेषता है, उनकी कैसी क्षमा-शक्ति होती है। इस चरित्रका तात्पर्य यह है, साधुजन मेघके समान समदर्शी और उदार होते हैं।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आये बद्रीनाथ जू तें, मथुरा निहारि नैन, चैन भयौ, रहैं जहाँ केसौजू कौ द्वार है।
आवै दरसनी लोग जूतनि कौ सोग हिये रूप कौ न भोग होत कियौ यों बिचार है॥
करै रखवारी, सुख पावत है भारी, कोऊ जानै न प्रभाव, उर भाव सो अपार है।
आयो एक दुष्ट पोट पुष्ठ सो तौ सीस दई लई, चले मग ऐसौ धीरज कौ सार है॥ ६१८॥
कोऊ बड़ौ नर, देखि मग पहिचानि लिये किये, परनाम भूमि परि, भरि नेह कौ।
जानिकै प्रभाव, पाँव लीने महादुष्ट हूँ नै, कष्ट अति पायो छूट्यौ अभिमान देह कौ॥
बोले आप 'चिन्ता जिनि करौ, तेरौ काम होत', नैन नीर सोत 'मुख देखौं नहीं गेह कौ'।
भयौ उपदेश, भक्ति देस उन जान्यौं साधु सक्ति कौ विसेस, इहाँ जानौ भाव मेह कौ॥ ६१९॥

श्रीभगवानदासजी

भजन भाव आरूढ़ गूढ़ गुन बलित ललित जस।
श्रोता श्रीभागवत रहसि ग्याता अच्छर रस॥
मथुरापुरी निवास आस पद सन्तनि इकचित।
श्रीजुत खोजो स्याम धाम सुखकर अनुचर हित॥
अति गंभीर सुधीर मति हुलसत मन जाके दरस।
भगवानदास श्रीसहित नित सुहृद सील सज्जन सरस॥ १८८॥

भक्त श्रीभगवानदासजी श्री (-भक्ति)-से सम्पन्न थे। सभीके सुहृद, सुशील, सज्जन और परम रसिक थे। आप सर्वदा भजन-भावमें तत्पर रहते थे। गोप्य गुणोंसे युक्त भगवान्‌के मनोहर सुयशसे आपका हृदय परिपूर्ण था। श्रीमद्भागवतके रसिक श्रोता थे, चरित्रोंके गम्भीर रहस्य तथा अक्षर (अविनाशी)-के रसके ज्ञाता अनुभवी थे। आप श्रीमथुरापुरीमें निवास करते थे और एकाग्र मनसे एकमात्र सन्तोंके श्रीचरणोंकी आशा रखते थे। श्रीमान् खोजीजी एवं श्यामदासके परिवारको सुख देनेवाले तथा उनके हितकारी सेवक थे। आप अत्यन्त धीर-गम्भीर बुद्धिवाले एवं ऐसे प्रेमी भक्त थे कि आपके दर्शन-मात्रसे मन प्रसन्न हो जाता था॥ १८८॥

श्रीभगवानदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीभगवानदासजी आमेरनरेश भारमलके पुत्र थे। आप बादशाह अकबरके मनसबदार थे। अकबरकी मृत्युके बाद जहाँगीरके समयमें आपको मथुराका हाकिम बनाया गया। आपका वैष्णव तिलक और कण्ठीमें विशेष प्रेम था। एक बार (जहाँगीर) बादशाहके मनमें आया कि तिलक-कण्ठी धारण करनेका प्रण किसका सच्चा और किसका कच्चा है—इसकी परीक्षा करनी चाहिये। उसने मथुरा नगरमें ढिंढ़ोरा पिटवा दिया कि 'कोई भी माला-तिलक धारण न करे, यदि कोई माला-तिलक धारण किये देखा जायगा तो उसे फाँसीकी सजा दी जायगी।' बादशाहकी आज्ञाके अनुसार बहुतोंने प्राणोंके लोभमें आकर माला-तिलक धारण करना बन्द कर दिया। बहुत-से लोग अपने घरोंमें छिप गये, बाहर नहीं निकले। लोगोंने श्रीभगवानदासजीको समझाया कि

बादशाह जानेगा तो मरवा डालेगा, परंतु भक्त श्रीभगवानदासजी बादशाहकी आज्ञाको सुनकर बिलकुल भयभीत नहीं हुए, क्योंकि उनके हृदयमें आनन्दस्वरूपा अपार भक्ति भरी हुई थी। उन्होंने अति सुन्दर वैष्णव-वेश (द्वादश तिलक एवं कण्ठी-माला) धारण किया और बादशाहके दरबारमें जा पहुँचे। बादशाहको माला-तिलक धारण करनेकी दृढ़-निष्ठा बहुत ही प्रिय लगी। वह इनकी इस निष्ठा और निर्भयताको देखकर रीझ गया। प्रसन्न होकर बादशाहने श्रीभगवानदासजीसे कहा—'आप जो चाहो, वह माँग लो।' आपने अपने जीवनपर्यन्त मथुरापुरीमें निवास करनेकी इच्छा प्रकट की, इसे बादशाहने स्वीकार कर लिया। इसके बाद आप मथुराको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं गये। आपने श्रीगोवर्धनमें श्रीहरिदेवजीका लाल पत्थरका मन्दिर बनवाया, जो बड़ा ही दर्शनीय है।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

जानिबे कों पन, पृथीपति मन आई, यों दुहाई लै दिवाई माला तिलक न धारियै।
मानि आनि प्रान, लोभ, केतिकनि त्याग दिये, छिपे नहीं जात, जानी बेग मारि डारियै॥
भगवानदास उर भक्ति सुखरास भर्‍यौ कर्‍यौ लै सुदेस देस, रीति लागी प्यारियै।
रीझ्यौ नृप देखि, रीझ मथुरा निवास पायौ, मन्दिर करायौ 'हरिदेव' सों निहारियै॥ ६२०॥

श्रीकल्याणदासजी

जगन्नाथ को दास निपुन अति प्रभु मन भायो।
परम पारषद समुझि जानि प्रिय निकट बुलायो॥
प्रान पयानो करत नेह रघुपति सों जोर्‍यो।
सुत दारा धन धाम मोह तिनुका ज्यों तोरयो॥
कौंधनी ध्यान उर में लस्यौ, राम नाम मुख जानकी।
भक्त पच्छ ऊदारता, यह निबही कल्यान की॥ १८९॥

भक्तोंका पक्ष लेना तथा उदारतापूर्वक सबसे व्यवहार करना—इन दोनों बातोंको श्रीकल्याणदासजीने जीवनभर निभाया। ये श्रीजगन्नाथजीके सेवक थे और सेवा करनेमें बड़े चतुर थे, अतः भगवान्‌को बहुत ही अच्छे लगते थे। भगवान्‌ने इन्हें अपना नित्य प्रिय पार्षद मानकर अपने पास बुला लिया। इन्होंने प्राण त्यागते समय स्त्री-पुत्र, धन-धामके महामोहको तृणके समान तोड़कर केवल भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे स्नेह जोड़ा और हृदयमें श्रीरामजीकी कौंधनीका ध्यान तथा मुखसे श्रीसीतारामजीके नामका उच्चारण करते हुए सद्गति प्राप्त की॥ १८९॥

श्रीकल्याणदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकल्याणदासजी सन्त-सेवी सद्गृहस्थ थे। आप ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे और श्रीराघवेन्द्रसरकार आपके इष्टदेव थे। एक बार आपके यहाँ कन्याका विवाह था। जाति-बिरादरीके साथ-साथ सन्तोंको भी आपने आमन्त्रित कर रखा था। जब भोजनका समय हुआ तो आपने सन्तोंकी पंगत पहले करा दी। इससे अन्य ब्राह्मण लोग बड़े असन्तुष्ट हुए और कहने लगे कि इन साधुओंकी जाति-पाँतिका कोई पता नहीं है, आपने इन्हें कैसे पहले खिला दिया? इसपर आपने सबको समझाते हुए कहा कि सन्तोंका 'अच्युत' गोत्र होता है और ये विश्वका कल्याण करनेवाले होते हैं। सन्त धरा-धामपर साक्षात् भगवान् श्रीहरिके प्रतिनिधि होते हैं, अतः उनके पहले प्रसाद ग्रहण कर लेनेसे आप सबको असन्तुष्ट नहीं होना चाहिये। इस प्रकारकी इनकी सन्त-निष्ठा देखकर अन्य ब्राह्मण भी

प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो गये। आपके यहाँ सन्त-सेवा चल रही है, सुनकर और भी बहुतसे अनामन्त्रित सन्त भी आ पहुँचे। यह देखकर बिरादरीके लोग कहने लगे—अभी आपके घराती और बराती बाकी ही हैं, अगर आप इन अनामन्त्रित सन्तोंको भोजन करा देंगे तो उनके लिये क्या बचेगा? इसपर आपने कहा—चिन्ता करनेकी बात नहीं है, सन्तोंको खिलानेसे कम नहीं पड़ता, सारी पूर्ति रामजी करेंगे। यह कहकर आपने सब सन्तोंको भोजन करा दिया, फिर जब घरातियों-बारातियोंको खिलानेकी बात आयी तो आपने पंगतमें सबको बैठवा दिया और परोसनेवालोंसे परोसनेको कहा। प्रभुकृपासे सभीने पूर्ण तृप्तिका अनुभव किया और भोजनमें किसी भी प्रकारकी न्यूनता नहीं आयी। सन्त-कृपाका ऐसा चमत्कार देखकर सब लोग धन्य-धन्य कह उठे।

श्रीसन्तदासजी तथा श्रीमाधवदासजी

संतदास सदबृत्ति जगत छोई करि डार्‌यो।
महिमा महा प्रबीन भक्तिवित धर्म विचार्‌यो॥
बहुर्‌यो माधौदास भजन बल परचौ दीनो।
करि जोगिनि सों बाद बसन पावक प्रतिलीनौ॥
परम धर्म बिस्तार हित प्रगट भए नाहिन तथा।
सोदर सोभूराम के सुनौ संत तिन की कथा॥ १९०॥

हे भगवद्भक्तजनो! श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजीके दोनों सहोदर भाइयोंकी कथाका श्रवण कीजिये। सदाचार एवं सात्त्विक वृत्तिसे निर्वाह करनेवाले श्रीसन्तदास (संतरामजी)-ने इस जगत्‌को नीरस एवं नि:सार वस्तु जान-मानकर उसे त्याग दिया। आप महामहिमावाले तथा प्रवीन (अर्थात् सत्य-असत्यका निर्णय करनेमें चतुर) थे, भक्तितत्त्वके ज्ञाता थे, अत: सोच-विचार करके उसे अपनाया। दूसरे भाई श्रीमाधवदासजीने भजनके प्रतापसे चमत्कार दिखाया और अभक्त योगियोंसे वाद-विवाद करके अपने वस्त्र जलती अग्निमें डालकर ज्यों-के-त्यों वापस कर लिये। परमधर्ममयी श्रीहरिभक्तिके प्रचार-प्रसारके लिये ही ये दोनों भाई प्रकट हुए। इन्होंने जैसा कार्य किया, वैसा दूसरा कोई नहीं कर सकता है॥ १९०॥

श्रीमाधवदासजी और श्रीसन्तदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमाधवदासजी और श्रीसन्तदासजी दोनों सगे भाई थे। श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजीके आशीर्वादसे इन दोनोंका जन्म हुआ था। एक बार श्रीमाधवदासजीने एक नाथपंथी योगीके शिष्य एक राजाको दीक्षा देकर वैष्णव बना लिया। इससे वह कनफटा योगी बहुत नाराज हुआ और बोला कि तुमने ऐसा क्यों किया? आपने कहा—ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिसे पूजित होनेके कारण विष्णुभगवान् श्रेष्ठ हैं। उनके चरणोंसे गंगाकी उत्पत्ति हुई, जो त्रिलोकतारिणी अघहारिणी हैं; अत: किसी भी देवी-देवके उपासकको विष्णु-भक्तिका उपदेश देना उचित है, इससे वे देवगण अप्रसन्न नहीं होते हैं। इस सम्बन्धमें जोगीने श्रीमाधवदासजीसे बहुत वाद-विवाद किया, पर इनसे नहीं जीता, तब बोला कि—हम अपने कानोंकी मुद्राएँ और सिंगीको अग्निमें डालते हैं, तुम अपनी कण्ठी-मालाको डालो। जिसकी वस्तुएँ जल जायँ, वह हारा और जिसकी न जलें, वह जीता माना जायगा। श्रीमाधवदासजीने कहा—तुलसी-मालाको हम अग्निमें नहीं डाल सकते हैं। हम अपना वस्त्र डालेंगे। अग्निमें डालनेपर जोगीकी मुद्राएँ और सिंगी जल गयीं, परंतु इनका अँचला नहीं जला। हारकर उसने चरण पकड़े,

क्षमा-प्रार्थना करके अनुयायी बना। उस योगीमें अग्नि-स्तम्भन सिद्धि थी। कई स्थानोंमें उसका प्रदर्शन कर चुका था, अतः उसे अहंकार था। भक्तिके सामने मायिक सिद्धियाँ व्यर्थ हो जाती हैं, इसलिये वह हार गया। उन दिनों हरियाणामें बड़ा आतंक फैला हुआ था, वे वैष्णव सन्तोंको टिकने नहीं देते थे। एक बार कई लोगोंने आपकी भजन-कुटीमें चारों ओरसे आग लगा दी, पर कुटी नहीं जली। भक्तिके ऐसे प्रभावको देखकर बहुत-से लोग आपके शिष्य बन गये।

एक बार श्रीसन्तदासजीके मनमें उत्कट वैराग्य उत्पन्न हुआ और ये जंगलमें जा विराजे। संसारियोंसे आप कुछ भी प्राप्त करनेकी आशा नहीं करते थे। बहुत-से ग्रामीण लोगोंने आपसे आकर कहा कि आप चलकर गाँवमें रहिये, वहाँ आपके भोजनादिका यथोचित प्रबन्ध हो जायगा। यहाँ जंगलमें कुछ भी प्रबन्ध नहीं हो सकता है। श्रीसन्तदासजीने कहा—मुझे तो श्रीगोविन्दजीकी आशा है। आप लोग मेरी चिन्ता न करें। यह सुनकर गाँवके लोग निराश होकर चले आये। आप वहीं भजनमें मग्न रहे। भगवान्ने नगरके हाकिमको आदेश दिया कि मेरा भक्त वनमें बैठा है, उसकी सेवा करो। उस हाकिमने बहुतसे मिष्ठान्न-पक्वान्न लाकर आपको भोजन कराया। समीपमें चौकीदारोंको नियुक्त किया। इसके बाद आपकी महिमा बढ़ी। अनेक लोग दर्शन करने और उपदेश लेने आने लगे। इस प्रकार आप दोनों भाइयोंने परमधर्मका विस्तार किया।

श्रीकन्हरदासजी

कृष्न भक्ति को थंभ ब्रह्मकुल परम उजागर।
छमासील गंभीर, सर्ब लच्छन को आगर॥
सर्बसु हरिजन जानि हृदय अनुराग प्रकासै।
असन बसन सनमान करत अति उज्ज्वल आसै॥
सोभूराम प्रसाद तें कृपादृष्टि सब पर बसी।
बूड़िए बिदित कन्हर कृपाल आतमाराम आगम दरसी॥ १९१॥

श्रीकन्हरदासजी बूड़िया ग्रामके निवासी, आत्मामें रमण करनेवाले, परम दयालु, शास्त्रोंके तथा भविष्यके द्रष्टा थे। आप श्रीकृष्णभक्तिके आधारभूत खम्भेके तुल्य थे तथा ब्राह्मणवंशमें प्रकट, अति प्रसिद्ध, क्षमाशील, गम्भीर एवं सभी शुभगुणोंसे सम्पन्न थे। भक्तोंको अपना सब कुछ जानकर उनके प्रति बड़ा अनुराग करते थे। भोजन-वस्त्र आदिसे सेवा तथा उनका बहुत सम्मान करते थे। आपका उद्देश्य बड़ा पवित्र था। गुरुदेव श्रीस्वभूरामजीकी कृपाका बल पाकर आपने सभी जीवोंके ऊपर कृपाकी वर्षा की॥ १९१॥

श्रीकन्हरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकन्हरदासजी पंजाब प्रान्तके बूड़िया ग्रामके निवासी थे। आप भविष्यद्रष्टा सन्त थे। भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाओंकी जानकारी आपको पहले ही हो जाती थी और आप उन्हें अपने शिष्योंको बता देते थे। एक बार आपके यहाँ रसोई बन रही थी, अचानक आपने भण्डारीको आज्ञा दी कि बीस सन्तोंके लिये सामग्री और बढ़ा दो। भण्डारी और रसोइयेने आज्ञाका पालन किया और सचमुच पंगतके समय बीस मूर्तियाँ आ गयीं। इसी प्रकार आप प्रायः अपने यहाँ और अपने सेवकोंके यहाँ आनेवाले सन्तोंकी संख्या बता देते और उनकी बतायी संख्या सदैव सत्य होती।

श्रीगोविन्ददासजी भक्तमाली

रुचिरसील घननील लील रुचि सुमति सरित पति।
बिबिधि भक्त अनुरक्त ब्यक्त बहु चरित चतुर अति॥
लघु दीरघ सुर सुद्ध बचन अबिरुद्ध उचारन।
बिस्वबास बिस्वास दास परिचय बिस्तारन॥
जानि जगत हित सब गुननि सुसम नरायनदास दिय।
भक्त रतन माला सुधन गोबिंद कंठ बिकास किय॥ १९२॥

भक्तरत्नमाला (भक्तमाल)-रूपी उत्तम धन श्रीगोविन्ददासजीके कण्ठमें सुशोभित होकर वृद्धिको प्राप्त हुआ। इन्हें सम्पूर्ण भक्तमाल कण्ठस्थ था। अत्यन्त सुन्दर शील-स्वभाववाले तथा मेघके समान नील वर्णवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंमें आपकी सहज ही रुचि थी। शुद्ध बुद्धिके तो आप समुद्र ही थे। सभी प्रकारके भक्तोंमें आपका परम अनुराग था और उन सबके चरित्रोंका वर्णन करनेमें आप अत्यन्त चतुर थे तथा श्रीभक्तमालको पढ़ते या गाते समय ह्रस्व-दीर्घ स्वरोंका यथावत् उच्चारण करते थे। चरित्रोंका वर्णन करनेमें वाक्य एवं शब्दोंकी इस प्रकार योजना करते थे कि उसमें विरोध न हो, अर्थकी संगतिमें बाधा न हो। आप सम्पूर्ण विश्वमें निवास करनेवाले भगवान् एवं उनके भक्तोंमें दृढ़ विश्वास रखते थे और भक्तोंके चमत्कारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करते थे। सभी जीवोंके हितमें तथा भक्त-भक्ति-भगवन्त और गुरुदेवकी सेवा-निष्ठा आदिमें श्रीनाभाजीने अपने समान जानकर 'भक्तरत्नमाल' रूप सम्पत्तिको इन्हें प्रदान किया, अतः ये श्रीभक्तमालके श्रेष्ठ प्रवक्ता प्रथम भक्तमाली हुए॥ १९२॥

श्रीजगतसिंहजी

श्रीजुत नृपमनि जगतसिंह दृढ़ भक्ति परायन।
परम प्रीति किए सुबस सील लक्ष्मीनारायन॥
जासु सुजसु सहजहीं कुटिल कलि कल्प जु धायक।
आग्या अटल सुप्रगट सुभट कटकनि सुखदायक॥
अति ही प्रचंड मार्तंड सम तम खंडन दोर्दंड बर।
भक्तेस भक्त भव तोषकर संत नृपति बासो कुँवर॥ १९३॥

भक्तोंके स्वामी जो भगवान् उनके महान् भक्त श्रीशिवको सन्तुष्ट करनेवाले भक्तराज श्रीजगतसिंहजी वासोदेईके सुपुत्र थे। आप राजाओंमें श्रेष्ठ, भक्तिमें दृढ़ निष्ठावाले भक्त थे। आपने अपनी सच्ची प्रीति तथा विनम्र स्वभावसे श्रीलक्ष्मीनारायणभगवान्को अपने वशमें कर लिया था। आपका सुयश कलियुगके दोष-पापोंको नष्ट करनेवाला है। आपकी आज्ञा अटल थी, उसका उल्लंघन करनेका साहस किसी भी योद्धा या दुष्टमें नहीं होता था। समरभूमिमें आपके पराक्रमको देखकर वीरोंकी सेनाएँ प्रसन्न हो जाती थीं और दूने उत्साहसे युद्ध करने लगती थीं। आपके भुजदण्ड प्रचण्ड सूर्यके तुल्य थे, उससे भयरूप अन्धकारका सर्वथा नाश हो जाता था॥ १९३॥

श्रीजगतसिंहजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

भक्तवर राजा श्रीजगतसिंहजी श्रीलक्ष्मीनारायण-भगवान्की सेवामें पूर्णरूपसे तत्पर रहते थे, उन्होंने

प्रतिज्ञा कर ली थी कि भगवान्‌का डोला सदा अपने साथ रखूँगा। तदनुसार डोला आपके साथ ही रहता। जब आप युद्ध करनेके लिये लड़ाईके मैदानमें जाते तो आप आगे रहते और डोला पीछे रहता। इसके अतिरिक्त जब कभी आप किसी यात्रामें जाते तो आगे-आगे भगवान्‌का डोला रहता और सेवककी तरह आप पीछे-पीछे चलते। आपके हृदयमें श्रीठाकुरजीकी सेवाका ऐसा उत्साह था कि सेवाके लिये नित्य जल भरकर घड़ेको अपने सिरपर रखकर लाते। आपकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर जयसिंह और जसवन्तसिंहको बड़ी प्रसन्नता हुई। एक बार दिल्लीमें सभी राजा लोग इकट्ठे हुए। वहाँ श्रीयमुनाजलका घड़ा गाजे-बाजेसहित सिरपर रखकर लाते हुए श्रीजगतसिंहको जयसिंह और जसवन्तसिंहने देखा तो धरतीपर लेटकर प्रणाम किया। फिर विनती करते हुए कहा—'वस्तुतः आपका शरीर धारण करना ही सफल है, क्योंकि आपने शरीरसे सेवा करके भगवत्प्रेमको प्राप्त कर लिया।' इस प्रकार इनकी प्रशंसा करते-करते दोनों ही भगवत्प्रेमके प्रसंगमें डूब गये।

राजा जगतसिंहजीने जयसिंहजीसे कहा—'मुझमें भगवत्प्रेम कहाँ है? सच्चा प्रेम तो आपकी बहन दीपकुँवरिजीमें है, उसके प्रेमकी गन्धको भी मैं नहीं पा सकता हूँ, वे तो वात्सल्य प्रेमरसकी खान हैं। मैं तो थोड़ी-बहुत भगवान्‌की सेवा कर पाता हूँ।' यह सुनकर जयसिंहजीको बड़ा सुख हुआ। कुछ समयसे किसी कारणवश ये अपनी बहन श्रीदीपकुँवरिसे नाराज रहते थे। अब श्रीजगतसिंहजीसे उनके प्रेमका परिचय पाकर जयसिंहजीने उस नाराजगीको अपने हृदयसे निकाल दिया। बहनके जो गाँव छीन लिये थे, वे फिरसे दे दिये और स्वयं हरिका ध्यान करने लगे। मन्त्रीको लिखित आदेश दिया कि 'बहनजी जैसे-जैसे सन्त-भगवन्तकी सेवा करना चाहें, वैसे-वैसे उन्हें करने देना। इनकी कृपासे अब मैं भी दिन-रात भक्त-भगवद्‌गुणोंका गान करता हूँ।'

श्रीप्रियादासजीने राजा जगतसिंहके इस भगवत्प्रेमका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

जगता कौ पन मन सेवा श्री नारायण जू, भयौ ऐसौ पारायण, रहै डोला सङ्ग ही।
लरिबे कों चलै आगै, आगै सदा पीछे रहै, ल्यावै जल सीस, ईश भर्‍यौ हियो रङ्ग ही॥
सुनि जशवन्त जयसिंह कै हुलास भयौ, देख्यौ, दिल्ली माँझ, नीर ल्यावत अभङ्ग ही।
भूमि परि, बिनै करी, 'धरी देह तुमहीं नै', यातै पायौ नेह भीजि गये यों प्रसङ्ग ही॥ ६२१॥
नृपति जैसिंहजू सों बोल्यौ 'कहा नेह मेरे? तेरी जो बहिन ताकी गन्ध को न पाऊँ मैं'।
नाम 'दीपकुंवरि' सो बड़ी भक्तिमान जानि, वह रसखानि ऐपै कछुक लड़ाऊँ मैं॥
सुनि सुख भयौ भारी, हुती रिस वासों, टारी, लिये गांव काढ़ि फेरि दिये, हरि ध्याऊँ मैं।
लिखिकै पठाई 'बाई करैं सो करन दीजै, लीजै साधु सेवा करि निस दिन गाऊँ मैं'॥ ६२२॥

श्रीगिरिधरग्वालजी

प्रेमी भक्त प्रसिद्ध गान अति गदगद बानी।
अंतर प्रभु सों प्रीति प्रगट रहै नाहिन छानी॥
नृत्य करत आमोद बिपिन तन बसन बिसारै।
हाटक पट हित दान रीझि तत्काल उतारै॥
मालपुरै मंगल करन रास रच्यो रस रंग कौ।
गिरिधरन ग्वाल गोपाल को सखा साँचिलो संग कौ॥ १९४॥

श्रीगिरिधरग्वालजी गोपालकृष्णके सच्चे सखा और साथी थे। ये प्रसिद्ध प्रेमी भक्त थे। प्रेमके आवेशमें आकर गद्‌गद कण्ठसे जब ये भगवद्‌गुणगान करते तो उस समय आपके हृदयकी प्रीति छिपाये नहीं छिपती थी, प्रकट हो जाती थी। प्रेम-विवश आनन्दमें मग्न होकर जब ये श्रीवृन्दावनमें नृत्य करते तो उस समय इन्हें अपने

शरीरकी तथा वस्त्राभूषणोंकी सुध नहीं रहती। उस समय यदि कोई आपके सामने पड़ जाता तो आप रीझकर उसे सोनेके गहने अथवा जरीदार वस्त्र उतारकर दे देते। एक बार प्रेमी भक्तोंके मंगल कल्याणके लिये आपने मालपुरा (जयपुरके निकट) नामक ग्राममें रास करवाया। उसमें रसरूपी रंगकी वर्षा हुई, जिसमें सभी रँग गये॥ १९४॥

श्रीगिरिधरग्वालजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगिरिधरग्वालजी जातिसे ब्राह्मण थे, परंतु गोचारणमें स्वाभाविक स्नेह होनेके कारण आपकी 'ग्वाल' उपाधि हो गयी थी। श्रीगिरिधरग्वालजीको सर्वदा साधु-सेवाका ही स्मरण रहता था। सन्तोंका दर्शन करके आप कृतार्थ हो जाते थे, अपनेको धन्य मानते थे। सन्त-तत्त्वको आपने भलीभाँति समझ लिया था, अतः शरीर छूट जानेके बाद भी उस सन्तका चरणामृत लेते थे। इससे अधिक सन्तोंमें प्रेम करनेकी रीति और क्या हो सकती है। जो ब्राह्मण लोग इनकी दृढ़-निष्ठासे अपरिचित थे, उन्होंने मृतकका चरणामृत लेना अनुचित मानकर पंचोंको एकत्र किया और उसमें श्रीग्वालभक्तजीको भी बुलाया। सभी लोगोंने इनसे कहा कि 'मृतकका चरणोदक लेना ठीक नहीं है, आप इसे छोड़ दीजिये।' आपने उत्तर दिया कि 'जिसे सन्तोंमें अश्रद्धा हो, उनके महत्त्वको न जानता हो, वह उन्हें मृतक मानकर उनका चरणामृत न ले। मैं सन्तोंमें श्रद्धा करता हूँ, उनके अद्‌भुत प्रभावको भलीभाँति जानता हूँ। शरीर त्यागकर भगवद्धाम जानेवाले सन्तोंको मृतक नहीं मानता हूँ। अतः उनका चरणामृत लेता हूँ, जिसे मृतक-बुद्धि हो, आपलोग उसे मना कीजिये।' यह सुनकर सबोंने इनका जाति-पाँतिसे बहिष्कार कर दिया, फिर चमत्कारको देखकर सभी नतमस्तक हुए। सबको इनकी दृढ़निष्ठा अच्छी लगी। सभी लोग इनकी प्रशंसा करने लगे।

श्रीप्रियादासजीने श्रीगिरिधरग्वालजीकी इस सन्तनिष्ठाका वर्णन इस प्रकार किया है—

गिरिधर ग्वाल, साधु सेवा ही कौ ख्याल जाके, देखि यौं निहाल होत प्रीति साँची पाई है।
सन्त तन छूटे हूँते लेत चरणामृत जो, और अब रीति कहौ कापै जात गाई है॥
भये द्विज पञ्च इक ठौरे सो प्रपञ्च मान्यौ आन्यौ सभा माँझ कहैं 'छोड़ौ न सुहाई है।
'जाके हो अभाव मत लेवौ, मैं प्रभाव जानौं मृतक यों बुद्धि ताकौ बारो' सुनि भाई है॥ ६२३॥

श्रीगोपालीजी

प्रगट अंग में प्रेम नेम सों मोहन सेवा।
कलिजुग कलुष न लग्यो, दास तें कबहुँ न छेवा॥
बानी सीतल सुखद सहज गोबिंद धुनि लागी।
लक्षन कला गँभीर धीर संतनि अनुरागी॥
अंतर सुद्ध सदा रहै रसिक भक्ति निज उर धरी।
गोपाली जन पोष कों जगत जसोदा अवतरी॥ १९५॥

भक्तोंका वात्सल्यभावसे पालन-पोषण करनेके लिये श्रीगोपालीबाईके रूपमें मानो श्रीयशोदाजीने ही अवतार लिया था। इनके अंग-प्रत्यंगमें प्रेम प्रकट था। नित्य-नियमसे अपने मोहनलालकी सेवा करती थीं। कलियुगके दोष-पाप आपके तन-मनको छूतक नहीं पाये थे और भक्तोंसे किसी प्रकारका छल-कपट आपने नहीं रखा। आपकी वाणी सहज ही शीतल एवं सुख देनेवाली थी। श्रीगोविन्दभगवान्‌के नामको सदा रटती रहती थी। भक्ता एवं पतिव्रता स्त्रियोंके सभी शुभ लक्षण एवं कलाएँ आपमें विद्यमान थीं। स्वभावसे धीर-गम्भीर एवं सन्तोंमें श्रद्धा-भक्ति रखनेवाली श्रीगोपालीबाईका अन्तःकरण सदा परम पवित्र रहता था। इन्होंने वात्सल्यरसमयी भक्ति अपने हृदयमें धारण की॥ १९५॥

श्रीगोपालीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगोपालीजी भगवान् श्रीकृष्णकी वात्सल्यभावसे भावित भक्त थीं। ऐसा लगता था मानो श्रीयशोदाजी ही भक्तिमती गोपालीजीके रूपमें गोलोकसे पृथ्वीपर आ गयी थीं। वही आवेश आपके अंगमें था। आप बड़े प्रेमसे मोहनलालकी सेवा करती थीं। एक बार इनकी भक्तिपर रीझकर प्रभु एक सन्तका वेश धारणकर इनके घरपर पधारे। उस समय गोपालीबाई श्रीठाकुरजीको भोग लगा रही थीं। सन्तभगवान्‌का सत्कार करके प्रसादसे भरी थाली लाकर बाईने सन्तके सामने रखकर प्रार्थना की—'प्रसाद पाइये।' सन्तने कहा—पहले भगवान्‌को पवाओ। बाईने कहा—भगवान् तो गन्धमात्र ग्रहण करते हैं, मैं उन्हें कैसे पवाऊँ? सन्तने कहा—यदि आप अपने हाथसे उनके श्रीमुखमें ग्रास दे दें तो वे अवश्य ही खायेंगे। बाईने मन्दिरमें थाल ले जाकर अपने हाथसे भगवान्‌के मुखमें ग्रास दिया। बड़े प्रेमसे भगवान्‌ने खा लिया। इससे बाईको बड़ा-भारी सुख हुआ, वे प्रेममें विभोर हो गयीं। जिस सन्तकी कृपासे यह अभूतपूर्व आनन्द मिला, उस सन्तको भोजन करानेकी उत्कण्ठासे मन्दिरके बाहर आयीं तो सन्तके दर्शन न हुए। अब इन्हें बड़ी बेचैनी हुई। आप समझ गयीं कि वे सन्त भगवान् ही थे। फिर आप मन्दिरमें श्रीठाकुरजीको पवाने लगीं। इस बार प्रभुने कुछ भी नहीं खाया। तब ये अधीर होकर रुदन करने लगीं। उसी समय आकाशवाणी हुई कि एक बार मैंने तुम्हारे प्रेमसे खा लिया। अब तुम आग्रह न करो। मैं रसका आस्वादन अपने भक्तोंकी रसनासे करता हूँ। तुम भक्तोंको उनकी रुचिके अनुसार भोजन कराओ, उनकी सेवा करो।

इस आज्ञाके बाद बाईको भक्तोंकी इच्छाका अनुभव होने लगा। तदनुसार ये सेवा करने लगीं। एक दिन दस सन्त आये, उनके मनमें था, आज सीरा मिले। बाईने जानकर सीरा बनाकर भोग लगाया और सन्तोंके सामने रख दिया। सन्तोंके मनमें आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन सन्तोंने आपसमें बातचीत करके खीर-भोग आरोगनेकी इच्छा की तो बाईने खीर ही खवाई। तीसरे दिन सिखरन भातकी इच्छा हुई तो बाईने सिखरन भात ही पवाया। आश्चर्यचकित होकर सन्तोंने पूछा—तो आपने बताया कि मुझे सन्त-भगवन्तका आशीर्वाद मिल गया है, अतः उसका ज्ञान हो गया है। फिर कभी दो सन्त पधारे, उन्होंने इच्छा की कि हमारे वस्त्र फट गये हैं। गोपाली बाईके यहाँ पहुँचकर उनसे नये वस्त्र ले लेंगे। इस इच्छासे आये सन्तोंको भोजन कराकर बाईने वस्त्र अर्पण करके कहा कि जो इच्छा हो सो बनवा लो। सन्तोंने त्याग दिखाया और वस्त्र लेनेसे इनकार कर दिया, तब बाईने कहा—'जब आप वस्त्रकी इच्छा करके आये हैं, तब फिर अब क्यों अस्वीकार करते हैं?' सन्तोंने गोपालीके चरणोंकी वन्दना की और आशीर्वादके साथ वस्त्र प्राप्त किये। इस प्रकार इनका सुयश सन्तोंमें फैल गया।

श्रीरामदासजी

सीतल परम सुसील बचन कोमल मुख निकसै।
भक्त उदित रबि देखि हृदय बारिज जिमि बिकसै॥
अति आनँद मन उमँगि सन्त परिचर्जा करई।
चरन धोय दंडौत बिबिधि भोजन बिस्तरई॥
बछबन निवास बिस्वास हरि जुगल चरन उर जगमगत।
श्री (रामदास) रस रीति सों भली भाँति सेवत भगत॥ १९६॥

श्रीरामदासजी बड़े मधुर भावसे भक्तोंकी सेवा करते थे। इनके मुखसे शीतल, कोमल और नम्रतापूर्ण वचन ही निकलते थे। सूर्योदय होते ही जैसे कमल विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार भक्तको देखकर आपका हृदय

खिल उठता था। मनमें अपार उत्साह रखकर बड़ी रुचिके साथ सन्तोंकी विविध प्रकारसे सेवा-शुश्रूषा करते थे। आते ही सन्तोंके श्रीचरणोंको धोकर चरणोदक लेते, उन्हें साष्टांग दण्डवत् करते; तत्पश्चात् अनेक प्रकारके उत्तम-से-उत्तम भोजन-प्रसाद पवाते। बछवनमें आपका निवास स्थान था, भगवान्में आपका अटल विश्वास था और उन्हींके युगल श्रीचरणकमल आपके हृदय-भवनमें जगमगाते रहते थे॥ १९६॥

श्रीरामदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

किसी सन्तने श्रीरामदासजीके भक्ति-भावकी प्रशंसा सुनी तो वे इनकी भक्तिनिष्ठाको देखनेके लिये इनके आश्रमपर आये। संयोगवश ये वहीं बैठे थे। वे सन्त इन्हींसे पूछने लगे कि 'श्रीरामदासजी कौन हैं?' सन्तको आया देखकर श्रीरामदासजी जल्दीसे उठे और उन्होंने सन्तके चरण धोकर चरणामृत लिया। इसके बाद साष्टांग दण्डवत् करके बोले—'आप विराजो, रामदास अभी आता है।' आगन्तुक सन्तने कहा—'पहले हमें यह बतलाइये कि रामदासजी कहाँ हैं, उनसे मिलनेकी मुझे तीव्र लालसा है और यहाँ आनेका हमारा यही मुख्य प्रयोजन है। उनसे मिलकर हमें शीघ्र ही चले जाना है।' श्रीरामदासजीने उत्तर दिया—'पहले आप चलकर प्रसाद लीजिये, फिर रामदास आ जायगा।' सन्तने कहा—'नहीं, पहले रामदासजीको बुलाकर उनका दर्शन करा दीजिये। उसके बाद ही मैं प्रसाद पाऊँगा।' इस प्रकार उनका आग्रह देखकर श्रीरामदासजीने कहा—'आप सन्तोंका सेवक रामदास यही है, यह आपका ही आश्रम है, कृपा करके आप अपने आश्रममें पधारिये और प्रसाद पाइये।' यह सुनते ही वे सन्त श्रीरामदासजीके चरणोंमें गिर पड़े। उनका हृदय आनन्दसे भर गया, वे फूले नहीं समा रहे थे। वे कहने लगे—'आपके सुयशकी चाँदनी सर्वत्र फैली है, उससे सभी लोगोंको सुख-शान्ति मिल रही है। आपका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। मेरे हृदयमें भी प्रकाश हो गया।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सुनि एक साधु आयौ, भक्ति भाव देखिबे कों, बैठे रामदास, पूछै रामदास कौन है?'।
उठे आप धोए पाँव, आवै रामदास अब, 'रामदास कहाँ? मेरे चाह और गोन है'॥
'चलो जू प्रसाद लीजै दीजै रामदास आनि', 'यही रामदास, पग धारौ निज भौन है'।
लपटानौ पाँयन सो चायन समात नाहिं, भायनि सों भर्‍यौ हिये, छाई जस जौन्ह है॥ ६२४॥

श्रीरामदासजीकी कन्याका विवाह था। उस अवसरपर सबको बड़ा भारी उत्साह हुआ। अनेक प्रकारके पक्वान्न बाराती और घरातियोंके लिये बनाकर कोठेमें रख दिये गये। इनके पुत्र और नाती पक्वान्नोंकी रखवाली करने लगे। उन्होंने कोठेमें ताला बन्द कर दिया; क्योंकि उनके मनमें डर था कि कहीं बाबाजी सब सामान साधु-सन्तोंको बाँट न दें। अवसर पाकर श्रीरामदासजीने दूसरी ताली लगाकर कोठेका ताला खोल लिया। आप किसीसे डरते न थे। सन्तजन पधारे, आपने पोटली बँधवा दी और कहा कि स्थानमें ले जाकर आपलोग भोग लगाइये और पाइये। सन्त-भगवन्तको पक्वान्नोंकी पोटलियाँ बँधवाकर आपने महान् सुख प्राप्त किया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बेटी को विवाह, घर बड़ौ उतसाह भयो, किये पकवान नाना, कोठे मांझ धरे हैं।
करैं रखवारी सुत नाती दिये तारौ रहैं, और ही लगाई तारी खोल्यौ नहीं डरे हैं॥
आये गृह सन्त तिहैं पोट बँधवाय दई, पायौ यों अनन्त सुख ऐसे भाव भरे हैं।
सेवा श्रीबिहारीलाल, गाई पाक सुद्धताई, मेरे मन भाई, सब साधु उर हरे हैं॥ ६२५॥

श्रीरामरायजी

भक्ति ग्यान वैराग्या जोग अंतर गति पाग्यो।
काम क्रोध मद लोभ मोह मतसर सब त्याग्यो॥
कथा कीरतन मगन सदा आनँद रस भूल्यो।
संत निरखि मन मुदित उदित रबि पंकज फूल्यो॥
बैर भाव जिन द्रोह किय तासु पाग खसि भ्वै परी।
बिप्र सारसुत घर जनम रामराय हरि रति करी॥१९७॥

सारस्वत ब्राह्मणवंशमें जन्म लेकर श्रीरामरायजीने भगवान्‌में प्रेम किया। आपकी चित्तवृत्ति ज्ञान, वैराग्य और भक्तियोगमें सर्वदा पगी रहती थी। काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह और ईर्ष्या आदि मायिक विकारोंको आपने सर्वथा छोड़ दिया था। आप सर्वदा भगवत्कथा-कीर्तनमें मग्न होकर इसके आनन्दमय अनुभवसे झूमते रहते थे। सन्तोंको देखकर आपका मन उसी प्रकार खिल जाता था, जैसे सूर्यको देखकर कमलका पुष्प। जिन दुष्टोंने आपसे द्वेष किया, आपको नीचा दिखाना चाहा, उन्हें स्वयं ही नीचा देखना पड़ा॥ १९७॥

श्रीरामरायजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीरामरायप्रभुका जन्म रावी नदीके तटपर बसे लाहौर (पंजाब) में वि० सं० १५४० वैशाख शुक्ल ११ को मध्याह्नमें हुआ। आपके पिता श्रीगुरुगोपालजी और माता श्रीयशोमतिजी थीं। परम्परागत रूपसे घरमें विराजमान श्रीगीतगोविन्दके कर्ता श्रीजयदेवजीके ठाकुर श्रीराधामाधवजीने श्रीगुरुगोपालजीको स्वप्नादेश दिया कि मेरा चरणामृत अपनी धर्मपत्नीको पिलाओ, उससे एक महान् चमत्कारी भक्तपुत्र उत्पन्न होगा। पादोदक पान करते ही यशोमतिजीको ऐसा अनुभव हुआ कि किसी शक्तिविशेषने मेरे उदरमें प्रवेशकर मुझे कृतार्थ किया। किसीके मतसे श्रीरामेश्वरम्‌की यात्रामें वहीं जन्म हुआ, इसलिये इनके रामेश्वर, रामराय, रामदास और रामगोपाल आदि नाम पड़ गये। ग्यारह वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। पिताने इन्हें गायत्रीके साथ श्रीराधागोपालमन्त्र दिया, जो वृन्दावनमें श्रीजीके द्वारा श्रीजयदेवजीको प्राप्त हुआ था। श्रीरामरायजीने वि० सं० १५५२ बसन्त पंचमीके दिन श्रीजयदेवजीकी जन्म-जयन्तीके उपलक्ष्यमें बिना सामग्री मँगवाये एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया, इससे आपकी महिमा सर्वत्र विख्यात हो गयी। ठाकुर श्रीराधामाधवजीने आज्ञा दी कि तुम वृन्दावन जाओ। उसके बाद मैं चन्द्रगोपालके साथ आऊँगा। आदेश पाकर योगबलसे आप हरिद्वार पहुँच गये। वहाँ नानाके बड़े भ्राता श्रीआसुधीरजी मिले। उन्हें भी वृन्दावन ले आये। मार्गमें उपब्रज (अलीगढ़)-में प्रसादी नामके ब्राह्मण सन्तसेवा करते थे, उनके यहाँ विश्राम किया। उनकी दीनता देखकर आपने अपनी मुद्रिका उतारकर दे दी और आशीर्वाद दिया कि खूब लक्ष्मीसे सम्पन्न हो जाओ और श्रीराधामाधवका भजन करो। कालान्तरमें वे श्रीसे सम्पन्न होनेपर श्रीराधामाधवकी सेवा-पूजा करने लगे।

एक दिन श्रीरामरायजीने वृन्दावनमें बास करनेकी इच्छा प्रकट की। लोगोंने समझाया कि यहाँ हिंसक जानवर रहते हैं, फिर भी एक दिन सभीको सोते हुए छोड़कर आप वृन्दावन पहुँच गये। यमुनापुलिन धीर समीरमें आपको श्रीराधामाधवजीके दिव्य दर्शन हुए। श्रीठाकुरजीने आदेश दिया कि पहले तीर्थाटन करो, तब यहाँ बास करना। तीर्थाटन करते हुए आप काशी पहुँचे। विद्वानोंने प्रभावित होकर आपकी शोभायात्रा निकाली।

उसमें श्रीमाधवेन्द्रपुरी, राजेश्वरतीर्थ, प्रकाशानन्दसरस्वती, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीगोकुलानन्द, विद्यासागर गोविन्द कवि रंगनाथ एवं विश्वनाथ आदि महापुरुष उपस्थित थे। ईर्ष्यावश जिन्होंने शास्त्रार्थ किया, उन्हें पराजित करके भक्तिकी स्थापना की। हजारों लोगोंको प्रसाद पवाकर सन्तुष्ट किया। श्रीनित्यानन्द महाप्रभुने प्रसन्न होकर इन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीने श्रीरामरायजीको बताया कि ये संकर्षण भगवान् हैं, इनसे दीक्षा ले लो। गुरुत्वको स्वीकार करो। आचार्य होकर भी इन्होंने उनके गुरुत्वको स्वीकार किया। आपके उत्कृष्ट दैन्यको देखकर श्रीवल्लभाचार्यजी बहुत सन्तुष्ट हुए। इसके पश्चात् श्रीरामरायजी श्रीनित्यानन्दजीके साथ नवद्वीप पधारे और श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका दर्शन किया। उन्हें अष्टपदी सुनाया। प्रसन्न होकर श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने कहा—'आप साक्षात् रामभद्र हैं।' मैं श्रीवृन्दावनमें आकर आपसे मिलूँगा। अपने साथ भूगर्भ और लोकनाथको ले जाओ। आप श्रीजगन्नाथ भगवान्का दर्शन करते हुए वृन्दावन आये।

श्रीगौरांग महाप्रभु वृन्दावन पधारे और अक्रूरघाटपर ठहरे। श्रीरामरायजी नित्य गीतगोविन्द सुनाकर उन्हें प्रसन्न करते। आपने अपना अधिकांश समय व्रज-वृन्दावनमें ही बिताया। अन्तिम समयमें कहीं आना-जाना बन्द करके आप बन-विहार और वंशीवटमें रहकर भजन-ध्यान करते रहे। उसी समय आपने ब्रह्मसूत्रपर गौरविनोदिनी वृत्ति लिखी। इनके छोटे भ्राता श्रीचन्द्रगोपालजीने वृत्तिके ऊपर भाष्य किया। श्रीरामरायजीके संस्कृतमें द्वादश ग्रन्थ हैं। आदिवाणी और श्रीगीतगोविन्दपर पदावली ये भाषाग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार वि० सं० १५४० तक आपकी दिव्य जीवनलीला रही। आपके १२ प्रधान शिष्य थे। इनके नाम इस प्रकार हैं—(१) श्रीभगवानदासजी, (२) श्रीगरीबदासजी, (३) श्रीविष्णुदासजी, (४) श्रीयुगलदासजी, (५) गोस्वामी श्रीराधिकानाथजी, (६) श्रीकिशोरदासजी, (७) श्रीकेशवदासजी, (८) श्रीमनोहरदासजी, (९) श्रीलाखादासजी, (१०) श्रीमधुसूदनदासजी, (११) श्रीहरिदासजी पटेल तथा (१२) श्रीतीर्थरामजी जोशी।

श्रीभगवन्तमुदितजी

कुंजबिहारी केलि सदा अभ्यंतर भासै।
दंपति सहज सनेह प्रीति परमिति परकासै॥
अननि भजन रस रीति पुष्ट मारग करि देखी।
बिधि निषेध बल त्यागि पागि रति हृदय बिसेषी॥
माधव सुत संमत रसिक तिलक दाम धरि सेव लिय।
भगवंत मुदित ऊदार जस रस रसना आस्वाद किय॥ १९८॥

श्रीमाधवदासजीके सुपुत्र श्रीभगवन्तमुदितजीने रसिक भक्तोंसे समर्थित तुलसीकण्ठी और तिलक धारणकर अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्णकी नित्य-नियमसे सेवा की तथा उदार भगवान्के परमोदार सुयशका अपनी वाणीसे वर्णन करके उसके रसका आस्वादन किया। श्रीकुंजविहारिणी-कुंजविहारीकी नित्य-निकुंजलीला इनके हृदयमें सर्वदा प्रकाशित रहती थी। दम्पति श्रीराधाकृष्णका जो पारस्परिक सहज स्नेह और प्रीतिकी जो अन्तिम सीमा है, उससे आपका हृदय प्रकाशित था। अनन्य भावसे सेवा करनेकी जो रसमयी रीति है, उसीको आपने उत्तम-से-उत्तम मार्ग मानकर अपनाया, उसीपर चले। भक्तिसे भिन्न लौकिक-वैदिक विधि-निषेधोंका सहारा छोड़कर आपका हृदय विशेषकर श्रीराधाकृष्णके परमानुरागमें सराबोर रहता था॥ १९८॥

श्रीभगवन्तमुदितजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीभगवन्तमुदितजी परमरसिक सन्त थे। आप आगराके सूबेदार नवाब शुजाउल्मुल्कके दीवान थे। कोई भी ब्राह्मण, गोसाईं, साधु या गृहस्थ ब्रजवासी जब आपके यहाँ पहुँच जाता तो आप अन्न, धन और वस्त्र आदि देकर उसे प्रसन्न करते थे; क्योंकि व्रजवासियोंके प्रेममें इनकी बुद्धि रम गयी थी। आपके गुरुदेवका नाम श्रीहरिदासजी था। ये श्रीवृन्दावनके ठाकुर श्रीगोविन्ददेवजी मन्दिरके अधिकारी थे। इन्होंने व्रजवासियोंके मुखसे श्रीभगवन्तमुदितजीकी बड़ी प्रशंसा सुनी तो इनके मनमें आया कि हम भी आगरा जाकर (शिष्य) भक्तकी भक्ति देखें।

श्रीभगवन्तमुदितजीने सुना कि श्रीगुरुदेव आ रहे हैं तो इन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि ये अपने अंगोंमें फूले नहीं समाये। ये अपनी स्त्रीसे बोले कि 'कहो, श्रीगुरु-चरणोंमें क्या भेंट देनी चाहिये ?' स्त्रीने कहा—'हम दोनों एक-एक धोती पहन लें और शेष सब घर-द्वार, कोठार-भण्डार, चल-अचल सम्पत्ति श्रीगुरुदेवको समर्पण कर दें और हम दोनों वृन्दावनमें चलकर भजन करें। स्त्रीकी ऐसी बात सुनकर श्रीभगवन्तमुदितजी उसपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'सच्ची गुरु-भक्ति करना तो तुम ही जानती हो, यह तुम्हारी सम्मति हमको अत्यन्त प्रिय लगी है।' ऐसे कहते हुए उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। गुरुदेव रात्रिमें बाहर द्वारपर बैठे सुन रहे थे। सर्वस्व-समर्पणकी बात गोस्वामी श्रीहरिदासजीने सुन ली और उन्होंने जान लिया कि ये सर्वस्व-त्याग करके विरक्त बनना चाहते हैं, जिसका अभी योग नहीं है, अतः आप उसी समय बिना श्रीभगवन्तमुदितजीसे मिले ही परिचित व्यक्तिको बताकर लौटकर श्रीवृन्दावनको चले आये और इनके प्रेम-भरे त्यागके प्रणपर बहुत ही सन्तुष्ट हुए।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

सूजा के दीवान भगवन्त रसवन्त भए, वृन्दावन बासिन की सेवा ऐसी करी है।
बिप्र कै गुसाईं साधु कोऊ ब्रजवासी जाहु, देत बहु धन एक प्रीति मति हरी है॥
सुनी गुरुदेव, अधिकारी श्रीगोविन्द देव, नाम हरिदास 'जाय देखैं' चित धरी है।
जोग्यताई सीवां प्रभु दूध भात माँगि लियो कियौ उत्साह तऊ पेखैं अरबरी है॥ ६२६॥
सूनी गुरु आवत, अमावत न किहूँ अंग रंग भरि तिया सों, यों कही 'कहा कीजियै ?'।
बोली घर बार पट सम्पति भण्डार सब भेंट करि दीजै, एक धोती धारि लीजियै॥
रीझे सुनि बानी, साँची भक्ति तैं ही जानी, मेरे अति मन मानी, कहि आँखें जल भीजियै।
यही बात परी कान, श्रीगुसाईं लई जान, आये फिरि वृन्दावन, पन मति धीजियै॥ ६२७॥

श्रीभगवन्तमुदितजीको जब यह मालूम हुआ कि श्रीगुरुदेव आये और वापस चले गये तो आपका उत्साह नष्ट हो गया। हृदयमें अपार पश्चात्ताप हुआ। फिर आपने गुरुदेवके दर्शन करनेका विचार किया और नवाबसे आज्ञा माँगकर श्रीवृन्दावन आये। गुरुदेवके दर्शनकर सुखी हुए। बहुतसे लीला-पदोंकी रचना की। आपका 'श्रीरसिक अनन्यमाल' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इस प्रकार आपने अनन्य-प्रेमका एकरस निर्वाह किया। गुरुदेवसे आज्ञा लेकर आगराको लौट गये। वहाँ किसी कारणवश कई व्रजवासी चोरोंने आपके घरमें ही चोरी कर ली, पर इससे आपने जरा भी मनमें दुःख न माना; क्योंकि आपका मन भगवान्‌की भक्तिमें सराबोर था और दृष्टिमें श्रीवृन्दावन-बिहारिणी-बिहारीजी समाये हुए थे। वास्तवमें आप बड़े ही भाग्यशाली और प्रेमी सन्त थे। संसारमें आपका भगवत्प्रेम प्रसिद्ध था। श्रीभगवन्तमुदितजीके पिता श्रीमाधवदासजी रसिक थे। आगे उनकी कथा सुनिये—

'श्रीमाधवदासजी बेसुध हैं, नाड़ी छूटनेवाली है, अब इनका अन्तिम समय आ गया है'— ऐसा जानकर लोग उन्हें पालकीमें बैठाकर आगरासे श्रीवृन्दावनधामको ले चले। जब आधी दूर आ गये, तब श्रीमाधवदासजीको होश

हो आया। दु:खित होकर आपने लोगोंसे पूछा कि क्रूरो! तुम लोग मुझे कहाँ लिये जा रहे हो?' लोगोंने कहा—'आप जिस श्रीवृन्दावनधामका नित्य ध्यान किया करते हैं, वहीं ले चल रहे हैं।' यह सुनकर आपने कहा—'अभी लौटाओ, यह शरीर श्रीवृन्दावन जानेके योग्य कदापि नहीं है, इसे जब वहाँ जलाया जायगा, तब इसमेंसे बड़ी-भारी दुर्गन्धि निकलेगी, वह प्रिया-प्रियतमको अच्छी नहीं लगेगी।' प्रिया-प्रियतमके पास जानेयोग्य जो होगा, वह अपने-आप उनके पास चला जायगा। आप ऐसे भावकी राशि थे। वापस जाकर आगरामें ही आपने शरीर छोड़ा।

श्रीप्रियादासजीने श्रीमाधवदासजीकी इस भावनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

रह्यौ उत्साह उर दाह कौ न पारावार कियौ लै विचार, आज्ञा माँगि, बन आये हैं।
रहे सुख लहे, नाना पद रचि कहे, एक रस निर्बहे ब्रजवासी जा छुटाये हैं॥
कीनी घर चोरी, तऊ नेकु नासा मोरी नाहिं, बोरी मति रंग, लाल प्यारी दृग छाये हैं।
बड़े बड़भागी, अनुरागी, रति जागी, जग माधव रसिक बात सुनौ पिता पाये हैं॥ ६२८॥
आयौ अन्तकाल जानि बेसुध पिछानि, सब आगरे तें लैकै चले वृन्दावन जाइयै।
आये आधी दूर, सुधि आई बोले चूर ह्वै कै 'कहाँ लिये जात कूर?' कही जोई ध्याइयै॥
कह्यौ 'फेरो तन बन जाइबे कौ पात्र नाहीं, जरै बास आवै प्रिया पिय को न भाइयै'।
जानहारौ होई, सोई जायगो जुगल पास, ऐसे भावरासि ताही ठौर चलि आइयै॥ ६२९॥

श्रीलालमतीजी

गौर स्याम सों प्रीति प्रीति जमुना कुंजनि सों।
बंसीबट सों प्रीति प्रीति ब्रज रज पुंजनि सों॥
गोकुल गुरुजन प्रीति प्रीति घन बारह वन सों।
पुर मथुरा सों प्रीति प्रीति गिरि गोबर्द्धन सों॥
बास अटल बृन्दाबिपिन दृढ़ करि सो नागरि कियो।
दुर्लभ मानुष देह को लालमती लाहो लियो॥ १९९॥

परमभक्ता श्रीलालमतीजीने गौर-श्याम श्रीराधाकृष्ण, श्रीयमुनाजी तथा उसके तटपर विराजमान कुंज-भवनोंसे प्रेम किया। इनके हृदयमें वंशीवट, व्रजरज, गोकुल, व्रजवासी रसिक सन्त, श्रीमथुरापुरी एवं श्रीगिरिराज गोवर्धनके प्रति अपार प्रीति थी। इस चतुर व्रजभक्ता देवीने श्रीवृन्दावनधाममें अखण्डवास किया। इस प्रकार इन्होंने दुर्लभ मानवदेहका अलभ्य लाभ (हरिभक्ति) प्राप्त किया॥ १९९॥

श्रीलालमतीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीलालमतीजीकी व्रज-वृन्दावनमें बड़ी निष्ठा थी। उन्होंने यमुना-कुंज आदि अष्ट स्थानोंमें प्रेम किया, वे इनकी यात्रा करती रहती थीं। शरीरके क्षीण होनेपर भी दर्शन-यात्रा, सेवा आदिमें शिथिलता नहीं आयी। दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा देखकर प्रभुने इन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि प्रात:काल श्रीयमुना-कुंजमें आओ, वहाँ तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन होंगे। तुम्हारा शरीर शिथिल हो गया है, अत: यात्रा बन्द करके श्रीवृन्दावनमें ही वास करो। स्वप्नका स्मरणकर आपके मनमें बड़ा मोद हुआ। प्रात: आपने अपनी दासीके साथ यमुना-स्नान किया और कुंजमें आकर बैठ गयीं। वहींपर श्रीराधाकृष्णने इन्हें दर्शन दिया। प्रेममें विह्वल प्रभुकी शोभाका गान करके दासीको सुनाने लगीं। दासी भी सुनने लगी, पर दासीको भगवान्‌की छायाके भी दर्शन नहीं हो रहे थे। श्रीलालमतीजीने प्रार्थना की—प्रभो!

दासीपर भी किंचित् कृपा हो। भगवान्ने प्रार्थना स्वीकार करके मुरली बजायी। जिसकी ध्वनि दासीको सुनायी पड़ी और वह भी कृतार्थ हुई। इसके बाद लीलाधारी प्रभु यमुनामें कूद पड़े। कुछ दूरतक बाईको दर्शन होते रहे। इसके बाद प्रभु अन्तर्धान हो गये। श्रीलालमतीजी दासीसहित कुंजमें बेसुध पड़ी रहीं। पश्चात् श्यामसुन्दरकी उसी शोभाका ध्यान करती रहीं। इस प्रकार श्रीधाममें वास प्राप्तकर लालमतीजीने जीवन-जन्म सफल किया।*

भक्त ही सर्वश्रेष्ठ

कबिजन करत बिचार बड़ो कोउ ताहि भनिज्जै।
कोउ कह अवनी बड़ी जगत आधार फनिज्जै॥
सो धारी सिर सेस सेस सिव भूषन कीनो।
सिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनो॥
रावन जीत्यो बालि (पुनि) बालि राम इक सर दँड़े।
अगर कहै त्रैलोक में हरि उर धारैं ते बड़े॥ २००॥

परम विवेकी ऋषिगण एकत्र होकर विचार करने लगे कि सबसे बड़ा कौन है? जिसका भजन-कीर्तन किया जाय। किन्हीं लोगोंने कहा कि पृथ्वी सबसे बड़ी है, क्योंकि यह सारे विश्वको धारण की हुई है। (दूसरेने कहा कि) उस पृथ्वीको शेषभगवान्ने अपने फणोंपर रजकणके समान धारण कर रखा है, अत: शेष उससे बड़े हैं। (तीसरेने कहा कि) शेषको श्रीशंकरजीने अपने उरपर आभूषणकी तरह धारण कर रखा है, अत: शंकरजी बड़े हैं। (चौथेने कहा कि) शिवका निवास-स्थान कैलासपर्वत है, उसके समेत रावणने शिवको अपनी भुजाओंपर उठा लिया। उस रावणको बालिने जीत लिया। ऐसे पराक्रमी बालिका वध करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सबसे बड़े हैं। (यह सुनकर पाँचवें श्रीपंचने कहा कि) ऐसे महतो महीयान् भगवान्को जो भक्त अपने हृदयमें धारण करते हैं, वे तीनों लोकोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। श्रीअग्रदेवजीका मत है कि सबसे बड़े जो भक्तजन हैं, उन्हींकी सेवा करो॥ २००॥

भक्तोंके सुयशकी महिमा

नेह परसपर अघट निबहि चारौं जुग आयो।
अनुचर को उतकर्ष स्याम अपने मुख गायो॥
ओत प्रोत अनुराग प्रीति सबही जग जानैं।
पुर प्रबेस रघुबीर भृत्य कीरति जु बखानैं॥
अगर अनुग गुन बरनते सीतापति नित होयँ बस।
हरि सुजस प्रीति हरि दास के त्यों भावैं हरि दास जस॥ २०१॥

जिस प्रकार भगवद्भक्तोंको भगवान्के सुयशमें प्रीति होती है, उसी प्रकार भगवान्को भी अपने प्रेमी भक्तोंकी कथा बहुत ही अच्छी लगती है। भक्तोंके और भगवान्के पारस्परिक प्रेमका चारों युगोंमें निर्वाह हुआ है—यह सर्वदा पूर्ण और एक-सा रहता है। अपने भक्तोंकी महिमाको भगवान्ने बार-बार अपने श्रीमुखसे गाया है। भगवान् भक्तोंके अनुरागमें सदा ही सराबोर रहते हैं। इसको सारा संसार जानता है। वनवासकी अवधि पूरी होनेपर श्रीअयोध्या-पुरीमें प्रवेश करते समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने अनुचरोंकी कीर्तिका वर्णन किया है। श्रीअग्रदेवाचार्यजी कहते हैं कि उक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि भक्तोंके गुणोंका वर्णन करनेसे श्रीसीतापति श्रीरामचन्द्रजी सदाके लिये वशमें हो जाते हैं॥ २०१॥

* भक्तमालमें वर्णित भगवद्भक्तोंका पावन चरित यहाँ पूर्ण हो जाता है। आगेके छन्दोंमें भक्तोंकी महिमा आदिका वर्णन हुआ है।

सन्तोंका उत्कर्ष

दुर्बासा प्रति स्याम दासबसता हरि भाषी।
ध्रुव गज पुनि प्रह्लाद राम सबरी फल साषी॥
राजसूय जदुनाथ चरन धोय जूँठ उठाई।
पांडव बिपति निवारि दिए बिष बिषया पाई॥
कलि बिसेष परचो प्रगट आस्तिक ह्वै कै चित धरौ।
उतकर्ष सुनत संतनि को अचरज कोऊ जिनि करौ॥ २०२॥

इस भक्तमालमें या अन्यत्र इतिहास-पुराणोंमें सन्तोंकी बहुत बड़ी बड़ाईका वर्णन सुनकर कोई आश्चर्य (अविश्वास) न करे; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने (श्रीभागवतमें) दुर्वासा ऋषिसे कहा है कि 'मैं भक्तोंके वशमें हूँ।' श्रीध्रुवजी, गजेन्द्र, श्रीप्रह्लादजी आदिके चरित्र एवं श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा शबरीके फलोंका सादर खाया जाना आदि प्रसंग सन्तोंकी बड़ाईके साक्षी हैं। श्रीयुधिष्ठिरजीके राजसूय-यज्ञमें श्रीकृष्णने साधु-ब्राह्मणोंके चरण धोये और उनकी जूठी पत्तलें उठायीं। पाण्डवोंपर आयी अनेक बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे उनकी रक्षा की। भक्त चन्द्रहासजीको दुष्टने विष दिया, पर उसके बदले उन्हें विषया नामक स्त्री और राज्यकी प्राप्ति हुई। ये तो पिछले तीन युगोंकी बातें हुईं। इस कलियुगमें तो विशेष सन्तोंके चमत्कार प्रकट हुए। अतः कुतर्क त्यागकर विश्वासपूर्वक आस्तिक-बुद्धिसे भक्तचरित्रोंको हृदयमें धारण करो, तभी रहस्य समझमें आयेगा॥ २०२॥

श्रीनाभादासजीकी भक्तोंसे विनय-प्रार्थना

पादप पेड़हिं सींचते पावै अँग अँग पोष।
पूरबजा ज्यों बरनते सब मानियो संतोष॥ २०३॥
भक्त जिते भूलोक मैं कथे कौन पै जायँ।
समुँद पान श्रद्धा करै कहँ चिरि पेट समायँ॥ २०४॥
श्रीमूरति सब बैष्नव लघु बड़ गुननि अगाध।
आगे पीछे बरनते जिनि मानौ अपराध॥ २०५॥
फल की सोभा लाभ तरु तरु सोभा फल होय।
गुरू सिष्य की कीर्ति अचरज नाहीं कोय॥ २०६॥
चारि जुगन में भगत जे तिन के पद की धूरि।
सर्बसु सिर धरि राखिहौं मेरी जीवन मूरि॥ २०७॥

जैसे पेड़की जड़को सींचनेसे उस पेड़के अंग-प्रत्यंग, शाखा, पत्र-पुष्प आदि सभी पुष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार पूर्वाचार्यों (सम्प्रदायाचार्यों)-के वर्णनसे सभी भक्तोंका वर्णन हो गया, ऐसा मानकर जिनका चरित्र इस भक्तमालमें नहीं आया है, उनका भी स्मरणकर सन्तोष करना चाहिये॥ २०३॥ इस जगत्‌में जितने भगवान्‌के भक्त हैं, उन सबके चरित्रोंका वर्णन कौन कर सकता है? जैसे कोई छोटी चिड़िया समुद्रके सम्पूर्ण जलको पी लेनेकी श्रद्धापूर्वक इच्छा करे तो वह उसके पेटमें कैसे समा सकता है॥ २०४॥ भगवद्विग्रह

या तुलसीदल चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, सबकी एक-जैसी महान् महिमा है, उसी प्रकार वैष्णवजन चाहे छोटे हों या बड़े, सभी अनन्त गुणोंके कारण महा महिमावाले हैं। इस भक्तमालमें किसीका वर्णन आगे-पीछे, बड़े-छोटेकी दृष्टिसे नहीं किया गया है। इसलिये यदि कहीं आगे वर्णनीयका पीछे वर्णन दिखायी पड़े तो पाठकजन इसमें दासका अपराध न मानें॥ २०५॥ जिस प्रकार वृक्षमें लगे रहनेसे फलोंकी शोभा होती है और फलमें स्थित बीजसे वृक्ष-उत्पत्ति-रूप लाभ होता है तथा फलोंसे वृक्षकी शोभा और वृक्षसे फलोंका लाभ मिलता है, उसी प्रकार गुरुजनोंकी महिमा और कीर्तिसे शिष्योंकी महिमा और कीर्ति बढ़ती है तथा शिष्योंकी कीर्तिसे गुरुजनोंकी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है॥ २०६॥ चारों युगोंमें जितने भक्त हुए हैं तथा जो आगे होंगे, उनके श्रीचरणकमलोंकी धूलि सर्वदा हमारे मस्तकपर रहे, वही हमारी जीवनमूरि है और वही सर्वस्व है॥ २०७॥

भक्तोंकी महिमा

जग कीरति मंगल उदै तीनौं ताप नसायँ।
हरिजन को गुन बरनते हरि हृदि अटल बसायँ॥ २०८ ॥
हरिजन को गुण बरनते जो करै असूया आय।
इहाँ उदर बाढ़ै बिथा औ परलोक नसाय॥ २०९ ॥
(जो) हरि प्रापति की आस है तौ हरिजन गुन गाव।
नतरु सुकृत भुंजे बीज ज्यौं जनम जनम पछिताय॥ २१० ॥
भक्तदास संग्रह करै कथन श्रवन अनुमोद।
सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यों बैठै हरि की गोद॥ २११ ॥
अच्युत कुल जस बेर इक जाकी मति अनुरागि।
उन की भक्ती सुकृत को निहँचै होय बिभागि॥ २१२ ॥
भक्त दास जिन जिन कथी तिन की जूँठनि पाय।
मो मति सार अच्छर द्वै कीनौं सिलौ बनाय॥ २१३ ॥
काहू के बल जोग जग्य, कुल करनी की आस।
भक्त नाम माला अगर (उर) बसौ नारायनदास॥ २१४ ॥

भगवद्भक्तोंके गुण और चरित्रोंका वर्णन करनेसे इस संसारमें कीर्ति और सभी प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति होती है, त्रितापका नाश होता है तथा हृदयमें अटलरूपसे भगवान्‌का वास हो जाता है॥ २०८॥ हरिभक्तोंके गुण-वर्णनको सुनकर जो लोग उनके गुणोंमें दोषारोपण करते हैं, उन्हें इस जन्ममें जलोदर आदि अनेक उदर रोगोंसे कष्ट भोगना पड़ता है और मरनेके बाद उनका परलोक भी नष्ट हो जाता है॥ २०९॥ यदि भगवान्‌को प्राप्त करनेकी आशा है तो भक्तोंके गुणोंको गाइये, निस्सन्देह भगवत्प्राप्ति हो जायगी। नहीं तो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये गये अनेक पुण्य भुने हुए बीजकी तरह बेकार हो जायँगे। उनसे कल्याण न होगा फिर जन्म-जन्ममें पछताना पड़ेगा॥ २१०॥ जो कोई भक्त-चरित्रोंका संग्रह करे अथवा कथन-श्रवण एवं समर्थन करे, वह भगवान्‌को पुत्रके समान प्रिय है, उसे भगवान् अपनी गोदमें बैठा लेते हैं॥ २११॥ अच्युतगोत्रीय भगवद्भक्तोंकी कीर्तिको कहने-

सुननेमें जिसके मनमें एक बार अनुराग हो गया, वह मनुष्य निश्चय ही उन सन्तोंके भजन और पुण्यमें हिस्सेदार हो जाता है। (जैसे पिताकी सम्पत्तिमें पुत्रका सहज अधिकार होता है)॥ २१२॥ जिन-जिन सन्त, विद्वान् महान् महानुभावोंने भक्तोंके चरित्रोंका वर्णन किया है, उन्हींकी जूठन लेकर मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार इस 'भक्तमाल' की रचना उसी प्रकार की है, जैसे कोई सिला (खेतके अन्न-कण) बीनकर संग्रह करे॥ २१३॥ किसीको बल, योग और यज्ञ आदिका भरोसा है, इनसे कल्याण होगा यह विश्वास है। किसीको अपने उत्तम कुल और पवित्र कर्मोंकी आशा है कि इन्हींसे भवसागर पार हो जायँगे। पर इन योग, यज्ञादिका अनुष्ठान मेरे वशका नहीं है, इसलिये हमें इनकी आशा नहीं है। मुझ नारायणदासकी तो यही इच्छा है कि गुरुदेव, भगवद्भक्तोंके नाम और उनके चरित्र मेरे हृदयमें निवास करें॥ २१४॥

॥ श्रीनाभादासविरचित भक्तमाल सम्पूर्ण हुआ॥

श्रीप्रियादासजीद्वारा गुरु-वन्दना

रसिकाई कबिताई जाहि दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाय हैं।
उर रङ्गभवन में राधिका रवन बसैं लसैं ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिबिम्ब भाय हैं॥
रसिक समाज में विराज रसराज कहैं चहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं।
जन मन हरि लाल मनोहर नांव पायो उनहूँ को मन हरि लीनौ याते राय हैं॥ ६३०॥

भक्तिरसबोधिनी टीकाकार श्रीप्रियादासजी भक्तमालके उपसंहारमें अपने गुरुदेवजी श्रीमनोहरदासजीका परिचय देते हुए कहते हैं कि मेरे गुरुदेवने जिन-जिन लोगोंको रसिकता और कवित्व प्रदान किया, उन्हें-उन्हें उसकी प्राप्ति हुई और उनके हृदयमें सरसता तथा नवीन प्रेमका चाव उत्पन्न हुआ। मेरे गुरुदेवके हृदयरूपी रंगमहलमें श्रीराधारमणजी उसी प्रकार निवास करते हैं, जैसे कि दर्पणमें प्रतिबिम्ब स्वाभाविक रूपसे रहता है। मेरे गुरुदेवजी रसिकोंकी सभामें विराजमान होकर जिस समय उज्ज्वल श्रृंगाररसकी कथा कहते हैं, उस समय सभी भावुक श्रोता उनके श्रीमुखकी ओर टकटकी लगाकर देखते ही रह जाते हैं और आनन्दमें मग्न होकर फूले नहीं समाते हैं। अपने भक्तोंके मनको हरण करके भगवान् श्रीकृष्णने 'मनोहर' यह नाम पाया, परंतु मेरे श्रीगुरुदेवने मनोहरके मनको भी हर लिया है, इसीलिये वे 'मनोहरराय' हैं।

इनहीं के दास दास दास प्रियादास जानौ तिन लै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है।
गोवर्द्धननाथ जू कें हाथ मन पर्‌यौ जाको कर्‌यौ बास वृन्दावन लीला मिलि गाई है॥
मति उनमान कह्यौ लह्यौ मुख सन्तनि के अन्त कौन पावै जोई गावै हिय आई है।
घट बढ़ जानि अपराध मेरौ क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मानि मैं सुनाई है॥ ६३१॥

इन्हीं श्रीमनोहरदासजीके दासोंका दास यह प्रियादास है, ऐसा जानिये। उसने श्रीभक्तमालकी इस सुखदायिनी भक्तिरसबोधिनी टीकाका वर्णन किया है। श्रीगोवर्धन-नाथजीके हाथोंमें जिनका मन पड़ गया है, उसने श्रीवृन्दावनमें निवास करके और सन्तोंसे मिलकर इस लीलाका गान किया है। सन्तोंके श्रीमुखसे जैसा कुछ सुना, उसे ही अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया। इन लीलाओंका अन्त कौन पा सकता है। सम्पूर्ण लीलाओंका वर्णन करना असम्भव है। जिसकी बुद्धिमें जितनी लीलाएँ आयीं, उसने उतनी गायी हैं, इन लीलाओंको गानेमें मुझसे जो कुछ घटी-बढ़ी हो गयी हो, इस अपराधको आपलोग क्षमा कीजिये। साधुजन गुणग्राही होते हैं, त्रुटियोंकी ओर ध्यान नहीं देते हैं, ऐसा मानकर ही मैंने अपनी तुच्छ-बुद्धिके अनुसार इन लीलाओंको गाकर सुनाया है।

श्रीप्रियादासजीद्वारा श्रीनाभादासजीकी वन्दना

कीनी भक्तमाल सुरमाल नाभा स्वामी जू ने तरे जीव जाल जग जन मन पोहनी।
भक्ति रस बोधिनी सो टीका मति सोधिनी है बाँचत कहत अर्थ लगै अति सोहनी॥
जो पै प्रेम लक्षना की चाह अवगाहि याहि मिटै उर दाह नेकु नैननि हूँ जोहनी।
टीका अरु मूल नाम भूल जात सुनै जब रसिक अनन्य मुख होत विश्वमोहनी॥ ६३२॥

गोस्वामी श्रीनाभाजीने सुन्दर मधुर-रससे व्याप्त श्रीभक्तमालकी रचना की। यह सभी भक्तोंके मनको गूँथनेवाली है। इसका पठन-श्रवण करके अनेक जीव भवसागरसे तर गये। उसी भक्तमालकी यह भक्तिरसबोधिनी नामकी टीका है। इसके पठन-श्रवणसे मायासे मोहित बुद्धि भी शुद्ध हो जाती है। पढ़नेमें, कहनेमें और अर्थ करनेमें यह बहुत ही अच्छी लगती है। यदि किसीको प्रेम-लक्षणा भक्तिको प्राप्त करनेकी इच्छा है तो वह इस टीकाका निरन्तर पठन, श्रवण और मनन करे। जो इसे मनके नेत्रोंसे भलीभाँति देखेगा, उसके हृदयका दाह दूर हो जायगा। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसे प्रेमसे सुनते समय यह भूल जाता है कि हम मूलका श्रवण कर रहे हैं या कि टीकाका। अनन्यरसिक भगवद्भक्तके श्रीमुखसे जब इसका कथन होता है, तब यह सारे जगत्को मोहित करनेवाली हो जाती है।

नाभा जू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ मैं तौ ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइकै।
भक्ति विशवास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रंग हियो लीजै सन्तनि लड़ाइकै॥
सम्वत् प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर, फालगुन मास बदी सप्तमी बिताइकै।
नारायणदास सुख रास भक्तमाल लै कै, प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइकै॥ ६३३॥

मैंने श्रीनाभाजीकी अभिलाषाको ही पूर्ण किया है। उसकी साक्षी मैंने पहले ही भलीभाँति गाकर सुना दी है। जिसके हृदयमें भक्त-भगवच्चरणारविन्दोंमें भक्ति और विश्वास हो, उसीके सामने इस भक्तमालकी कथाको कहना चाहिये, जिसे सुनकर उसका हृदय भक्तमालके रंगमें डूब जाय और वह श्रद्धासमेत सन्तोंकी सेवा करने लग जाय। प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् १७६९ फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको यह 'भक्तिरसबोधिनी' टीका पूर्ण हुई। मेरी प्रार्थना है कि सुखप्रद श्रीनारायणदासजी (श्रीनाभास्वामी) सुखस्वरूप श्रीभक्तमाल-ग्रन्थके समेत दासानुदास मुझ प्रियादासके हृदयमें सर्वदा निवास करें॥ ६३३॥

श्रीप्रियादासजीद्वारा भगवान्‌से निवेदन

अगिनि जरावौ लैके जल में बुड़ावौ भावै सूली पै चढ़ावौ घोरि गरल पिवायबी।
बीछू कटवावौ कोटि साँप लपटावौ हाथी आगे डरवावौ ईति भीति उपजायबी॥
सिंह पै खवावौ चाहौ भूमि गड़वावौ तीखी अनी बिधवावौ मोहिं दुख नहीं पायबी।
ब्रजजन प्रान कान्ह बात यह कान करौ भक्त सों बिमुख ताको मुख न दिखायबी॥ ६३४॥

व्रजजनोंके प्राणस्वरूप हे श्रीकृष्णभगवान्! आप चाहे मुझे अग्निमें डालकर जलाइये, चाहे जलमें डुबाइये, आपकी इच्छा हो तो शूलीपर चढ़ा दीजिये, घोलकर विष पिला दीजिये, बिच्छुओंसे कटवाइये, मेरे शरीरमें करोड़ों साँप लिपटवाइये, मतवाले हाथीके आगे डलवा दीजिये, ईति (पीड़ा), भीति आदि मेरे कष्टके लिये प्रकट कर दीजिये, सिंहके द्वारा मरवाइये, चाहे धरतीमें गड़वाइये, तीक्ष्ण भाला आदिसे छिदवाइये—इन सबसे मुझे नाममात्रका भी दुःख नहीं होगा, परंतु हे कान्ह! ध्यानपूर्वक मेरी यह बात सुन लीजिये कि जो भक्तविमुख हैं, उनका मुख कभी न दिखाइये, उससे मुझे बहुत भयंकर कष्ट होगा॥ ६३४॥

॥ श्रीप्रियादासकृत भक्तिरसबोधिनी टीका पूर्ण हुई॥